सत्साहित्य-प्रकाशन

बंगला साहित्य-दर्शन

—बंगला के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य का विशद अध्ययन—

मन्मथनाथ गुप्त

१९६०

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९६०
मूल्य
चार रुपये

मुद्रक
बालकृष्ण
युगान्तर प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

हमारे देश की विभिन्न भाषाओ का साहित्य कितना समृद्ध है, इसकी जानकारी हिन्दी के पाठकों को बहुत कम है। इसका मुख्य कारण संभवत. यह है कि इन भाषाओ का परिचय देनेवाले साहित्य के विधिवत् प्रकाशन का प्रयत्न हिंदी मे अभी तक नही हुआ है। जब-तब कुछ लेख पत्र-पत्रिकाओ मे निकलते रहते हैं, लेकिन इतना ही पर्याप्त नही है। यह निश्चय ही बड़ी विचित्र-सी बात है कि हिन्दी के पाठक विदेशी साहित्य तथा उसके ग्रन्थकारो से तो सुपरिचित हो, लेकिन अपने ही देश के साहित्य तथा साहित्यकारो से अनभिज्ञ रहे।

इस कमी को ध्यान में रखकर हमने अपने देश की विभिन्न भाषाओ के परिचायत्मक ग्रन्थ निकालने की योजना बनाई है। प्रारंभ दक्षिण की भाषाओ से किया है। सबसे पहली पुस्तक 'कैरली साहित्य-दर्शन' में मलयाली साहित्य का विस्तृत परिचय दिया गया है। दूसरी 'तमिल साहित्य और सस्कृति' मे दक्षिण की दूसरी समृद्ध भाषा तमिल के साहित्य तथा सस्कृति पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत पुस्तक मे बंगला भाषा के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

हमे आशा है, पाठको के लिए इस माला की अन्य पुस्तको की भाति यह पुस्तक भी ज्ञानवर्द्धक तथा उपयोगी सिद्ध होगी।

—मंत्री

दो शब्द

वंगला-साहित्य पर इस पुस्तक को हिन्दी-जगत के सामने प्रस्तुत करते हुए हमे प्रसन्नता होती है, विशेषकर इसलिए कि यह एक आदर्श लेकर चलनेवाली संस्था 'सस्ता साहित्य मंडल' जैसे माध्यम से पाठकों को सुलभ हो रही है। यदि भारत को एक रखना है, जैसा कि हमें हर मूल्य पर करना है, तो उसके लिए सवसे आवश्यक यह है कि प्रत्येक भापा के लोग अपनी भाषा और परम्पराओ को कायम रखते हुए देश की दूसरी भाषाओ और उनके साहित्य से परिचित हों। इस कर्तव्य को सुगम बनाने के लिए सव तरह के प्रयास अभीष्ट हैं।

'सस्ता साहित्य मण्डल' ने इस दिशा में विधिवत् कदम उठाया है। अवतक वह केरल और तामिलनाड की भाषाओ और साहित्य पर दो परिचयात्मक पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है। यह तीसरी पुस्तक वंगला साहित्य के वारे मे हैं। वंगला भाषा के संवंध मे हिन्दी के पाठक काफी जानकारी रखते हैं। इस पुस्तक मे व्यवस्थित रूप से वंगला-साहित्य का परिचय दिया गया है। व्यक्तियों के परिचय को हमने उतना महत्व नही दिया, जितना कि उनके साहित्य को। साहित्य के विकास की जानकारी की दृष्टि से यही हमे अधिक ठीक लगा।

—मन्मथनाथ गुप्त

विषय-सूची

१. वंगला भाषा का विकास ९
२. प्राक्‌मुस्लिम वंगला और उसका साहित्य १६
३. चंडीदास और विद्यापति २९
४. धार्मिक साहित्य ३६
५. प्राक्‌ब्रिटिश युग के मुख्य वंगला कवि ६८
६. आधुनिक वंगला गद्य का प्रारंभ ७५
७. वंगला का पहला उपन्यास ८०
८. वंगला रंगमंच और नाटक का आदि युग ८६
९. ईश्वरचंद्र विद्यासागर १०२
१०. युगप्रवर्तक वंकिमचन्द्र १०६
११. कवि माइकेल मधुसूदन ११४
१२. इस युग के अन्य महत्वपूर्ण लेखक १२३
१३. कवि विहारीलाल १३०
१४. प्रमुख प्राक्-रवीन्द्र कवि १३४
१५. रवीन्द्र-काव्य १४०
१६. कथाकार रवीन्द्रनाथ १६९
१७. शरतचंद्र १८८
१८. अन्य उपन्यासकार तथा लेखक १९५
१९. दीनवन्धु के वाद वंगला नाटक और रंगमंच १९७
२०. शताव्दी के प्रारंभ की वंगला कविता २१३

२१ विद्रोही कवि काजी नजरुल २३०
२२. इस युग के कुछ अन्य कवि २३८
२३. आधुनिक कविता २४१
२४. आधुनिक बंगला उपन्यास २७४
२५. अतिआधुनिक बंगला कविता २८७

वंगला साहित्य-दर्शन

बंगला साहित्य-दर्शन

: १ :

बंगला भाषा का विकास

जिस भूखंड को हम इस समय वगाल कहते है और जिसमे भारत का पश्चिमी वगाल और पाकिस्तान का पूर्वी वगाल है वह सदा न तो एक देश ही था और न उसमे एक जाति ही बसती थी। हम बिल्कुल प्रागैतिहासिक युग की वात नही कहते, ज्ञात ऐतिहासिक युग मे भी वंगाल एक देश नही था। वंगाल तीन नदियो वल्कि एक नदी की दो शाखाओ याने पद्मा और भागीरथी, तथा ब्रह्मपुत्र से चार भागो मे वटा हुआ था। ईसा के कई सौ वर्ष पहले उत्तर-मध्य वंगाल मे पुड्र, ब्रह्मपुत्र के पूर्व तथा पद्मा के उत्तर मे वंग और राढ़ और उनके दक्षिण मे भागीरथी के पश्चिम मे सुह्म नामक कवीले रहते थे। इनके अतिरिक्त और भी कई कवीले थे जैसे कैवर्त या केवट जो सारे भूखड मे फैले हुए थे, दूसरी तरफ चंडाल या चाडाल, डोम, हाडी, वागदी, वाउरी, चूहाड आदि कई कवीले थे।

वाद को जव वगाल का आर्यीकरण हुआ तो इन कवीलो मे से कई वर्ण-मूलक हिन्दू समाज मे जातियों के रूप मे प्रस्तरीभूत हो गये।

जो चार मुख्य कवीले पहले गिनाये गए हैं, उनका किसी-न-किसी रूप मे महाभारत मे उल्लेख मिलता है। महाभारत मे यह वताया गया है कि अंग, वंग, कलिग, पुंड्र और सुह्म भाई-भाई थे, और वे राजा वलि की स्त्री के गर्भ मे दीर्घतमा ऋषि के औरस से उत्पन्न थे। पार्जिटर तथा श्री सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय का ऐसा अनुमान है कि इस अनुश्रुति की तह मे शायद यह वात है कि ये कवीले एक ही शाखा से उत्पन्न थे या उनमें निकट सम्बन्ध था। यह संवंध किसी भी हालत मे पडोसियो का संवध तो था ही, सभव है उससे अधिक भी हो।

सुनीतिवावू ने लिखा है कि वंगाल के ये प्राचीन कवीले द्राविड भाषा-भाषी थे और वे सुसंगठित होने के अतिरिक्त सुसस्कृत भी थे। उनका कहना है, "वर्मा और स्याम के प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि जिस समय तिब्बती चीनी कवीले (वर्मी और ताई) रंगमच पर नही आये थे, उस समय इन

भू-भागो मे केवल मोनखमेर लोग वसे हुए थे और वगाल तथा कलिग से द्राविड लोग आकर स्याम तथा वर्मा मे शासक वन रहे थे। वाद मे जव भारत के इन अनार्यो ने ब्राह्मण्य धर्म को अपना लिया, तव उनके राजाओ ने उत्तर भारत के प्राचीन आर्य राजघरानो से सवध होने का दावा किया (ऐसा ही वाद मे नये राजपूत वंशो के संवध मे भी हुआ), और उन्होंने ईसा-जन्म के वाद संस्कृत भाषा और साथ-ही-साथ हस्तिनापुर और अयोध्या की परम्पराओं को ग्रहण किया।"

आगे चलकर वंगाल मे तिव्वती-चीनी कवीले भी आये। तिव्वती-चीनी की तिव्वती-वर्मी शाखा से वोडो नामक कवीला आसाम और पूर्वी वगाल मे और इसके वाद उत्तरी वगाल मे फैल गया। यह अनुमान है कि आसाम और पूर्वी वगाल मे तिव्वती-वर्मी लोग ईसा-जन्म के कुछ पहले ही फैले होगे, पर यह तारीख और वाद की भी हो सकती है।

यह तो सुनिश्चित है कि आधुनिक वंगाल मे ईसा-पूर्व सहस्र वर्ष तक आर्य भाषाओ का प्रचार नही था। पर जैसा कि पहले ही वताया जा चुका है, इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उस समय इस भूखड मे वसे हुए लोग किसी भी प्रकार आर्यो के मुकावले मे असभ्य थे। ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के अन्त मे लिखित कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे पुड्र, सुवर्णकुड्य और वंग मे उत्पन्न रेशम तथा अन्य वस्तुओ की प्रशंसा की गई है। इसमे से पुड्र की स्थिति तो हम पहले ही वता चुके है। सुवर्णकुड्य को मुर्शिदावाद या कर्ण सुवर्ण के रूप मे निर्दिष्ट किया गया है। हमे वगला भाषा की उत्पत्ति के सक्षिप्त इतिहास मे इस विषय मे अधिक ब्यौरे मे जाने की न तो आवश्यकता है, और न गुजाइश ही है।

हम वाकी ब्यौरो को छोडकर यह कह सकते है कि मौर्य-विजय के पहले वंगाल आर्य भाषा के प्रभाव मे नही आया और उसके पहले वंगाल मे विभिन्न अनार्यभाषाओ का प्रचलन था। पर इन भाषाओ का कोई साहित्य सुरक्षित नही है, और शायद सुरक्षित रहने लायक उनमे कोई विशेष सामग्री रही भी न हो।

हम केवल वगाल के संदर्भ में सारी वात कह रहे हैं, इससे किसी साधारण पाठक को यह गलतफहमी न हो कि वगाल ही मे यह प्रक्रिया हुई, इसलिए हम श्री सुनीतिकुमार की पुस्तक से ही उद्धरण देकर इस संवंध मे कुछ स्पष्टीकरण

करेंगे। वह अपनी पुस्तक 'जाति, संस्कृति और साहित्य' मे लिखते हैं—

"भारत के सुसभ्य, अर्द्धसभ्य और असभ्य सब तरह के अनार्य आदिम निवासियो के साथ आर्यो का प्रथम सम्पर्क शायद संघर्षमूलक था। पर अनार्य भारत मे आर्यो का उपनिवेश स्थापित हो जाने के बाद आर्य और अनार्य दोनो परस्परिक संबंधो से प्रभावित हुए। आर्य विदेश से आये हुए थे और पार्थिव सभ्यता मे वे बहुत ऊंचाई पर नही थे। आर्यो की भाषा ने आकर द्राविड और अस्ट्रिक भाषाओ को निष्प्रभ बना दिया। उत्तर भारत के कोल और द्राविड़ अनार्यो मे एका लानेवाली भाषा का अभाव था, आर्य जाति ने अपनी विजेता की मर्यादा को काम मे लगाकर अपनी भाषा को यह गौरव दिया। धीरे-धीरे ई० पू० १५०० मे ई० पू० ५०० तक गांधार से विदेह और चंपा—बंगाल की पश्चिम सीमा तक प्राय समस्त उत्तर भारत मे आर्य भाषा की जय का डंका बज गया, और आर्य तथा अनार्य यानी द्राविड और अस्ट्रिक मिलकर उत्तर भारत अर्थात् पंजाब और विहार तक गंगा घाटी के सब लोग हिन्दू जाति मे परिणत हुए। अनार्यो ने आर्यो की भाषा और आर्यों के धर्म यानी वैदिक धर्म और वैदिक याग-यज्ञादि अनुष्ठानो को अपना लिया। अनार्यो ने आर्यो के पुरोहित ब्राह्मणो की शिक्षा को मान ली। पर अनार्यो का न तो धर्म ही मरा और न इतिहास-पुराण ही मरा। उत्तर भारत के गगा के किनारे की आर्य सभ्यता का प्रवर्तन इसी तरह से हुआ। इसमे आर्यो की तुलना मे अनार्यो का दान अधिक है, पर आर्यो की भाषा ही इस नई सभ्यता की वाहन बनी।"

उत्तर भारत मे आर्य भाषा की विजय हो जाने के बाद बंगाल मे आर्यभाषा की विजय का समय आया। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बंगाल मे गुप्त-साम्राज्य के विस्तार के साथ-साथ बंगाल अन्तिम रूप मे उत्तर भारत या आर्य भारत के साथ सयुक्त हो गया। मौर्य-विजय से यह प्रक्रिया आरभ हुई थी। इसका अर्थ यह है कि ई० पू० ३०० से ५०० ई० तक यानी ८०० वर्ष तक यह प्रक्रिया जारी रही, और बगाल का आर्यीकरण, सुनीतिबाबू के अनुसार, अस्ट्रिक और द्राविड भाषी जनता ने इन ८०० वर्षो मे अपनी अनार्य भाषाओ को त्यागकर धीरे-धीरे आर्य भाषा अर्थात् मगध के प्राकृत को ग्रहण करके किया। वह लिखते हैं "उत्तर भारत का ब्राह्मण्य धर्म और सभ्यता या उसके साथ ब्राह्मण्य परम्पराओ को याने सस्कृत भाषा मे ग्रथित आर्यो और अनार्यो के इतिहास और

पुराण को वंगाल के लोगो ने भी ग्रहण किया। वौद्ध और जैन मतवाद भी इसी प्रकार से वंगाल में आये और प्रचारित हुए।"

हम आगे भी सुनीतिवावू का उद्धरण देंगे, क्योकि उन्होंने ही इस संवंध मे सव से अधिक खोज की है, और उन्होने वंगला भाषा की उत्पत्ति और विकास के सवंव मे जो विराट ग्रंथ लिखा है, वह किसी भी भारतीय भाषा पर लिखित सवसे अच्छी पुस्तक है। वह लिखते हैं कि समुद्रगुप्त के एक शिला-लेख से यह पता लगता है कि शायद कामरूप के साथ-साथ पूर्वी वगाल भी उनके अधीन था। ऐसा ज्ञात होता है कि जो ब्राह्मण उत्तर भारत से जाकर इन नये उपनिवेशों मे वसते थे, वे मध्यदेशविनिर्गत रूप मे उल्लिखित है, और उन्हे धर्म-प्रचार तथा यज्ञादि करने के लिए जागीरे दी जाती थी। ये लोग एक तरह से वाह्मण्य धर्म के पादरी थे और इनके कारण राजशक्ति को वल मिलता था। ये लोग धर्म-प्रचार के अतिरिक्त भाषा-प्रचार भी करते थे, और चूंकि उनकी भाषा अधीनस्थ लोगो की भाषा के मुकावले मे अधिक उन्नत थी, और उसमे साहित्य उत्पन्न हो चुका था, इसलिए कालान्तर मे उनकी भाषा ने अनार्य भाषाओ को परास्त कर दिया, इसमें कोई आश्चर्य की वात नही है।

जिस समय चीनी पर्यटक फाहियान पांचवीं शताव्दी मे वंगाल मे आये, उस समय वगाल के कम-से-कम पश्चिम और उत्तर में आर्य संस्कृति और भाषा का प्रचार हो चुका था। फाहियान ताम्रलिप्ति मे दो वर्ष तक रहे और वहा वह हस्तलिखित पुस्तको की नकलें तैयार करते रहे। इससे यह प्रमाणित है कि वंगाल मे आर्य भाषा के प्रचार का कार्य पंचम शताव्दी के आरभ मे ही वहुत आगे वढ़ चुका था, तभी तो फाहियान ने अपने पर्यटन के दो वर्ष यहा व्यतीत किये।

इसके वाद जिस समय सप्तम शताव्दी के पूर्वार्द्ध मे दूसरे प्रसिद्ध चीनी पर्यटक ह्यूनसाग भारत मे पधारे, उस समय वह वगाल मे भी गये थे। सौभाग्य से उन्होंने अपने पर्यटन का विस्तृत विवरण लिखा है और उस विवरण में उन्होंने प्रचलित भाषाओं के संवध मे भी कुछ लिखा है। उन्होने अंग और काजंगल से गगा पारकर पुड्रवर्द्धन या उत्तरी मध्य वंगाल मे पदार्पण किया। वहां उन्होने देखा कि न केवल महायान और हीनयान वौद्ध धर्म का प्रचार है, अपितु साथ-ही-साथ ब्राह्मण्य धर्म और जैन धर्म का भी प्रचार है। यहा यह

स्मरण रखा जाय कि धर्मों के साथ-साथ भाषाओ का भी प्रचार होता रहा। इसलिए यह समझ लेना चाहिए कि यदि इन धर्मो का प्रचार था तो साथ ही सस्कृत-प्राकृत का प्रचार रहा होगा।

पुड्रवर्द्धन का भ्रमण समाप्त कर ह्यूनसाग कामरूप या पश्चिमी आसाम और उत्तर-पूर्व वंगाल मे गये। वहा की भाषा के संवध मे उन्होने यह लिखा है कि मध्य देश की भाषा से कुछ भिन्न है। कामरूप के वाद वह पूर्वी वगाल मे गये। वहा भी ब्राह्मण्य धर्म और दूसरे धर्मो का प्रचार था। वहा से वह कर्ण सुवर्ण या मुर्शिदावाद जिले मे गये। इस स्थान के सवध मे उन्होने लिखा है कि यहा के लोगो मे अभी ऐसे लोग भी थे, जो इतर धर्म मानते थे। वहां से ह्यूनसाग ताम्रलिप्ति गये, वहा वौद्ध और ब्राह्मण्य धर्म का प्रचार था। इसके वाद ह्यूनसाग आजकल के दक्षिण-पूर्व मेदिनीपुर जिले मे गये, और इसके पश्चात वह उडीसा मे गये। उनके अनुसार मेदिनीपुर से लेकर इन सारे स्थानो मे ऐसी भाषा वोली जाती थी, जो मध्य देश की भाषा से स्वरूप तथा उच्चारण मे भिन्न थी। इसपर यह अनुमान किया गया है कि इन स्थानो मे अभी तक द्राविड भाषाए वोली जाती थी।

ह्यूनसाग के सारे विवरण का विश्लेषण करते हुए डा० चटर्जी ने लिखा है—"ह्यूनसाग के यात्रा-विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सप्तम् शताब्दी ईस्वी तक सारे वगाल मे आर्य भाषा का प्रचार हो चुका था, और पश्चिमी आसाम मे भी इसका प्रवेश हो चुका था, पर अभी तक उत्तरी उडीसा की जनता मे इसका प्रचार नही हुआ था। साथ ही यह वडी कौतूहल-जनक वात है कि उनकी भाषा मध्य देश की भाषा से कुछ भिन्न थी। ह्यूनसांग पुड्रवर्द्धन या कर्ण सुवर्ण की भाषा के सवध मे कुछ नही कहते, इससे यह मान लिया जा सकता है कि इन इलाको की भाषा और मगध की भाषा एक ही थी, और मगध ही उस युग के चीनी पर्यटक द्वारा लिखित मध्य देश था। अव कोई भी यह आशा कर सकता है कि सप्तम शताब्दी मे उत्तरी मध्य वगाल यानी उस युग के पुड्रवर्द्धन और उत्तरी वंगाल और पश्चिमी आसाम यानी उस युग के कामरूप मे एक ही भाषा प्रचलित होगी, क्योकि इन इलाको मे, साथ ही वगाल के अन्य इलाको मे, पद्रहवी और सोलहवी शताब्दी मे शब्दरूप-विचार-शास्त्र की दृष्टि से करीव-करीव वही भाषा प्रचलित थी, जैसा कि वंगला और आसामी के उस

समय के प्राप्त रूपो मे देखा जा सकता है। ह्यूनसांग ने जिस कुछ भिन्नता की बात कही है और जिसके अनुसार कामरूप की भाषा मे और मध्यदेश की भाषा मे कुछ भिन्नता थी, उसका शायद मतलब यह है कि आर्य उच्चारणो को एक हद तक परिवर्तित कर दिया गया था, जैसा कि आसामी और साथ ही उत्तर और पूर्व वंगाल की चलित भाषाओ मे पाया जाता है। शायद इस प्रकार कामरूप की भाषा का मध्य देश की भाषा के साथ जो कुछ प्रभेद बताया गया है और ऐसा ज्ञात होता है कि यह प्रभेद पुड्रवर्द्धन तथा वंगाल के अन्य भागो की भाषा से भी था, उससे मतलव आर्य उच्चारणो के उन परिवर्तनो से है, जो इस समय आसाम तथा उत्तरी और पूर्वी वंगाल की बोलियो की विशेषता है।"[1]

इसके बाद सुनीतिबाबू ने उन उच्चारण-संबंधी प्रमाणो को पेश किया है, जिनके व्यौरे मे जाना यहा उचित न होगा। भाषा की दृष्टि से देखने पर आर्यीकरण के बाद बंगाल मागधी भाषा के दायरे मे आ गया। मागधी से उत्पन्न भाषाओ को तीन भागो में बाटा गया है—(१) पूर्वी मागधी—बंगला, आसामी, उडिया, (२) मध्य मागधी—मैथिली, मगही (३) पश्चिमी मागधी—भोजपुरी, नागपुरी।

ग्रियर्सन ने इस संबंध मे एक दूसरे ही वर्गीकरण को अपनाया है। वे द्वितीय तथा तृतीय वर्ग के अंतर्गत वोलियों को विहारी नाम देते हैं, और उन्हे एक ही बोली के मामूली रूप से परिवर्तित रूप मानते हैं, पर डा० चटर्जी का यह विचार है कि भोजपुरी और मैथिली-मगही के रूपो मे जो अत्यधिक भेद है, उसे देखते हुए कम-से-कम आधुनिक सोपान मे उन्हे अलग भाषा मानना उचित होगा।

कैसे यह मागधी परिवार बल्कि मागधी अपभ्रंश का परिवार धीरे-धीरे अलग हो गया और उसमें से बंगला, आसामी, उडिया, मैथिली चार स्वतंत्र भाषाओ और मगही तथा भोजपुरी की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने कम-से-कम साहित्यिक दृष्टि से अपनेको खडी बोली मे निमज्जित कर लिया, यह भाषाशास्त्र का एक गहन विषय है। यहांपर हम इतना ही बता सकते है कि ऐसा समझने का कारण है कि सातवी शताब्दी के मध्य मे यानी ह्यूनसाग के समय से आधुनिक

[1] देखिये, 'जाति, संस्कृति और साहित्य', पृष्ठ ७६

विहार, बगाल और पश्चिमी आसाम मे एक ही भाषा वोली जाती थी। आसामी और वगला इस समय भी वहुत-कुछ एक है, इसी प्रकार उडिया, आसामी और बंगला से मिलती-जुलती भाषा है। रही मैथिली, सो वह भी वगला, आसामी और उड़िया से कई वातों मे समता रखती है।[1] इस प्रसग मे यह एक वहुत दिलचस्प वात है कि भाषा की दृष्टि से आधुनिक विहार, जिसमे मिथिला भी आता है, उस युग मे वगाल, आसाम यहातक कि उडीसा के अधिक निकट था, पर अव खडी वोली को साहित्यिक भाषा के रूप मे अपनाने के वाद उसकी भाषा की दिशा पूर्वाभिमुखी न रहकर पश्चिम की ओर हो गई है।

सच तो यह है कि सातवीं शताब्दी मे अंग और मिथिला से ही आर्यीकरण के प्रभाव, जिसमें भाषा भी थी, आधुनिक वंगाल, आसाम और उड़ीसा मे फैले और उन्हीसे आर्यीकृत वगाल, आसाम और उडीसा का जन्म हुआ।

यहापर यह वताना सभव नही है कि कैसे आगामी तीन-चार शताब्दियो में वंगला भाषा का एक पृथक् ढाचा वना। यह न समझा जाय कि इस संवध मे कुछ अधिक उपकरण प्राप्त है। जो उपकरण प्राप्त भी हैं, वह मुख्यतः भाषा-शास्त्र-सवंधी है, और इस प्रकार की पुस्तक के लिए उपयुक्त नही है। ऐसा मालूम होता है कि आठवी से लेकर ग्यारहवी शताब्दी तक सारे आर्य भारत मे भाषा-सवधी परिवर्तन हो रहे थे। हम जिस भूखण्ड के सवध मे आलोचना कर रहे है, उसमे इन तीन शताब्दियो मे प्राकवंगला, प्राकमैथिली, प्राकउडिया का युग कहा जा सकता है। उस युग मे वगला, मैथिली, उडिया की विशेपताएं सामने आती जा रही थी, पर वे अभी तक पृथक् नही हुई थी।

भाषाशास्त्र की गवाही के अनुसार यह अनुमान सत्य मालूम होता है कि पहले तो मागधी अपभ्रंश की उपर्युक्त प्रकार से शाखाएं वनी और फिर उन्ही मे जैसे पूर्व मागधी मे वगला, आसामी और उडिया रूपी शाखाएं फूटी। मेदिनीपुर मे इस समय जो वोली प्रचलित है, उसके अध्ययन के वाद यह कहा जा सकता है कि यह वगला और उडिया के वीच की अथवा दोनो को सयुक्त करने वाली एक वोली है।

अभी तक जो प्रमाण उपलब्ध है, उनसे यह कहना संभव नही है कि ठीक

---

१ देखिये, 'जाति, संस्कृति और साहित्य', पृष्ठ ६१

किस समय बंगला, आसामी और उड़िया में भेद उत्पन्न हुआ, पर जैसा कि बताया जा चुका है तीन शताब्दियों में यानी आठवीं से लेकर ग्यारहवीं तक पृथक्करण की यह प्रक्रिया इतनी दूर तक पहुंच गई कि इनका अलग-अलग रूप स्पष्ट हो गया। यद्यपि यह कहा गया है कि इस समय इन भाषाओं के अलगाव-संबंधी प्रमाण उपलब्ध नहीं है, पर वास्तविकता यह है कि भविष्य में अधिक प्रमाण उपलब्ध होने पर भी यह कहना संभव नहीं होगा कि अमुक साल में यह अलगाव हुआ। सच तो यह है कि ऐसी प्रतिक्रियाएं सैकड़ों वर्षों में संपूर्ण होती हैं, इस कारण इस संबंध में शताब्दियों में ही बातचीत की जा सकती है।

: २ :

प्राक मुस्लिम बंगला और उसका साहित्य

ग्यारहवीं शताब्दी में बंगला का निजी अस्तित्व स्थापित हो चुका था। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी का यह कथन है कि ग्यारहवीं शताब्दी में भी बंगला के साथ उड़िया का पृथक्करण अभी असपूर्ण था। कुछ प्रमाण ऐसे हैं। कि प्राचीन बंगला के युग में अर्थात् दसवीं, ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दियों में पश्चिमी बंगला की ओर झुकाव हुआ, जिससे आधुनिक स्टैंडर्ड बंगला को अपना निर्दिष्ट चरित्र प्राप्त हुआ और पड़ोस की उडिया तथा अन्य बोलियों से उसका पृथक्करण हुआ।[1]

बंगला के जो सबसे प्राचीन नमूने प्राप्त हैं, वे ये हैं—

(१) प्राचीन पुस्तकों तथा अभिलेखों में कुछ स्थानों के नाम आते हैं। इन नामों में जिस ढंग से बाद को चलकर परिवर्तन हुए है, उससे यह पता लगता है कि उच्चारण आदि में परिवर्तन कौन-सी दिशा में जा रहा था। इस संबंध में जो-जो उपकरण प्राप्त है, वह इतना थोड़ा है कि वह दूसरे उपकरणों के साथ-साथ ही कुछ काम दे सकता है। शिलालेखों तथा प्राचीन पुस्तकों में कुछ स्थानों

[1] देखिये, 'जाति, संस्कृति और साहित्य', पृष्ठ ६८

के नाम पाचवी शताब्दी से पाये जाते है बाद को ग्यारहवी शताब्दी की रचना 'रामचरित' मे उनसे मिलते-जुलते नाम पाये जाते है। 'रामचरित' सध्याकर नन्दी की रचना है।

(२) सर्वानन्द नामक एक बगाली पडित ने लगभग ११५९ ई० मे अमरकोष पर एक टीका लिखी थी। इसमें पंडितप्रवर ने अपने भाष्य को सुबोध्य बनाने के लिए कोई तीनसौ ऐसे शब्द डाल दिये, जो सस्कृत नही थे और बगला मालूम होते है। इस टीका का नाम 'टीका सर्वस्व' था। मजे की बात यह है कि यह टीका बंगाल से लुप्त हो गई, पर यह सुदूर मालाबार मे सुरक्षित रही और वही से यह सपादित होकर प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को बगला भाषा के इतिहास की दृष्टि से बहुत अधिक महत्व दिया गया है और इसमें जो असंस्कृत शब्द आते हैं, वे प्राचीन बगला के शब्द है। इस विशेष उपकरण का ऐतिहासिक तथा भाषाशास्त्रीय मूल्य बहुत अधिक होने पर भी हमे इससे केवल शब्दो का ही ज्ञान होता है, पर किसी भाषा को जानने के लिए उसकी वाक्यविन्यासपद्धति से परिचय बहुत जरूरी है, जिसका इसमे अभाव है।

(३) चर्यापद या चर्या-साहित्य। इस संबध मे ४७ गीत प्राप्त है। यद्यपि पुस्तक मे ५० गीत थे, तथापि बीच के कुछ पृष्ठ उड जाने के कारण केवल ४७ गीत ही प्राप्त हुए। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने इन गीतो का आविष्कार नेपाल मे किया। उनके अनुसार ये बारहवी शताब्दी के प्रारम्भ के है, पर श्री राखालदास बनर्जी ने इन्हे चौदहवी शताब्दी के अन्त की रचना बताया है।

भाषा और साहित्य दोनो के इतिहास की दृष्टि से इन गीतो का बहुत महत्व है। इसके अतिरिक्त उनसे उस समय की परिस्थिति का भी पता चलता है। सहजिया-पंथ के सिद्धो ने इनकी रचना की। यहां इस पथ के सबध मे कुछ बताने की आवश्यकता नही है, क्योकि सहजियापंथ के गुरु गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ आदि के सबध में हिंदी-साहित्य के इतिहासो मे भी बहुत-कुछ आता है। यहा पर इतना ही बताना यथेष्ट होगा कि यद्यपि इन गीतो को बगला भाषा के कुछ इतिहासकारो ने बगला बताया है, तथापि उन्हे समान रूप से हिंदी की रचना भी कहा जा सकता है, और ऐसा कहा भी गया है। हम पहले ही बता चुके है कि भाषा की दृष्टि से ह्यूनसांग के समय मे ही बगाल और विहार एक हो चुके थे। फिर प्राकबगला रचनाओ को या बगला की आदिम रचनाओ को हिंदी कहना

या हिंदी की उस समय की रचनाओं को वगला समझना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

दोहाकोप नामक दो रचनाए भी वगला भापा के इतिहास की दृष्टि से वडे महत्व की है, पर उनका महत्व चर्यापदो से कही कम इस कारण है कि वे अपभ्र श मे है और उनमे अभी वगला की विशेपताए दृष्टिगोचर नही हैं, जैसी कि चर्यापदो मे दिखाई देती है। इनका भी विपय वही है जो चर्यापदो का है।

'चर्याचर्यविनिश्चय' नाम से एक प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ है, जिसमे प्राकृत भापा मे कविताएं है और सस्कृत मे उनकी टीका है। टीका के अन्दर यत्र-तत्र प्राचीन वगला तथा पश्चिमी अपभ्र श मे कुछ उदाहरण दिये गए है। इनमे भी रहस्यमय विपयो का वर्णन है। सुनीतिवावू के अनुसार चर्यापदो और दोहाकोप-मे दो विभिन्न वोलिया हैं। चर्यापदो मे सवधकारक का एर और अर, संप्रदान का रे, अधिकरण का त, सवध स्थापित करनेवाले शब्द मांझ, अन्तर, साग हैं, साथ ही विहारी अल और अव के वदले क्रमश भूत और भविष्य के लिए क्रियापद के वाद इल और इव इत्यादि हैं। दोहाकोपो मे वोली तो वही है, जिसे एक तरह का पश्चिमी या शौरसेनी अपभ्र श वताया गया है।

चर्यापदो की भापा के सवध मे सुनीतिवावू का यह सुनिश्चित मत है कि वे प्राचीन वगला मे है। वे इस मत के समर्थन मे भापाशास्त्र-संवंधी वहुत लंवे प्रामाण देते हैं, जिनका वर्णन यहापर सभव नही। उनका यह भी कहना है कि चर्यापदो की भापा पश्चिमी वगाल की किसी वोली पर आधारित है। भापा-गत प्रमाण के अतिरिक्त पूर्वी वगाल के लोगो पर भी दो जगह पर मन्तव्य है, जो किसी भी प्रकार प्रशंसात्मक नही है। इस वात का भी प्रमाण है कि उस युग मे पश्चिमी वगाल के साहित्यकार पूर्वी वगाल के लोगो के विरुद्ध कटाक्ष करते थे, जैसे कि वारहवी सदी के विद्वान सर्वानन्द ने अमरकोप पर टीका लिखते हुए किया था। उसमे उन्होने सूखी मछली खानेवाले इतर वंगालियो पर कटाक्ष किया था।

चर्यापदो मे मात्रावृत्त का प्रयोग है, पयार छन्द का नही, जो वंगाल का विशेप छन्द है। उस समय तक पयार का विकास नही हुआ था, या ऐसा हो सकता है कि देहातो मे पयार का प्रचलन हुआ हो, पर साहित्य में तवतक उसका प्रवेश न हुआ हो।

रहा यह कि चर्यापदों का समय क्या है, इस सबध मे डा० चटर्जी का मत यह है कि भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह लगभग १२०० ई० की रचना होगी। एक बात यह भी स्मरण रहे कि चर्यापद विभिन्न व्यक्तियो की रचनाए है। इनके रचयिताओ की सख्या २२ है, और ये २२ रचयिता उन ८४ सिद्धो मे आ जाते हैं, जो तिब्बत और नेपाल के महायान बौद्धो मे पूजित हैं। नेपाल मे अब भी ये पद गाये जाते हैं। तिब्बती भाषा मे भी इनका अनुवाद है। इन सिद्धो मे से एक लुईपा या लुईपाद दीपंकर श्रीज्ञान के समसामयिक थे, और उनके संबध मे यह ज्ञात है कि वह ५८ साल की उम्र मे १०३८ ई० मे तिब्बत गये। इस कारण लुईपा के साहित्यिक जीवन के समय को दशम शताब्दी का उत्तरार्द्ध बताया गया है। अभी तक चर्यापदो मे उन्हींकी रचनाओ को सबसे प्राचीन माना गया है। जो हो, चर्यापदो को १२०० ई० के मानने मे किसी गलती की सभावना नही है।

प्राकबंगला के अन्य अवशेषो मे 'प्राकृत पैंगल' की रचनाए और कविताएं उल्लेखनीय हैं। इस सग्रह मे ६०० ई० से लेकर १४०० ई० तक की प्रचलित कविताएं सग्रहीत हैं। यह संग्रह अपभ्रंश तथा प्राक बंगला रचनाओ का है। इस सग्रह को अंतिम रूप चौदहवी शताब्दी मे प्राप्त हुआ। इसमे से कुछ ही कविताओं के सबंध मे यह दावा किया गया है कि वे प्राक बगला मे हैं, पर ऐसा मालूम होता है कि भले ही ये कविताए बगला मे रही हो, इनको जिस रूप मे इस सग्रह मे स्थान दिया गया है, वह कुछ बदला हुआ है। स्मरण रहे कि अभी तक भाषाओ के विकास का वह सोपान था, जब कुछ विभक्ति, प्रत्यय बदल देने पर ही एक भाषा की रचना दूसरी भाषा की रचना बन सकती थी।

बंगला भाषा के विकास के सबध मे जयदेव के 'गीत गोविंद' का भी उल्लेख किया गया है। 'गीत गोविन्द' सस्कृत मे प्राप्त है और यह बारहवी सदी के उत्तरार्द्ध की रचना है। भला एक इतने सुप्रसिद्ध सस्कृत ग्रंथ का बगला भाषा से क्या सबंध हो सकता है, यह पूछा जा सकता है। पर संबध यो निकल आता है कि कुछ विद्वान् जैसे जर्मन विद्वान् पिशल और मजुमदार यह सन्देह करते हैं कि 'गीत गोविन्द' पूर्व में प्रचलित पश्चिमी अपभ्रंश मे या प्राचीन बगला मे लिखा गया था, और उसे बड़ी जनप्रियता प्राप्त हुई थी। पूर्वोल्लिखित 'प्राकृत-पैंगल' मे जयदेव से मिलती-जुलती कुछ अवहट्ट कविताए पाई गई है। इससे इस

अनुमान को वल मिलता है

ऐसा अनुमान किया जाता है कि जयदेव का लिखी हुई कविताएं पंडित-समाज को इतनी पसद आई कि उन्होने उन्हे थोडा-बहुत परिवर्तित करके संस्कृत बना दिया। यह याद रखने की बात है कि उस समय की लौकिक भाषा संस्कृत से बहुत दूर नही थी, और उसमे मामूली परिवर्तन करने पर वह संस्कृत बन सकती थी। इस सबंध मे उदाहरण के तौर पर यह बताया गया है कि जैसे प्राचीन इटालियन को थोडा बदलने पर ही वह लैटिन बन सकती थी, उसी प्रकार से उस समय की लौकिक भाषा की रचना स्वल्प आयास से संस्कृत बन सकती थी।

जयदेव की ये संस्कृतीकृत कविताए सारे भारत मे 'गीत गोविन्द' के नाम से प्रसिद्ध हुई और वे संस्कृत-साहित्य मे अनूठी मानी जाती है। जब बाद मे सोलहवी शताब्दी मे वैष्णव धर्म का जोर हुआ तो 'गीत गोविन्द' को धार्मिक महत्व प्राप्त हुआ। यह रचना उन दिनों की हालत को देखते हुए बहुत जल्दी प्रसिद्ध हुई और १४९९ तक उसे इतनी मर्यादा प्राप्त हो गई कि एक अभिलेख मे यह उल्लेख मिलता है कि पुरी मे जगन्नाथ की मूर्ति के आगे इसका गायन जरूरी बताया गया है।

यह बताया जाता है कि जयदेव की शैली का बगला गीति-कविता पर बहुत अधिक असर पडा, साथ ही यह भी माना गया है कि जयदेव ने जिस भाषा मे मौलिक रूप से इसकी रचना की थी, उस रूप मे वह हम तक पहुच नही सकती थी। संस्कृत मे हो जाने के कारण ही उसकी रक्षा हुई है। जो हो, 'गीत गोविद' को बंगला भाषा के इतिहास मे ऊपर बताये हुए कारणो से बहुत महत्व प्राप्त है। यह भी बताया जाता है कि यदि 'गीत गोविद' अपने मौलिक लौकिक रूप मे होता और हम तक पहुचता तो बहुत परिवर्तित होकर पहुचता, जैसा कि बाद के कई ग्रन्थो की दशा हुई। जो भी नकल करता गया, वही समयानुसार उसकी भाषा मे 'सुधार' करता गया। नतीजा यह हुआ कि प्राचीन बगला की रचनाएं इतनी परिवर्तित होकर हमारे सामने आई कि उन्हे प्राचीन करके पहचानना असभव है।

चर्यापदो के सबंध मे यह बात नही हो सकी या 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' का इस प्रकार आधुनिकीकरण नहीं हो सका, इसका कारण, जैसा कि सुनीतिबाबू ने बताया है, ह है कि ये रचनाए पुरानी पोथियो मे दबी पडी रही और वे नकल करनेवाले

सुधारको के प्रकोप से वचे रहे। इस प्रकार 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' हमे मौलिक रूप मे प्राप्त है। इसके रचयिता चडीदास है। यही से हम वगला साहित्य के ऐसे सोपान मे प्रवेश करते हे, जहा से उसका वंगला होना किसी प्रकार सदिग्ध नही हे। पर आगे के इतिहास का वर्णन करने के पहले हम एक वार फिर पीछे की ओर लौटेगे।

'डाकार्णव' नाम का एक ग्रन्थ इस प्रसंग मे उल्लेखनीय है। डाक नाम के किसी व्यक्ति ने, या सभव है वहुत-से व्यक्तियो ने, इसकी रचना की। डा० दिनेश सेन के अनुसार इसमे दसवी शताब्दी के वगला का उदाहरण मिलता है। ऐसा मालूम होता है कि इसी ग्रंथ के कई रूप प्राप्त है। कुछ पक्तिया ऐसी है, जिनका कोई अर्थ ही पल्ले नही पडता। शायद इसके रचयिता वौद्ध थे। मजे की वात यह है कि इसमे वौद्ध पुट के साथ-साथ चार्वाक की प्रसिद्ध उक्तियो के ढग की वाणी भी मौजूद है। धार्मिक ढंग के वचन इस प्रकार हैं—

धर्म करिते जवे जानि, पाखरि दिया राखिब पानि।
गाछ रुइले वडो धर्म...
जे देइ भात शाला पानि शालि, शे न जाई यमेर पुरी।

—जो धर्म करना चाहता है, वह पोखरा खुदावे। पेड लगाना वहुत वड़ा धर्म है। जो क्षेत्र या पौशाला स्थापित करता है, वह यमपुरी नही जाता।

यह स्पष्ट है कि यहां यमपुरी से मतलव नरक से है। ऊपर जो वचन उद्धृत किये गए हैं, वे धार्मिक ढग के है, पर इन्हे देखिये—

भालो द्रव्य जखोन पावो, कालिकारे तुलिया ना थोवो।
दधि दुग्ध करिया भोग, औषध दिया खंडावो रोग।
वले डाक एई संसार, आपन मइले किसेर आर ?

—जव अच्छा माल मिलेगा तो उसे कल के लिए रख नही देना है। दही-दूध-भोग करके यदि कोई रोग हो गया तो दवा से उसे मारेंगे। डाक कहता है कि यही तो ससार है। जव आप ही मर गये तो फिर और कौन-सी वात है !

यह स्पष्ट है कि डाक के वचनों मे हर तरह का सग्रह है और वह किसी

एक मतवाद की पुस्तक नही है। डाक के वचनों की तरह खना के वचन भी प्राचीन बंगला साहित्य की एक अमर निधि इस अर्थ मे हैं कि अब इतनी शताब्दियों के वाद भी उनके वचन लोगो मे कहावतो के रूप मे अनायास प्रचलित हैं। अवश्य वे अपने प्राचीन रूप मे प्रचलित न होकर सुधरे हुए रूप मे प्रचलित हैं। खना के वचन मुख्यत खेती-संवधी हैं। कुछ नमूने इस प्रकार है—

दिने रोद राते जल, ताते धानेर वाडे वल।

—यदि दिन को धूप रहे और रात को पानी वरसे तो धान जोर करता है।

यदि वरे आगने, राजा नामेन मांगने

—यदि अगहन मे वरसे तो राजा रोटी को तरसे।

ऊपर के उदाहरणों से यह ज्ञात होगा कि खना के वचन क्यो जनप्रिय थे। मकान वनाने के सवध मे भी खना अपनी राय वता गये है—

पूबे हास, पश्चिमे वांस
उत्तरे वाग दक्षिणे फांक

—पूरव की तरफ तो हंस हो याने तालाव रहे, पश्चिम की तरफ वासो की झाड रहे, उत्तर मे वाग हो और दक्षिण में खुला रहे।

उस युग की सामाजिक धारणाए भी डाक के वचना मे पढ़ी जा सकती हैं, जैसे एक स्थान मे लिखा है कि "जव पति घर मे वैठता है और स्त्री वाहर वैठकर मुस्कराती रहती है, ऐसी स्त्री के साथ जिसका वास है, उसके जीवन को कोई आशा नही है। जो स्त्री घर के अदर चूल्हा होने पर भी वाहर खाना पकाती है, वालो को कुछ फुलाकर वांधती हैं, वार-वार मुड़-मुड़कर पीछे की ओर देखती है, राहगीर को तिरछी निगाह से देखती है, इत्यादि, उस स्त्री को घर मे नही रखना चाहिए।"

डाक के वचनो मे दवा-दारू, पथ्य-कुपथ्य का भी वर्णन है, जैसे एक वारहमासी है जिसमे कहा गया है कि कातिक मे जिमीकद और अगहन मे वेल, पूस मे काजी, माघ मे तेल, फागुन मे अदरक, चैत मे कडवी चीज, वैशाख मे नीम और नालिता नाम की एक वस्तु, जेठ में मट्ठा और आपाढ मे दही, सावन मे खील, भादो मे ताड़ और आश्विन मे खीरा लाभदायक होता है।

यह द्रष्टव्य है कि साहित्य उस समय लोगो की किसी-न-किसी प्रकार की

आवश्यकता की पूर्ति करता रहा। खना और डाक के वचन इतने अधिक प्रचलित है कि इनके साथ किसी और रचना की इस संवध मे तुलना करना उचित नही ज्ञात होता।

खना को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के दरवार के वराहमिहिर की स्त्री वतलाया गया है, पर यह वात सही नही मालूम देती। इसी प्रकार डाक एक ग्वाला माना गया है, जो सभव है सही हो। असल वात यह है कि इनका पूर्ण परिचय तो क्या, कुछ भी परिचय उपलव्ध नही है।

वंगाल मे हिंदू धर्म के साथ-साथ वौद्ध धर्म का भी वहुत दिनो तक जोर रहा। पर धीरे-धीरे वौद्ध धर्म का प्रचार घटने लगा और उसके स्थान पर हिंदू धर्म का प्रचार होने लगा। साहित्य मे इसका एक प्रभाव यह हुआ कि कई वौद्ध ग्रंथ हिंदू धर्म-ग्रथो के रूप मे वदल गये। वुद्ध को शिव के रूप मे वदल दिया गया, और धर्म के स्थान पर धर्मठाकुर की पूजा होने लगी। सघ को शख में वदल दिया गया। पर इतना वदलने पर भी, जैसा कि श्री दिनेशसेन ने वताया है, इस प्रकार के साहित्य मे कई ऐसे अश रह गये, जिनसे प्रमाणित होता है कि ये ग्रंथ मौलिक रूप से वौद्ध ग्रंथ थे। फिर भी इन असंगतियो के वावजूद धर्मठाकुर की पूजा प्रचलित हुई और धर्ममगल आदि कई ग्रथ प्रचलित रहे, जिनमे धर्मठाकुर की पूजा का प्रचार किया गया।

धर्मठाकुर की पूजा के सवंध मे शून्य पुराण मे एक पक्ति ऐसी आती है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्मराज यज्ञ की निंदा करते है। इसके अलावा और भी अन्य उल्लेख ऐसे है, जिनसे इस पुराण पर चढे हुए वौद्ध रग का पता लगता है। एक स्थान पर कहा गया है—'सिहले श्री धर्मराज वहुत सम्मान।' यानी सिहल मे श्री धर्मराज का वहुत सम्मान है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किस धर्म से इस पुराण का पहले सवध था।

शून्यवाद वौद्ध धर्म से उत्पन्न वल्कि वाद के दिनो मे उसीके अतर्गत एक मतवाद था, जिसमे सव चीजो की उत्पत्ति शून्य से वतलाई गई है। धर्ममगल मे इसी मतवाद का प्रचार मिलता है। धर्मठाकुर के मदिरो मे हाडी, डोम आदि कथित नीच जाति के लोग पुरोहित थे और हम पहले ही वतला चुके है कि ये कथित नीच जाति के लोग प्राक आर्य युग के है। इससे हम समझते है कि धर्मठाकुर की पूजा मे केवल वौद्ध ही नही, कुछ प्राक आर्य या आर्येतर प्रभाव भी होंगे।

एक वहुत मजे की वात यह है कि यद्यपि धर्मठाकुर की पूजा को सपूर्ण रूप से हिंदू साचे मे ढाल दिया गया है, फिर भी डा० दिनेशसेन ने वतलाया है कि कम-से-कम १६४० ई० तक ब्राह्मणो को यह हिम्मत नही हुई कि धर्मठाकुर के उपासको के साथ अधिक हेल-मेल वढावें । वात यह है कि उस समय तक धर्मठाकुर की पूजा हिंदू धर्म के वाहर समझी जाती थी । मै समझता हू कि इस वात की व्याख्या की जरूरत है कि धर्मठाकुर की पूजा को प्रायः सपूर्ण रूप से हिंदू वना लेने पर भी ब्राह्मण उससे अलग क्यो रहे तथा वे ऐसा क्यो समझते रहे कि इन उपासको के साथ मिलने से धर्म नष्ट हो जायगा या जाति चली जायगी । हमारी समझ मे इसकी व्याख्या यही हो सकती है कि सिद्धात रूप मे धर्मठाकुर की पूजा वहुत-कुछ हिंदू हो जाने पर भी इसके पुरोहित-वर्ग, साथ ही इसका वातावरण, एक वड़ी हद तक अहिंदू रहा, इसी कारण ब्राह्मण इससे अलग रहते रहे ।

वंगाल मे धर्म-पूजा के सवसे वडे प्रतिपादक रामाई पंडित माने गये, जो शून्य पुराण के रचयिता थे । रामाई पडित का जन्म वैशाख शुक्ल के दिन हुआ था, पर वर्ष का ठीक पता नही है । कुछ प्रमाण ऐसे मिले है जिनसे यह कहा जा सकता है कि वह दशवी शताब्दी ई० के अन्त की ओर पैदा हुए । रामाई पंडित के वशधर यह दावा करते है कि रामाई ब्राह्मण थे, पर यह वात विश्वसनीय नही है । रामाई पंडित के वंशधर अव भी मैना नामक स्थान के एक मंदिर मे पुरोहिती करते है और वे डोम पंडित कहलाते है । यद्यपि उनकी इज्जत किसी ब्राह्मण से कम नही है, तथापि वे ब्राह्मण नहीं माने जाते । कई वार ऐसा हुआ है कि किसी सत की मर्यादा वढाने के लिए उन्हे ब्राह्मण वता दिया गया, पर वस्तुस्थिति कुछ और ही थी ।

रामाई पडित ब्राह्मण थे, फिर भी उनके वंशधर डोम कैसे हो गये, इसकी व्याख्या करने के लिए धर्मठाकुर के उपासकों मे कई प्रकार की अनुश्रुतियां प्रचलित हैं । एक तो यह है कि स्वयं धर्मठाकुर ने रामाई पंडित को यह शाप दिया था कि ऊंची जाति का कोई व्यक्ति तुम्हारा पानी नही पियेगा । दूसरी अनुश्रुति यह है कि रामाई पडित ने अपने पुत्र धर्मदास को यह शाप दिया था कि तुम जातिच्युत होकर डोम हो जाओ । यह कही नही वताया गया कि आखिर यह शाप किस अपराध के कारण दिया गया । इन वातो से यह स्पष्ट है कि रामाई

पंडित के ब्राह्मण होनेवाली बात मनगढंत और वाद की उपज है। शून्य पुराण में जो कहीं-कहीं रामाई पंडित के साथ द्विज शब्द आता है, वह क्षेपक है।

रामाई पंडित का कोई प्रामाणिक जीवन-चरित नही मिलता। यह कहा जाता है कि उन्होंने ८० साल की उम्र मे शादी की और उनका धर्मदास नाम से एक पुत्र हुआ, जिसके चार पुत्र हुए। शून्य पुराण में आदिम शून्य का वर्णन यो किया गया है—

नहीं रेख, नहीं रूप, नहीं छिल वन्न, चिन
रवि, शशि नहि छिल, नहीं छिल राति दिन।
नहि छिल जल, थल, नहि छिल आकाश,
मेरु मंदार ना छिल, ना छिल कैलाश।
नहि छिष्टि छिल, आर नहि सुर, नर,
ब्रह्मा, विष्णु ना छिल, न छिल अंबर।

जो उद्धरण दिया गया, उसमें यदि यह बता दिया जाय कि छिल शब्द का अर्थ 'था' है, तो उसे समझने में कोई विशेष कठिनाई न होगी।

शून्य पुराण मे शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि पौराणिक देवताओ के नाम आते है, पर उनका चेहरा बदला हुआ है और उनके काम भी भिन्न हैं। इस पुस्तक मे कुछ गद्य अंश भी आते है, जिनसे उस समय की भाषा का और भी विशद ज्ञान होता है। वाद को क्षेपक के रूप मे इसमे एक अध्याय जोडा गया, जिसमे बौद्ध धर्म के पतन, हिन्दू धर्म के उत्थान, यहांतक कि ब्राह्मणो और मुसलमानों की एक लड़ाई का भी उल्लेख आता है। यह लडाई जाजपुर मे हुई, ऐसा बताया जाता है। इस युद्ध-वर्णन की विशेपता यह है कि इसमे मुसलमानो को देवी और देवताओ का अवतार बतलाया गया है, जो ब्राह्मणो को इस कारण सजा देने आये कि उन्होने सतधर्मियों याने बौद्धो पर अत्याचार किया था।

ऐसा अनुमान है कि यह क्षेपक ३०० वर्प वाद सहदेव चक्रवर्ती के द्वारा रचित होकर जोड़ा गया। सहदेव चक्रवर्ती धर्ममगल के अन्यतम रचयिताओ में माने गए है। इस युद्ध-वर्णन मे यह बताया गया है कि धर्म जब वैकुठ में ब्राह्मणो के अत्याचारो से दुखी हुए तो वे यवन का रूप धारणकर, काली टोपी लगाकर खुदा का नाम धारणकर आगे वढे। सब देवता पायजामा पहने हुए थे। ब्रह्मा मुहम्मद बन गए, विष्णु पैगम्बर बने, शिव आदम बने, गणेश गाजी बने,

कार्तिक काजी बने, नारद शेख बने और इन्द्र मौलाना बने। चंडिका हयाबीबी बनीं और पद्मावती नूर बीबी बनी। सबने मिलकर मंदिरों और मठो को लूट लिया।

इसमे जिस जाजपुर की लड़ाई का उल्लेख है, उसका कुछ ऐतिहासिक पता नही मिलता। जो कुछ भी हो, इस उल्लेख की अन्तर्निहित बाते सत्य मालूम देती है। इसमे की पहली बात तो यह है कि बंगाल मे ब्राह्मणों ने बौद्धो पर इतना अत्याचार किया था कि जब मुसलमान आये तो बौद्धों ने मुसलमानो का साथ दिया। विदेशी मुसलमान त्राणकर्ता के रूप मे नही आये थे, इसलिए उनका भी दमन-चक्र चला, पर बौद्धो ने हिंदू बनने के बजाय मुसलमान बनना स्वीकार किया। यही कारण है कि बंगाल मे मुसलमानो की सख्या अधिक हो गई। बौद्ध हिंदुओं से बहुत चिढ़े हुए थे।

हम पहले ही धर्ममगल कविताओ का उल्लेख कर चुके हैं। यह एक संग्रह है। जिन कवियो की कविताएं इसमे संगृहीत है, उनमे मयूर भट्ट सबसे प्राचीन हैं। मयूर भट्ट का काल-निर्णय अभी नही हुआ है, पर वह मुस्लिम-विजय के कुछ पहले रहे होगे। मयूर भट्ट के संबंध मे कहा जाता है कि वह ब्राह्मण-परिवार के थे। धर्ममंगल-संबंधी कविताओ मे ग्यारहवी सदी के एक राजा लाऊसेन की वीरता की कहानियां वर्णित हैं। यह कहानी मोटे तौर पर यों है कि सोमघोष नाम से गौड़ेश्वर के राजमहल मे एक नौकर था। यह राजा का प्रियपात्र हो गया और उसे ढाकुर मे एक जागीर मिली। सोमघोष का लड़का इचाई घोष काली का पूजक था और वह एक नामी योद्धा बन गया। धीरे-धीरे वह इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने गौड़ेश्वर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सोमघोष लड़के को समझाते रहे, पर उसने पिता की बात नही मानी। मजबूरी से गौड़ेश्वर ने उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और मैनागढ़ के राजा कर्णसेन को उसके विरुद्ध लड़ने को भेजा। कर्णसेन युद्ध मे हार गया और उसके चार पुत्र मारे गये। जब वह हारकर अपनी राजधानी मे पहुंचा तो रानी भी पुत्र-शोक से मर गई। इसी हालत मे कर्णसेन गौडेश्वर के पास गया तो गौड़ेश्वर को बड़ा दु ख हुआ और मानो उसका दु ख दूर करने के लिए गौड़ेश्वर ने अपनी सुन्दरी साली का व्याह कर्णसेन से कर दिया। इसी विवाह से लाऊसेन उत्पन्न हुआ। जब लाऊसेन बड़ा हुआ तब उसने कामरूप के राजा तक को हराया। लाऊसेन ने गौड़ेश्वर की आज्ञा

से राजा हरिपाल को भी हराया। हरिपाल पर चढाई का कारण यह था कि उसने गौड़ेश्वर से अपनी कन्या की शादी करने से इनकार किया था। इस लड़ाई मे स्वयं राजकुमारी सेना का संचालन कर रही थी।

पर वह हार गई, और यद्यपि लडाई का आरंभ गौडेश्वर को कन्यादान करने से इनकार करने पर हुआ था, फिर भी गौडेश्वर ने विजय की खुशी मे राजकुमारी का व्याह लाऊसेन से कर दिया। लाऊसेन इतना प्रवल हो गया कि गौडेश्वर के प्रधान मंत्री ने भी उनके विरुद्ध षडयंत्र करना शुरू किया। काव्य मे इन षडयंत्रो के लंबे वर्णन भरे पड़े है और यह दिखाया गया है कि किस प्रकार लाऊसेन हर वार वचते रहे। धर्मठाकुर को लाऊसेन ने किस प्रकार अत्यंत कठिन व्रतो से रिझाया, इसका भी वर्णन वहुत विशद है। लाऊसेन के अतिरिक्त कालू डोम की स्त्री लोखा डोमनी और उसके पुत्र शक की भक्ति और त्याग की कहानी भी इसमें आती है। लाऊसेन के चरित्र को उभारकर सामने लाने के लिए उसे जिन प्रलोभनो का सामना कराया जाता है, उससे भी उस युग के जीवन पर, विशेषकर राजाओ के जीवन पर, रोशनी पडती है।

लाऊसेन, इचाई घोष आदि व्यक्ति ऐतिहासिक थे और उनके राजमहलों के खंडहर अभी देखे जा सकते है। जैसा कि हम पहले वता चुके, धर्ममंगल के कवियो मे मयूर भट्ट सवसे प्राचीन है और डा० दिनेश सेन के अनुसार मयूर भट्ट का समय वारहवी शताब्दी है। भाषा की दृष्टि से धर्ममंगल की कविताएं जिस रूप मे हमे मिली हैं, वे वाद की ठहरती है, पर ऐसा इस कारण है कि हमें जो रूप देखने को मिला है, वह वहुत-कुछ परिवर्तित और आधुनिकीकृत है। आधुनिकीकरण के वावजूद इन कविताओ मे ऐसे आंतरिक प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उनमे से कम-से-कम एक वहुत वडा अंश, जितना मालूम पडता है, उससे कही प्राचीनतर है। उनके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मौलिक रूप मे वे और प्राचीन रहे होगे।

'माणिकचंद्र-राजार गान' ग्यारहवी शताब्दी की रचना मालूम पडती है। कविता की दृष्टि से यह कोई ऊंची रचना नही है। इसमे हाडी सिद्ध के करिश्मो का वर्णन है, और अलिफ लैला की तरह असम्भव वीरता का वर्णन यत्रतत्र है। देवता और मनुष्य हेलमेल से विचरते और रहते हुए दिखाये जाते है। इन असंभव वातों के होने पर भी जहा-तहां समसामयिक समाज के संवंध मे

सूचनाएं प्राप्त हो जाती है, जैसे उन दिनो व्यापार विनिमय से होता था और लगान कौडियो मे अदा किया जाता था। धनी लोग सोने की थाली में पचासो तरह का पकवान खाते थे। इस पुस्तक की उपमाओ आदि से भी डा० सेन यह निष्कर्ष निकालते है कि इसके कवि संस्कृत-साहित्य आदि से अपरिचित थे। उदाहरणस्वरूप राजा गोपीचंद की रानी के दातो की उपमा शोले से दी जाती है। उस समय की भाषा का कुछ नमूना यो है—

जिस समय गोपीचंद यति बनकर अपनी स्त्री उदुना को छोड़ने लगता है, तो वह कहती है—

ना जाइयो ना जाइयो राजा दूर देशांतर,
कारे लागिया वांधिलाम शीतल मंदिर घर।
निदेर स्वपने राजा देवो दरिशन,
पालंके फेलाइब हस्त नाई प्रानेर धन
आमि नारि रोदन करिब खाली घर मंदिरे
अमाके संगे करि लइया जाओ।

—"हे राजा, दूर देशातर मे न चले जाओ। जो तुम चले जाओगे तो मैंने किस के लिए शीतल मंदिर, घर बाधा ? जो तुम चले जाओगे तो नीद मे कभी-कभी दर्शन हो जाया करेगा, पर जब नीद मे पलग पर हाथ डालूगी तो देखूगी कि मेरे प्राणो का धन जा चुका। मैं अबला नारी खाली घर मे रोती रहूंगी, मुझे साथ ले चलो।"

बाद के साहित्य मे कही-कही राजा गोपीचद का उल्लेख गोविंदचद्र के रूप मे किया गया है। दुर्लभ मल्लिक नामक बाद के युग के एक कवि ने इसी नाम से राजा का उल्लेख किया है। दुर्लभ मल्लिक के काव्य मे शून्यवाद का प्रभाव भी यथेष्ट मात्रा में देखा जा सकता है। इसमे हाडिपासिद्ध को शून्यवाद का प्रचार करते हुए दिखाया गया है। राजा गोपीचंद के संसार-त्याग की कथा बहुत-से कवियो के द्वारा गाई गई, यहांतक कि दूसरी भाषाओ में भी उसकी प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है।

कम-से-कम बगाल मे शैव मतवाद के आगे ही बौद्ध धर्म परास्त हुआ, इसलिए शिव के सबध मे भी प्राचीन बंगला साहित्य मे बहुत उल्लेख आते है। शिव के संबंध मे जो कथाए अन्यत्र प्रचलित हैं, उनके अतिरिक्त शिव को अक्सर

प्राचीन बंगला कविताओ मे धान के खेतो मे हाथ बटाते हुए और स्वयं खेती करते हुए दिखलाया गया है। शून्य पुराण मे भी एक प्रसंग आता है, जिसमे शिव से कहा जाता है—भीख पर जीवन निर्वाह करने के कारण अक्सर तुम्हे भूखो मरना पडता है, इसलिए तुम ऐसा क्यो नही करते कि एक अच्छी-सी जमीन लेकर खेती में जुट जाओ। यदि अच्छा खेत न मिले तो पानी देकर उसे ठीक कर सकते हो। जब घर मे चावल होगा तो रोज खाना खाने मे आनंद भी आयेगा। भगवन्, भूख की ज्वाला कबतक सहोगे ? तुम कपास की खेती क्यों नही करते ? बाघ की खाल पहनकर कबतक चलोगे ? अपने शरीर पर भभूत क्यो लगाते हो ? इसके बदले सरसो और तिल की खेती क्यो नही करते, जिससे कि लगाने के लिए तेल हो जाय ? तरकारिया भी काफी बो लेना। और केला लगाना न भूलना, जिससे कि धर्मठाकुर की पूजा के सब सामान मिल जायं।

बाद के युग के साहित्य मे शिव का यह खेतिहर रूप बार-बार आता है, और शिव खेती के सबंध मे बहुत ब्यौरेवार उपदेश देते है, जैसे कब खेत तैयार किया जाय, कैसे किया जाय, निराई कैसे की जाय, इत्यादि।

: ३ :

चंडीदास और विद्यापति

इसके बाद हम अधिक ब्यौरे में न जाकर चंडीदास पर आते है, जो बगला के प्रथम महत्वपूर्ण कवि कहे जा सकते है। चडीदास की रचनाओ मे एक उल्लेख से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि १४०३ ई० के पहले ही वह करीब एक हजार गीत लिख चुके थे। यो तो इनका जन्म वीरभूमि जिले के छातना नामक गाव मे हुआ था, पर वह बहुत कम उम्र मे ही नानूर नामक गांव मे जाकर बस गये थे। वही पर वह बासुलि देवी के मन्दिर मे पुरोहित का काम करते रहे। कवि होने के अतिरिक्त एक प्रेमिक के रूप मे चडीदास की ख्याति यहांतक हो गई कि उनके नाम पर 'पागला चडी' या पागल चडी शब्द की उत्पत्ति हुई।

ऐसा मालूम होता है कि चंडीदास रामी नाम की एक धोबिन के प्रेमिक थे। बात बहुत ही साधारण है, पर इस प्रेम के वर्णन मे बड़ी-बड़ी अजीब बातें कही गई है। कहा जाता है कि जिस दिन रामी के साथ मिलन के नक्षत्र आ गये, उस दिन चंडीदास को इसका आभास पहले ही हो गया था। वह मछली बाजार मे मछली खरीदने गये हुए थे। वहा वह मोल-तोल कर रहे थे कि इतने मे एक ग्राहक आया, जिसे मछलीवाली ने कविवर से ठहराये हुए दाम से कम दाम पर बडी खुशी से मछली दे दी। इसपर कविवर ने मछलीवाली से इस प्रकार भेद-बुद्धिमूलक व्यवहार का कारण पूछा। तब मछलीवाली मुस्कराकर बोली—उसकी बात बिल्कुल भिन्न है, हम लोगों में परस्पर प्रेम है।

कविवर इस उत्तर के मथितार्थ पर सोचते रहे, और उसी दिन संयोग से रामी धोबिन उनके सामने पड गई और वह उसके प्रेम में व्याकुल हो गये। अब चडीदास ने सार्वजनिक रूप से अपने गीतो में उस धोबिन का उल्लेख शुरू किया, इससे हिंदू समाज मे बड़ी खलबली मची और उन्हें मंदिर के पुजारी के पद से हटा दिया गया, यहातक कि उन्हे जाति से भी निकाल दिया गया। चडीदास के भाई नकुल बीच मे पडे और किसी तरह यह तय पाया कि यदि चडीदास ब्रह्मभोज दे तो उन्हे फिर से जाति मे ले लिया जायगा। चंडीदास भोज देने पर राजी हो गये, पर उधर इस भोज की खबर रामी के पास पहुची। रामी इस खबर से बहुत दुखी हुई और वह रोती-धोती हुई उस स्थान पर पहुची, जहा ब्राह्मण भोजन करने मे लगे हुए थे। वहां जो उसने चंडीदास को देखा तो वह और भी रोने लगी। इसपर चंडीदास सारी परिस्थिति को भूलकर रामी के सामने इस प्रकार पहुचे, जैसे कोई भक्त देवी के सामने जाता है। कहा जाता है, कि इस समय कुछ ब्राह्मणो ने धोबिन के पीछे चतुर्भुजी जगदंबा को देखा।

मालूम होता है कि सब ब्राह्मणो ने चतुर्भुजी जगदबा को नही देखा, और केवल धोबिन को ही देखा। इसका नतीजा यह हुआ कि चंडीदास फिर जातिच्युत कर दिये गए। अब तो चडीदास और भी खुलकर सामने आये और उन्होंने खुल्लमखुल्ला धोबिन को वेदमाता गायत्री करके सम्बोधन करना शुरू किया। ब्राह्मण और भी नाराज हुए और उनकी जिन्दगी दूभर कर दी गई, फिर भी उनके गीतों मे ऐसा जादू था कि जब वह गाते थे तो जनता उमड़ पड़ती थी।

ऐसा कहा जाता है कि वह जिस समय गाव मे लोगो को कीर्तन सुना रहे थे, उस समय छत गिर पडी और उनकी मृत्यु हो गई।

चंडीदास की कविता का मुख्य विषय कृष्ण और राधा है, जिसमे पूर्वराग, दौत्य, अभिसार, संभोग-मिलन, अन्तिम विच्छेद और उसके बाद भाव-सम्मेलन या मानसिक रूप से मिलन है। चंडीदास का प्रचार बंगाल मे किसी भी प्रकार उससे कम नही है, जितना हिंदी-भाषी प्रातो मे सूर या तुलसी का है। काव्य की दृष्टि से भी उनकी रचनाएं बहुत उच्चकोटि की है और उस ढंग की किसी भाषा की रचना के साथ उसकी तुलना की जा सकती है। इस छोटी-सी पुस्तक मे उनके काव्य की सम्यक् आलोचना नही की जा सकती, फिर भी उन्होने कृष्ण की बासुरी के सबंध मे जो बात कही है—'कानेर भितर दिया मरमे पशिल गो, आकुल करिल मन प्रान' याने कान के अन्दर से होती हुई, मर्म मे प्रविष्ट होकर मन और प्राण को आकुल कर देती है, वही बात उनकी कविता के सबंध मे भी लागू होती है। चंडीदास को और भी अधिक श्रेय इसलिए मिलना चाहिए कि उनके समय मे भाषा अविकसित थी, इस कारण उन्हे एक तरफ तो भाषा का निर्माण करना पडा, दूसरी तरफ उसमे चमत्कारपूर्ण कविता लिखनी पड़ी।

चंडीदास तथा इस प्रकार के उस युग के कवियो की कविता को कूतने मे एक बात यह याद रखनी चाहिए कि यदि कोई तुल ही जाय तो इनकी सारी कविताओ को आंशिक रूप से पूर्ववर्ती विशेषकर संस्कृत काव्य की छाया, अनुकरण या जूठन प्रमाणित कर सकता है। इससे न तो चंडीदास बरी है और न हिंदी के प्राचीन महाकवि। इसलिए हम उस कसौटी को तो छोड ही देते है। अवश्य यहां यह बता दे कि छाया और अनुकरण के बावजूद उस युग के दूसरी भाषाओ के कवियो की तरह उनमें मौलिकता भी बहुत थी। चडीदास का रूप-वर्णन लीजिये—

सुधा छानिया केबा ओ सुधा ढेलेछे गो
ते मति श्यामेर चिकन देहा
अंजन गंजिया केवा खंजन आनिल रे
चांद निगाड़ी कइल थेहा —इत्यादि

—"किसने अमृत को छान करके उस अमृत को ढाला है, श्याम की चिकनी देह

उसीकी तरह है। कौन अजन लगाकर खजन ले आया और फिर चांद का सत निकाला, उसका सत निकालकर मुह बनाया। गुड़हुल को निचोड़कर कपोल बनाये गए। विम्बफल को हराकर किसने होठ बनाये और हाथी की सड को लजानेवाले भुजदंड बनाये।"

ढूढ़ने पर इस प्रकार का वर्णन सब प्राचीन संस्कृत तथा हिन्दी कवियो की रचनाओ मे प्राप्त हो सकता है, पर यह याद रहे कि चडीदास का समय चौदहवीं शताव्दी और कुछ ही हद तक पन्द्रहवी शताव्दी था। फिर भी ऐसे वर्णनो मे कोई विचित्रता नही है। पर भारत के प्राचीन कवियो की रचनाओ मे अधिकतर इसी प्रकार के वर्णन भरे पड़े है।

एक और उदाहरण लीजिये—

राघार कि होइलो अंतर व्यथा
सेजे वोसिया एकले थाकये विरले
ना शुने काहार कथा —इत्यादि

—' राधा को कितनी मानसिक व्यथा है। वह अकेली वैठी है, उसे एकात पसंद है, वह किसीकी वात नही सुनती। जैसे ध्यान लगा रही हो, वादल की तरफ देख रही है, आखो की पुतलिया स्थिर है। वह खाने मे रुचि नही रखती और जोगिनो की तरह लाल कपड़ा पहने हुए है। वह जूड़ा खोलकर फूलो को डाल देती है और फिर अपने लटकते हुए वालो को देखती है। वह आकुल नयनों से वादल की तरफ ताककर कुछ वडवड़ाती है। वह इकटक मोर और मोरनी के कंठ को देखती है। चंडीदास कहता है कि सांवरे के साथ नया परिचय मालूम होता है।"

ऊपर हम जो कुछ कह आये है, वह इस कविता पर भी लागू होता है। फिर भी चंडीदास की कुछ रचनाए ऐसी प्राप्त होती है, जिनमे मौलिकता इस माने मे वहुत अधिक है कि अनुप्रेरणा काव्यो से न लेकर शायद लोक-साहित्य और स्वानुभव से ली गई है। चुटीली भाषा के कारण वह जो कुछ कहते है, वह वहुत ही मर्मस्पर्शी वन गया है।

ऐमन पीरिति कभू देखि नाइ सुनि,
पराने परान वांधा आपना आपनि —इत्यादि

—"ऐसा प्रेम न कही देखा गया न सुना गया, प्राणों से प्राण अपने-आप वंधा

हुआ है। एक-दूसरे की गोद मे पड़े हुए है, फिर भी विछोह की वात सोचकर दोनो रो रहे है। वात यह है कि एक पल के लिए भी एक-दूसरे को न देखे, तो मरने लगते है। जल के विना मीन जैसे कभी नही जीती, वैसे ही यह प्रेम है। ऐसा प्रेम मनुष्यो मे कभी देखा नही गया। कहते है, सूर्य और कमल का प्रेम है, पर कमल तो ठंड में मरता रहता है और सूर्य गुलछर्रे उड़ाता है। चातक और वादल के प्रेम के साथ भी इसकी तुलना नही हो सकती, क्योकि चातक भले ही मर जाय, समय न आने पर वादल एक वूद भी पानी नही देता। पुष्प और मधुकर की भी इस प्रेम से तुलना नही की जा सकती, क्योंकि यदि मधुकर स्वयं न आवे, तो पुष्प नही जाता। चकोर और चद्रमा ये तो कुछ भी नही है। चंडीदास का कहना है कि तीनो भुवन मे ऐसा प्रेम नही देखा गया।

एक और पद लीजिये—

वधु तुमि से आमार प्रान
देह मन आदि तोहारे सपेछि
कुल शील जाति मान
अखिलेर नाथ तुमि हे कालिया
योगिर आराध्य धन।
गोप ग्वालिनि हम अति दीना
ना जानि भजन पूजन।
कलंकी वलिया डाके तवलोके
ताहाते नाहिक दुःख
तोमार लागिया कलंकेर हार
गलाय परिते सुख

—"प्रियतम तुम मेरे प्राण हो। मैंने देह, मन, कुल, शील, जाति, मान सव तुम्हे सौंप दिया। हे अखिल के नाथ श्याम, तुम योगियो के आराध्य धन हो। हम गोपियां है, वडी दीन है, भजन-पूजन कुछ नहीं जानती। सव लोग हमपर कलंक लगाते है, पर उसका मलाल नही है। तुम्हारे लिए कलंक का हार गले मे धारण करना सुख की वात है।"

चंडीदास की कविता को कथक सैकड़ो वर्षो से सुना रहे है और गायक

गा रहे हैं। वह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव के कारण वंगाल के वाहर विशेषकर उड़ीसा और आसाम मे, प्रचारित हुई।

विद्यापति

विद्यापति भी उसी प्रकार से वंगाल के कवि समझे जाते हैं, जिस प्रकार से चडीदास समझे जाते है। उनकी कविताओ का भी वंगाल में उसी प्रकार से प्रचार और प्रसार रहा है, जिस प्रकार से चडीदास की रचनाओ का प्रचार है। वगाली उनको वंगला कवि ही समझते रहे हैं और कोई वजह नही कि आगे उन्हे ऐसा न समझे। श्री प्रियरंजन सेन इस सम्वन्ध मे लिखते है—"संस्कृत के परदे को हटाकर भाषा के अपरूप सौंदर्य को लेकर विद्यापति आ खडे हुए। उनका घर मिथिला मे था और जिस भाषा मे उन्होने काव्य-रचना की, वह शुद्ध वंगला नही है, फिर भी वह वगाल के ही कवि हैं। कहीपर उनका प्रभाव इतना व्याप्त नही हुआ, जितना वगाल मे हुआ और वाद को जिस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनकी काव्यसाधना को मूर्त्त किया, वैसा भी कहीं संभव नही हुआ। विद्यापति वंगला भाषा के ही कवि हैं, यद्यपि मैथिल साहित्य के पक्ष में डिग्री हो चुकी है।"[1]

इसमें संदेह नही कि विद्यापति ने मैथिल भाषा मे रचना की, पर वंगाल मे उनकी रचनाओं का जो संस्करण प्रचलित है, वह मैथिल मे प्राप्त संस्करण से कुछ भिन्न है। ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा कि वंगालियो के द्वारा गाये जाते-जाते मूल रचना का वंगीकरण हुआ। साहित्य के इतिहास मे इस प्रकार की वात अज्ञात नही है। श्री दिनेश सेन का तो यहांतक कहना है कि वंगाल मे प्रचलित विद्यापति की रचनाएं कही-कही मिथिला में सुरक्षित उनके मैथिल संस्करण से उच्चकोटि के है। विद्यापति के नाम से प्रचलित कई उत्कृष्ट रचनाएं जैसे :

> जनम अवाध हम रूप नेहारिनु
> नयन न तिरपित भेल

वंगाल मे ही पाई जाती हैं और मिथिला मे उनका कोई पता नही है। अनु-

---

[1] वागला साहित्येर रूपरेखा, पृ० ५६

श्रुति यह है कि जसोर के राजा प्रतापादित्य के चाचा वसंतराय ने विद्यापति का वंगला संस्करण तैयार किया। जो कुछ भी हो, इस बंगला संस्करण के कारण विद्यापति को केवल रियायती तौर पर नही, एक विशुद्ध वगला कवि भी माना जा सकता है। यहांपर हम एक वात यह भी कह दें कि यों हिंदी के संग्रहो मे विद्यापति एक प्राचीन हिंदी कवि करके दिखाये जाते है, पर हिंदी के नवरत्नों तक मे उनकी गिनती नही है। हम यह कहने का साहस करते है कि विद्यापति की उचित कद्र हिंदी में नही हुई है। मेरा निजी मत यह है कि यह सूर या तुलसी से किसी प्रकार घटकर नही हैं।

विद्यापति की जीवनी के व्यौरे मे जाने की आवश्यकता नही है। हिंदी के संग्रहों मे भी उनकी जीवनी पढी जा सकती है। विद्यापति चौदहवी सदी के अंत की ओर पैदा हुए और ऐसा समझा जाता है कि वह वहुत दीर्घजीवी रहे। विद्यापति राजा शिवसिह के सभा-कवि थे। कहा जाता है, वह रानी से प्रेम करते थे, जो उसी प्रकार था, जैसे नक्षत्र के लिए पतग का प्रेम है। कहा जाता है कि विद्यापति और चडीदास मे गंगा-किनारे भेट भी हुई थी। विद्यापति का वंगीकरण किसी-किसी क्षेत्र मे इतना अधिक हुआ कि उनकी वगीकृत रचनाओं को वंगला के अलावा कुछ समझना मुश्किल है। प्रत्येक वंगाली के निकट सुपरिचित इन पंक्तियो को देखिये—

मरिव मरिव साख, निचय मरिव
कानु हेन गुण निधि, कारे दिये जावो।
तोमरा जतेक सखि, आछ मझु संगे,
मरणकाले कृष्णनाम लिख अमार अंगे।
ना पुड़िओ राधा अंग, ना भासाइयो जले,
मरिले वांधिया रेख, तमालेर डाले।

चंडीदास और विद्यापति की तुलना करते हुए डा० सेन कहते हैं, "ऐसा मालूम होता है कि चडीदास तो प्रकृति से अनुप्रेरित है, उनकी पुकार आत्मा की गहराइयो से उठी हुई पुकार है। नतीजा यह है कि साहित्यिक अलंकरण पर ध्यान नही दिया जाता, कविता एक स्वाभाविक सोते से उमडकर निकल पडती है और उसके विशुद्ध सोते मे कोई मिलावट नही है। पर विद्यापति एक आत्मज्ञान-सम्पन्न कवि और सुलझे हुए विद्वान् है। उनकी उपमाए और उत्प्रेक्षाएं प्रतिभा

से उज्ज्वल कवि-कीर्ति के रूप मे है। उनकी कविताएं फौरन कर्णों को मुग्ध कर लेती है और जिस साहस के साथ वह रंग भरते है, उनसे आंखे चकाचौंध हो जाती है।... चंडीदास उच्चतर मंडलो के पक्षी है, जहां संभव है, पार्थिव सौदर्य कम हो, पर वह स्वर्ग के अधिक निकट है। इसके विपरीत विद्यापति दिन भर सूर्य-चुंबित कुंजो और पुष्पोद्यानो मे विचरते रहते है, पर संध्या समय वह ऊंचे उडते है और वह चंडीदास को पकड लेते है।"[1] श्री अन्नदाशंकर राय और लीला राय ने भी विद्यापति के सम्बन्ध मे यह लिखा है, "यद्यपि विद्यापति ऐहिक और विदग्ध थे, फिर भी उनमें चंडीदास की आध्यात्मिक अतर्दृष्टि और भावनागत गहराई का अभाव है, जिसकी पूर्ति वह छन्द और वाक्य-विन्यास पर अद्भुत अधिकार से कर देते है। वह जिस प्रकार सौदर्य को उसके सब स्वरूपों मे चित्रित करते है, उससे वह निश्चित रूप से एक महाकवि प्रमाणित होते है।"[2]

इस सबध में यह भी स्मरण रखने योग्य है कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ विद्यापति से बहुत प्रभावित हुए। अन्नदाशंकर के अनुसार प्राचीन कवियो मे वह कालिदास और विद्यापति से ही अधिक प्रभावित हुए।

: ४ :

धार्मिक साहित्य

चडीदास और विद्यापति के बाद बगला मे पुराणों पर आधारित बहुत अधिक साहित्य उपलब्ध होता है। इस युग मे धार्मिक कथाओ को लेकर काव्य-रचना की परिपाटी बहुत अधिक चल पडती है। ये काव्य मगलगायनो के रूप मे सामन्तो की हवेली से लेकर किसान की कुटिया तक सर्वत्र पहुचते थे। मंगल-गायन का रिवाज अब भी प्रचलित है। एक मुख्य गायक होता है और आठ-दस साथ देनेवाले होते है, जो मुख्य गायक को घेरकर अर्धचन्द्राकार रूप मे बैठते है। श्रोता हजारो की संख्या तक पहुच जाते है। बगाल के पाल राजाओ के युग

---

[1] बंगला भाषा और साहित्य का इतिहास (सेन), पृ० १४६

[2] बगला साहित्य (पी. ई. एन), पृ० १५

मे मंगलगायकों को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला। पौराणिक विषयो मे कई ऐसे विषय भी आ जाते थे, जो सच कहा जाय तो पौराणिक नहीं है और केवल बंगाल मे ही प्रचारित है।

स्वाभाविक रूप से मंगलगायको मे बराबर ऐसे विषयो की खोज बनी रहती थी, जिनसे वे अपने श्रोताओ को मुग्ध कर सकें। इससे नये साहित्य की, अवश्य एक विशेष प्रकार के साहित्य की सृष्टि की ओर लोगों का ध्यान गया। कई बार ऐसा भी हुआ कि ये मगलगायक अच्छे कवि भी प्रमाणित हुए। हरिश्चन्द्र-शैव्या, नल-दमयन्ती आदि उत्तर भारत में सुपरिचित पौराणिक कहानियो के अतिरिक्त बेहुला, चंडीमंगल, मनसामंगल आदि बहुत-सी कहानियो के काव्य मे संस्करण प्रकाशित हुए। प्रकाशित हुए से मतलब प्रकाश मे आये है।

इन्ही मंगलगायको से अथवा उनके साहित्य से अनुप्रेरित होकर जिन लोगों ने स्थायी साहित्य की सृष्टि की, उनमे से कुछ ही के विषय में यहांपर विवरण दिया जा सकता है।

बंगला रामायण के लेखक कृत्तिवास का जन्म १३४६ ई० की फरवरी में हुआ। कहा जाता है कि उनके पूर्वपुरुष ७३२ ई० मे राजा आदिसूर के युग में कन्नौज से आये थे। कृत्तिवास के पूर्वपुरुष कई सौ वर्षो तक इधर-उधर रहने के बाद चौबीस परगना के फुलिया नामक गांव मे बस गये। कृत्तिवास संस्कृत काव्य और व्याकरण मे पाडित्य प्राप्त करने के बाद गौड के राजा से मिलने गये। वहां राजा ने उनका आदर-सत्कार किया और उनसे कहा कि कुछ मांगो, पर उन्होंने यह कहकर कुछ लेने से इनकार कर दिया कि मागना मेरी रीति नही है। राजा ने उन्हे सप्तकांड रामायण लिखने के लिए कहा और उन्होंने उसे करना सहर्ष स्वीकार किया।

कृत्तिवास की जो रामायण इस समय प्रचलित है, वह उनकी लिखी हुई असली रामायण से बहुत भिन्न हो गई है। क्षेपकों की भरमार है, इसके अतिरिक्त उसकी भाषा में बहुत परिवर्तन किया गया। एक तरफ यह जहा बहुत दु ख की बात है, वही पर इन्ही परिवर्तनो का परिणाम यह है कि आज भी कृत्तिवास की रामायण उतनी ही जीवित है, जितनी वह कृत्तिवास के समय मे रही होगी। दिनेश सेन ने यह बहुत सुदर बात कही है कि कृत्तिवास की रामायण करीब-करीब उस युग की रचना है, जिस युग मे चासर ने 'कैंटरबरी

टेल्स' लिखा था, पर जहां शेषोक्त पुस्तक केवल पुस्तकालयो की अलमारियो मे वद पडी रहती है और केवल सुधीजन ही उसे पढते है, वहा कृत्तिवास की रामायण घर-घर मे नित्य पाठ्य साहित्य वना हुआ है।

वहुत प्रयत्न करने पर भी कृत्तिवास की मौलिक रामायण का उद्धार कठिन मालूम होता है, पर कृत्तिवास के सस्करणो ने वगाल की जो सेवा की है, उसको देखते हुए दिनेश सेन ऐसे विद्वान् भी यह कहते है कि इन सेवाओ को देखते हुए कृत्तिवास की असली रामायण की विलुप्ति पर शोक करना कहा-तक उचित होगा। उनका कहना है कि जनता ने अवश्य ही कृत्तिवास की रामायण के उन अगो को वचा लिया होगा, जो सुदर और दिलचस्प थे, इसके अलावा समय की आवश्यकता के अनुसार शैली का सरलीकरण तथा आधुनिकीकरण हुआ होगा। रहे क्षेपक, सो उस युग के विचारो को स्थान देने के लिए जोडे गये होगे। ऐसा समझा जाता है कि वैष्णव कवियो ने इस पुस्तक मे भक्ति का उपादान जोड दिया होगा।

मजे की वात यह है कि परस्पर-विरोधी वैष्णव और शाक्त दोनो मत के लोगो ने कृत्तिवास के नाम से अपने-अपने वक्तव्य जोड़ दिये है। ऐसा करने से कृत्तिवास का भी भला हुआ और उनका भी भला हुआ। कृत्तिवास के नाम से उनकी वाते जनता तक पहुची और इन क्षेपको के कारण कृत्तिवास सव सप्रदायो मे प्रिय वने रहे। उत्तर भारत मे तुलसी की रामायण जिस चाव से पढी जाती है, उसी चाव से वंगाल मे कृत्तिवास की रामायण पढी जाती है।

कृत्तिवास के वाद भी वहुत-से वगाली कवियो ने रामायण को अपना विपय वनाया, पर वे कृत्तिवास की जनप्रियता प्राप्त न कर सके। कई लोगो ने रामायण के किसी एक विपय को लेकर जैसे सीता का वनवास या लक्ष्मण-दिग्विजय ऐसे विपय को लेकर काव्य-रचना की।

रामायण की तरह महाभारत के भी वगला संस्करण तैयार हुए। महाभारत के सवसे प्राचीन वंगला संस्करण के रचयिता के रूप में संजय का नाम उल्लेखनीय है। संजय ने महाभारत को वहुत सक्षेप मे लिखा, पर वाद में क्षेपको के कारण उनका महाभारत एक वहुत वड़ा ग्रथ हो गया। ऐसा समझा जाता है कि संजय कृत्तिवास के ही समसामयिक थे। संजय की कविता साधारण है, पर उनके क्षेपककारों मे कई, जैसे राजेद्रदास और गोपीनाथ दत्त ऊंचे दर्जे

के कवि थे।

महाभारत के अन्य रचयिताओ मे नसरतखां नामक एक कवि हो गये हैं, पर उनका महाभारत अब प्राप्त नही है। यह भी पता चलता है कि परागलखां नामक एक सामंत की आज्ञा पर कवीन्द्र परमेश्वर ने एक महाभारत लिखा, जिसका समय १४९४ ई० से १५२५ ई० है। यह द्रष्टव्य है कि मुसलमानो ने हिंदुओ के धार्मिक साहित्य के सृजन मे सक्रिय हाथ वटाया।

महाभारतकारों मे काशीराम दास सबसे प्रसिद्ध हुए हैं। उनका महाभारत उसी प्रकार से अबतक पढा जाता है, जिस प्रकार से कृत्तिवास की रामायण पढी जाती है। जिस प्रकार से प्रचलित कृत्तिवासी रामायण मे केवल कृत्तिवास का नाम-ही-नाम है, एक हद तक काशीराम दास के महाभारत का भी वही हाल है। उसमें न मालूम कितने क्षेपक जोड़े गये हैं और कितने परिवर्तन हुए हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि काशीराम दास ने स्वयं कुछ हद तक अपने से पूर्ववर्ती महाभारतकार नित्यानंद घोष के महाभारत को अपना लिया।

ऐसा समझा जाता है कि पूर्वी बंगाल मे संजय और कवीन्द्र परमेश्वर-रचित महाभारत तथा पश्चिमी बंगाल में नित्यानद का महाभारत प्रचलित था। काशीराम दास ने इन सबको समाप्त कर दिया और जैसाकि बताया जा चुका, वह ऐसा तभी कर पाये, जब उन्होंने नित्यानंद को आत्मसात् कर लिया। डा० दिनेश सेन ने यह दिखलाया है कि नित्यानद की रचना को अपनाते समय काशीराम दास ने कुछ मामूली परिवर्तन कर लिये। कई बार वह पूर्ववर्ती महाभारतकार की रचना को अपनाते समय उसे इस प्रकार परिवर्तित कर देते हैं कि वह एक नई चीज हो जाती है। इसके अलावा वह अपने महाभारत मे ऐसे विषयों का वर्णन करते हैं, जो पहले के बंगला महाभारतो में पाये नही जाते। उन स्थलो मे उनकी मौलिक प्रतिभा का जौहर दृष्टिगोचर होता है। उनकी शैली की एक विशेषता यह है कि वह दार्शनिक गुत्थियो में न पड़कर केवल कहानी कहते हैं। देव-द्विज मे उनकी असीम भक्ति है। उनकी रचना में पुनरुक्ति और अतिरंजन की भरमार है। फिर भी उनके महाभारत में वे सब तत्व हैं, जिनसे कोई रचना जनप्रिय हो सकती है। भाषा मे होने पर भी पंडितो ने उनके ग्रंथ को संस्कृत ग्रंथो की तरह पवित्र इसलिए मान लिया कि इससे उनके

शासन और शोषण को बल मिलता था। काशीराम दास का महाभारत बंगाल में एक शास्त्र के रूप में हो गया।

काशीराम दास के संबध मे ऐसा पता चलता है कि वह मेदिनीपुर जिले के आवाशगडा नामक गांव में पाठशाला के शिक्षक थे। वह सिगी नामक गांव के रहनेवाले थे, जहा कहा जाता है केशेपुकुर नाम से एक तालाव है, जिसका नाम उन्हीके नाम पर (काशी से केशे बना है) रखा गया था। काशीराम दास सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे पैदा हुए थे और सत्रहवी सदी के मध्य तक जीवित रहे।

जहां हिन्दी मे केवल रामायण (तुलसीकृत) घर-घर पहुची हुई है, वहा बगाल में कृत्तिवास की रामायण और काशीराम दास का महाभारत दोनो समान रूप से प्रचलित है। हिन्दी में महाभारत का कोई भी जनप्रिय संस्करण नही हुआ। कई लोगो का ऐसा विचार है कि कृत्तिवास और काशीराम दास ने सैकड़ों वर्षो तक बंगालियो के चरित्र का निर्माण किया। इसमें सन्देह नही कि उनका प्रभाव बहुत व्यापक रहा।

बंगला मे भागवत के भी सस्करण हुए, पर वे इतने जनप्रिय नही हो सके। राजा हुसेनशाह के आदेशानुसार मालाधर वसु ने १४७३ ई० में भागवत की रचना शुरू की और १४८० तक श्रीकृष्ण विजय नाम से इसे समाप्त कर दिया। इस कृति के लिए मुसलमान राजा ने उन्हें गुणराजखा की उपाधि दी। मालाधर वसु ने कोई शाब्दिक अनुवाद नहीं किया, और इसमे राधा का वर्णन है, जबकि भागवत मे राधा का कही पता नही है। इस प्रकार 'श्रीकृष्ण विजय' एक मौलिक रचना कही जा सकती है। भागवत पर आंशिक रूप से और भी कवियो ने लिखा, पर कोई भी मालाधर वसु की तरह प्रसिद्ध नही हुआ।

चंडी के बंगला अनुवादको मे भवानीप्रसाद कर सोलहवीं शताब्दी मे थे। वह जन्मान्ध थे, फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि अनुवाद मूल के बहुत निकट है। अन्ध कवि भवानीप्रसाद कोई ऊंचे दर्जे के कवि नही थे, अक्सर उनका तुक बेतुका होता था, फिर भी कही-कही उन्होंने मूल संस्कृत को जिस प्रकार कायम रखा है, वह विशेप रूप से ध्यान देनेयोग्य है। संस्कृति के उन

श्लोको का, जिनमे देवी की स्तुति की गई है, उनका वे कैसे अनुवाद करते हैं—

जेहि देवि वुद्धि रूपे, सर्वभूते थाके,
नमस्कार नमस्कार नमस्कार ताके।
जेहि देवि दया रूपे सर्वभूते थाके
नमस्कार नमस्कार नमस्कार ताके। —इत्यादि

वाद के युग में और वहुत-से लोगो ने चंडी का अनुवाद किया, जिनमे रूपनारायण घोष (जन्म १५७६ ई०), व्रजलाल (समय वही), यदुनाथ (सत्रहवीं सदी का उत्तरार्द्ध) विशेष उल्लेखनीय हे। इन सवके सम्बन्ध मे एक वात यह उल्लेखयोग्य है कि यद्यपि ये लोग मुख्यतः अनुवादक थे, फिर भी इनमे सर्वत्र मौलिक प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है।

वाद को चलकर शाक्त और वैष्णव सम्प्रदायो का जोर हुआ और साहित्य भी इन्हीं लीको पर चलने लगा। यद्यपि शक्ति-पूजा सारे भारत मे प्रचलित है, तथापि वंगाल मे चंडी की पूजा कुछ ऐसे रूपो मे हुई, जो अन्यत्र अप्रचलित है। दलाई चंडी, लखाई चडी, वांसुली, मनसा देवी कुछ ऐसी देवियां है, जिनकी पूजा वंगाल ही मे होती रही। मनमा देवी सर्प देवी है। इन देवियो के संवंध मे जो साहित्य इस समय प्राप्त है, वह वहुत प्राचीन नही है, पर ऐसा ज्ञात होता है कि इस विपय मे वहुत प्राचीन साहित्य था, जो वाद के साहित्य के अन्तर्भुक्त कर लिया गया। श्रावण के महीने मे मनसा देवी की पूजा होती है।

मनसा मंगल की कहानी का सार यह है कि शिवजी ने मनसा देवी से यह कहा कि चम्पक नगर के चाद सौदागर तुम्हारी पूजा करे, तभी तुम लोगो से पूजा प्राप्त कर सकोगी। इसपर मनसा देवी ने पहले चांद सौदागर को समझाया, पर वह नही माना। इसके विपरीत उसने कई वार देवी पर डंडा लेकर हमला कर दिया। चाद सौदागर शिव के पूजक थे, उन्होने मनसा की पूजा को स्वीकार नही किया। इसपर देवी कुपित हो गई और अपने सांपो को आज्ञा दी कि चांद सौदागर के गुआवाडी नामक नन्दन कानन से होड करनेवाले उद्यान को नष्ट कर दे। उद्यान के पहरेदार चाद सौदागर के पास गये, उन्होंने आकर मंत्र के द्वारा उद्यान को फिर ज्यों-का-त्यो वना लिया।

देवी ने देखा कि डर-धमकी से काम नही निकलेगा तो वह एक सुन्दरी के रूप मे चाद सौदागर के पास गई। चांद सौदागर उस सुन्दरी के जाल मे फस गये, पर उस सुन्दरी ने यह शर्त रखी कि जवतक स्वयं महाज्ञान मंत्र का त्याग-कर उसे सिखा नही देते, तवतक वह प्रसन्न नही होगी। चांद सौदागर ने उस स्त्री के जाल मे आकर मंत्र-वल त्याग दिया। वस ऐसा करना था कि वह सुन्दरी अन्तर्धान हो गई। तव चांद सौदागर समझे कि सुन्दरी कौन थी। अव देवी ने उस उद्यान को फिर से नष्ट कर दिया। अवकी चाद सौदागर खुद तो कुछ कर न सके, पर उनके एक मित्र को भी महाज्ञान मंत्र आता था और उन्होंने आकर उद्यान को ठीक कर दिया। तव देवी ने छल और कौशल से उस मित्र को ही मार डाला। इसके वाद एक-एक करके चाद सौदागर के छहो पुत्र भी मारे गए।

चांद सौदागर की वीवी ने अपने पति को वहुत समझाया, पर चाद सौदागर नही माने। विधवा पतोहुओ के विलाप से वह वहुत परेशान हुए, अन्त मे वह समुद्र-यात्रा के लिए निकले। रास्ते मे मनसा देवी ने आंधी भेजकर उनके सव जहाजो को नष्ट कर दिया. केवल एक जहाज मधुकर वचा, जिसमे चांद सौदागर सवार थे। मनसा देवी ने इसे भी डुवाने का प्रयत्न किया, पर यह पानी के नीचे जाकर भी मछली की तरह ऊपर आता रहा। मनसा देवी ने अंत मे हनुमानजी की सहायता ली और जहाज को डुवा दिया। चांद सौदागर डूवने लगे, पर मनसा देवी का उद्देश्य उन्हे मारना नही, वल्कि उनसे पूजा प्राप्त करना था, क्योकि तभी दुनिया मे उनकी पूजा हो सकती थी। मनसा देवी ने अपना पद्म फेंक दिया, और चांद सौदागर ने डूवते हुए उसकी तरफ हाथ वढाया, पर ज्योंही उसे स्मरण हो आया कि मनसा देवी का एक नाम पद्मा भी है, त्योही उन्होंने हाथ खीच लिया। इसपर मनसा देवी प्रकट हुई, और चाद सौदागर से वोली—अव तुम मान जाओ तो तुम्हारी सारी सम्पत्ति भी वापस आ जाय और छहो लडके भी जीवित हो जाय। और लाभ भी होगा।

पर चाद सौदागर ने कहा कि जिन हाथो से महादेव की पूजा की है, उन हाथो से तुम्हारी पूजा करके मैं उन्हे अपवित्र नही करूंगा।

मनसा देवी उन्हे मार नही सकती थी, इसलिए तीन-चार दिन सघर्ष के वाद चाद किनारे पहुच गये। चांद जिस देश में पहुचे, वहापर उनके मित्र

चंद्रकेतु का राज्य था। चांद एकदम नंग-धडंग थे, उन्होने श्मशान से कुछ चीथडे उठा लिये और किसी तरह लज्जा बचाकर वह चद्रकेतु के महल मे पहुचे। मित्र ने उनका स्वागत किया और कई दिनो के बाद वह खाने के लिए बैठे। पर खाने के पहले मनसा देवी पर तर्क छिड़ गया और चाद को मालूम हुआ कि चद्रकेतु मनसा देवी का पूजक है। इसपर उन्होंने खाना खाने से इन्कार किया और मित्र के दिये हुए वस्त्र उतारकर चीथडे पहनकर निकल गये। इसके बाद वह भीख मागकर कुछ खाद्य द्रव्य प्राप्त कर नहाने के लिए नदी मे उतरे, पर इधर मनसा देवी के भेजे हुए चूहे ने सब चीजे चट कर ली थीं। तब चाद सौदागर को मजबूर होकर केले के छिलके से अपनी भूख शात करनी पडी। इसके बाद वह एक ब्राह्मण के यहां नौकर हो गये। मनसा देवी ने उनके दिमाग पर असर डाला-और वे खेत मे जाकर फसल काटते समय अनाज को तो फेकने लगे और जिस अश को छोड़ना चाहिए, उसे रखने लगे। जब ब्राह्मण ने यह देखा तो उन्हे नौकरी से निकाल दिया। इसके बाद वह जगल में लकडी काटने चले। उन्हे लकडियो की अच्छी पहचान थी, इसलिए लकडहारे तो लकड़ी काटते रहे और वह चंदन बटोरते रहें।

वह चंदन लादकर बाजार की तरफ जा रहे थे कि मनसा देवी के इशारे से हनुमानजी ने अपने पैर की छिगुनी से उसे छू दिया, इससे वह इतना भारी हो गया कि चाद सोदागर को उसे छोडकर चल देना पडा। इसपर वह पागल-से बडबडाते हुए इधर-उधर भटकने लगे और एक ऐसी जगह पहुचे, जहां चिडीमार जाल बिछाकर चिड़िया पकड रहे थे। चिड़ियां जाल मे आने ही वाली थी कि वह बड़बडाते हुए, उछलते-कूदते, जाल के पास जा पहुचे। इससे चिडिया उड गई और चिडीमारो ने उन्हे बहुत पीटा।

इस प्रकार अनेक कष्ट उठाने के बाद वह अपने घर पहुचे और साल भर के अन्दर उनके एक लडका हुआ, जिसका नाम लक्ष्मीदर रखा गया। ज्योतिषियों ने यह बताया कि यह लडका अपने विवाह के दिन साप से डसा जाकर मर जायगा। बेहुला से उसकी शादी तय हो गई। चाद को तो मालूम था कि क्या होनेवाला है, पर वह रानी की इच्छा का विरोध न कर सके। चांद ने लडके के लिए एक लोहे का मकान बनवाया, जिसमे साप तो क्या, एक सूई भी नही घुस सकती थी। जहा-तहा मोर और नेवले पहरे पर रखे गए। सर्प

विप के सब प्रतिषेधक इकट्ठे कर दिये गए। संपेरे और कनफटे भी बुलाये गए।

मनसा देवी उस लोहार से मिली, जिसने मकान बनाया था और बोली कि तुम इसमे एक बाल की सांस छोड़ दो। लोहार बोला कि मै तो काम कर चुका और मजदूरी भी पा चुका। पर जब मनसा देवी ने उसे धमकाया तो उसने जाकर मकान को देखने के बहाने एक छेद करके उसमे कोयला भर दिया।

जब लक्ष्मीदर अपनी दुलहिन के साथ शादी के लिए जा रहा था तो कई अशुभ लक्षण दिखाई पड़े। शादी हो गई और सब लोग चले गए, लक्ष्मीदर सो गया और बेहुला पहरे पर बैठी रही। एकाएक उसने देखा कि एक साप कही से भीतर घुस आया। बेहुला ने उसे दूध पिलाने के बहाने पकड़ लिया। इसी प्रकार उसने कई साप पकडे। अन्त मे बेहुला को भी नीद आ गई और एक साप ने आकर लक्ष्मीदर को डस लिया। आगे कहानी यह है कि बेहुला ने मनसा देवी की पूजा करके अपने पति को बचाना चाहा, मनसा देवी पहले तो नही मानी, फिर पसीज गई, यहातक कि लक्ष्मीदर के और भाई भी जीवित हो गये। जब सातो लडके जाकर चाद सौदागर के सामने खडे हो गये और बेहुला ने जोर डाला तो चांद सौदागर भी मनसा देवी के पूजक हो गये।

इस कहानी को लेकर बंगाल के बीसियो कवियों ने काव्य लिखे है। इस प्रसग के पहले कवि मैमनसिह निवासी हरिदत्त बारहवी सदी मे उत्पन्न हुए थे। उनकी कविता अच्छी नही थी और वह लुप्त हो गई, पर बाद के कवियों की रचनाओ मे उनका उल्लेख मिलता है। **विजयगुप्त** ने (जन्म १४४८ ई०) जो 'मनसा-मगल' लिखा, वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। 'मनसा-मगल' बहुत बडी पुस्तक है, और बगाल के कई जिलो में एक धार्मिक पुस्तक समझी जाती है।

विजयगुप्त के समसामयिक **नारायणदेव** ने भी एक 'मनसा-मगल' लिखा उनकी कविता कही-कही ऊचे दर्जे की है। **क्षेमानंद** ने भी एक 'मनसा-मंगल' लिखा। औरो के मुकाबले में उनका मनसा-मगल संक्षिप्त है, और उसमें केवल पाच हजार पंक्तियां हैं। शायद इसी कारण वह इतना प्रचारित हुआ। 'मनसा-मंगल' का विषय ऐसा था, जिसमे मध्ययुग की सफल कविता के सब उपादान आ सकते थे, इसीलिए कवियो ने इसकी तरफ इतना ध्यान दिया।

मगला चडी पर भी प्रान्तीय रूप से बहुत-सी कहानियां बनीं और उनपर

वंगाल के वहुत से कवियो ने वहुत-से काव्य लिखे। पर मंगला चंडी पर जिन कवियो ने लिखा, उनमे से कवि कंकरण मुकुंदराम चक्रवर्ती वहुत ऊचे दर्जे के कवि हो गये हैं। चरित्र-चित्रण और कविता दोनो दृष्टियों से वे वंगला-साहित्य मे अमर स्थान रखते हैं। अध्यापक कावेल और डा० ग्रियर्सन ने उनकी रचना की वहुत प्रशंसा की है। डा० ग्रियर्सन का कहना है कि उनकी कविता हृदय से निकली हुई थी, स्कूल से निकली हुई नही, और उसमे ऊंचे दर्जे की कविता और वर्णन-शक्ति पाई जाती है। अन्नदाशंकर राय का कहना है कि वह पद्य मे जन्मजात कहानीकार और उच्चकोटि के व्यंग्य लिखनेवाले थे, साथ ही वह एक अच्छे निरीक्षक थे। 'उनके चरित्र आज भी जीवित है, और आप कही भी वंगाल के देहात मे उनसे मिल सकते हैं।'

मुकुन्द वर्धमान ज़िले के एक गाव के रहनेवाले थे। उन दिनो वहां एक ऐसा मुसलमान शासक था, जो लोगो को वहुत सताता था। उसके अत्याचारो से घवड़ाकर मुकुन्दराम श्रीमंतखां नामक एक व्यक्ति की सहायता से अपने गाव से भाग गए। कई दिनो तक भूख-प्यास से जर्जर रहने के वाद उन्होने चंडी की पूजा की। स्वप्न मे चडी ने उनको दर्शन दिया और कविता के नियम वताकर एक पुस्तक लिखने के लिए कहा। इसके वाद वह ब्राह्मण भूमि आरा मे गये, वहा राजा वांकुराराय ने उन्हे आश्रय दिया। प्रमाणो से ऐसा ज्ञात होता है कि उन्होने चंडी काव्य की रचना १५८६ ई० के पहले ही खत्म कर दी थी। मुकुन्दराम की रचना कितनी वडी थी, इसका अनुमान इससे लग सकता है कि उसमें पचीस हजार पंक्तियो से अधिक सामग्री है। अध्यापक कावेल ने इसके काफी अंश का अनुवाद अंग्रेजी मे किया है। उनकी रचना इतनी जनप्रिय इस कारण हुई कि उसमे उस युग मे फैली हुई बुराइयों के सम्बन्ध मे इंगित है। एक कवि, जो अपने घर और गांव से अत्याचारो के कारण भगाया गया, उसके लिए कुछ कड़ुवापन स्वाभाविक था। उनकी विशेषता इस वात मे है कि वह आलंकारिक ढंग से वर्णन न करके जीवन से मसाला लेते है। वंगाली जीवन के सभी पहलू उनकी रचना में चित्रित है, इस दृष्टि से वह एक ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रंथ भी कहा जा सकता है।

धर्म के अन्य अंगो तथा विषयो को लेकर भी वहुत-सी कविताए और काव्य लिखे गए, पर उनके व्यौरे मे जाने की कोई आवश्यकता नही है। चैतन्य

महाप्रभु एक धार्मिक नेता थे, पर साहित्य पर उनका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। नवद्वीप बगाल मे संस्कृत साहित्य का केद्र था। वहापर बड़ी-बडी पाठशालाएं थी, जहां दूर-दूर से लोग विद्या प्राप्त करने के लिए आते थे। चैतन्य महाप्रभु १४८६ ई० मे मीनापुर मे पैदा हुए थे। चैतन्य महाप्रभु के पूर्वपुरुप उड़ीसा के जाजपुर के रहनेवाले थे, पर एक राजा के अत्याचार के कारण श्री हट्ट के एक गाव मे जाकर वस गये थे। चैतन्य महाप्रभु के पिता जगन्नाथ मिश्र नवद्वीप मे शिक्षा प्राप्त करते हुए वही वस गये, और शची देवी से उनका विवाह हुआ। चैतन्य महाप्रभु का नाम विश्वम्भर था, पर उन्हे निमाई कहकर पुकारा जाता था। उनके वडे भाई विश्वरूप शादी होने के एक रात पहले घर से भाग खड़े हुए। शची देवी इस वात से इतनी दुखी हुई कि उन्होने छोटे लड़के को शिक्षा देने के विरुद्ध राय दी, क्योकि उनके मतानुसार शिक्षा से वैराग्य उत्पन्न होता था। जो कुछ भी हो, यह वात नही चली और निमाई पढने वैठाये गए। वह जिस विषय को भी पढते, उसीमे पारगत हो जाते और कुछ ही वर्षो मे एक प्रख्यात विद्वान हो गये। थोडे दिनो मे उन्होने एक टोल या पाठशाला भी खोल ली। इन्ही दिनो केशव काश्मीरी नाम से एक पडित दिग्विजय करते हुए नवद्वीप आये। सभा बुलाई गई और उसमे निमाई ने केशव काश्मीरी को परास्त कर दिया। इसके वाद वह गृहस्थ हो गये, पर अधिक दिन निभ नही सके और वह संन्यासी हो गये। फिर तो वह धर्ममत प्रचार करते हुए दक्षिण भारत तक गये। ४८ वर्ष की उम्र मे उनका देहांत हुआ। वैष्णव धर्म को उनसे वल मिला और वह स्वयं अवतार मान लिये गए।

चैतन्य महाप्रभु उस युग मे इतने प्रसिद्ध हुए तथा उन्होने जनता को इतना प्रभावित किया कि उन्हीकी जीवनी को लेकर वगला मे एक नये ढग के साहित्य का उदय हुआ, जिसे जीवनी-साहित्य कह सकते है। कालिदास नामक एक शिष्य ने 'चैतन्य चरितामृत' नाम से एक ग्रथ लिखा, जो वहुत प्रसिद्ध हुआ। चैतन्य महाप्रभु-प्रचारित वैष्णव धर्म इस कारण शायद जनता मे वहुत जल्दी फैल गया कि महाप्रभु ने व्यवहार मे शूद्र और ब्राह्मण मे कोई फर्क नही रखा। उनके कई शूद्र भक्त इतने ऊचे माने गये कि ब्राह्मण भक्त सर्वदा उनके पैर छूते रहते थे। एक ब्राह्मण नरहरि चक्रवर्ती ने शूद्र नरोत्तम की जीवनी लिखी और उसमे नरोत्तम के प्रति ऐसी भक्ति दिखाई, मानो वह भी एक छोटा-मोटा चैतन्य हो।

इस प्रकार बगाल के साहित्य मे और जीवन मे एक नई धारा बही और इस धारा का वाहन संस्कृत नही, बंगला बनी। चैतन्य महाप्रभु ने चंडीदास और विद्यापति का प्रचार किया और इस प्रकार एक नये युग का प्रवर्तन हुआ।

महाप्रभु चैतन्य के साथ जो लोग दक्षिण की यात्रा मे गये थे, उनमे गोविंद नाम का एक लोहार भी था। यह अपनी स्त्री से लड़कर घर से निकल गया था, इसने महाप्रभु के अनजान मे कुछ सस्मरण पद्य मे लिखे। ये संस्मरण 'कड़चा' के नाम से प्रसिद्ध है और इन सस्मरणो से उस युग का बहुत सुदर वर्णन मिलता है। वैष्णव साहित्य मे इस 'कडचा' का बहुत ऊंचा स्थान है। गोविंद लोहार की रचना मे कही संकीर्णता नही है, इसका कारण यह है कि महाप्रभु मे संकीर्णता नही थी। 'कड़चा' से यह भी पता लगता है कि चैतन्य महाप्रभु कथित अछूतो को विशेपकर अपने साथ लेने की चेष्टा करते थे।

वृंदावनदास (जन्म १५०७ ई०) ने भी चैतन्य महाप्रभु के जीवन पर 'चैतन्य भागवत' लिखा। इसमे पच्चीस हजार पंक्तिया है। 'चैतन्य भागवत' मे महाप्रभु को विष्णु का अवतार दिखाया गया है, और इसीलिए इसका नाम भागवत रखा गया। 'चैतन्य भागवत' मे उस युग का अच्छा वर्णन भी मिलता है।

जयानंद (जन्म १५१३ ई०) ने भी चैतन्य महाप्रभु पर एक ग्रथ लिखा, जिसका नाम 'चैतन्य मंगल' पडा। पर इन सबसे अधिक प्रभावशाली लेखक कृष्णदास (जन्म १५१७ ई०) हो गये और उनकी रचना 'चैतन्य चरितामृत' इस प्रकार की रचनाओ मे सबसे सफल प्रमाणित हुई। कृष्णदास उच्च शिक्षा-प्राप्त थे और उन्होने वृदावन की यात्रा भी की थी। जिस समय वह ७९ साल की उम्र के थे, उन्होने 'चैतन्य चरितामृत' की रचना आरम्भ की। कई लोगो ने उपकरण देकर उनकी सहायता की, फिर भी उनकी रचना के लिए सारा श्रेय उन्हीको प्राप्त है। बहुत दिनो तक बगाल के बाहर रहने के कारण उनकी भाषा मे हिंदी का पुट यथेष्ट है। संस्कृत के बडे-बड़े शब्द भी उनकी रचना मे आते है, इस कारण उनकी भाषा अन्य वैष्णव कवियो की तरह प्रसाद गुणयुक्त नही है। 'चैतन्य चरितामृत' मे कुल मिलाकर १५,०५० छन्द है, और तीन खड है। चैतन्य महाप्रभु की अन्य जीवनियो के मुकाबले मे इसमे अंतिम

हिस्से का वर्णन विस्तृत है। वैष्णव सिद्धांतों का भी इसमे लम्बा प्रकरण है और यद्यपि इसका प्रचार आम लोगो मे है, फिर भी यह विद्वानो की चीज है।

और भी वहुत-से लोगो ने चैतन्य महाप्रभु पर लिखा, जिनमे **लोचनदास** (जन्म १५२३ ई०) का 'चैतन्य मगल' उल्लेखनीय है। चैतन्य के अन्य साथियो मे भी कुछ साहित्य तैयार हुआ। इसके अतिरिक्त वैष्णवो के सिद्धातो को लेते हुए वहुत-सी पुस्तके लिखी गई। वैष्णवो के लिए कुछ विशेष भजन भी लिखे गये, जिनको पद कहते है। यह तो हम पहले ही वता चुके है कि वैष्णवों ने चडीदास और विद्यापति के पदो को अपनाया।

चडीदास और विद्यापति के वाद सबसे वड़े पदकर्ता **गोविंददास** (१५३७-१६१२ ई०) माने गये है। गोविददास के पिता महाप्रभु चैतन्य के विशिष्ट साथी थे, पर वह जहा रहते थे, वहा शाक्तों का जोर था, इसलिए उन्हे गाव छोडकर अन्यत्र वसना पडा। गोविंददास के संवंध मे भी यह अनुश्रुति है कि वह पहले शाक्त थे, पर एक वार ४० साल की उम्र मे वह पेचिश से बुरी तरह पीडित हुए। वचने की कोई आशा नही थी, पर एक वैष्णव ने उन्हे वचा लिया, इससे वह वैष्णव वन गये। उन्होंने कथित व्रज वोली मे भी पद लिखे। व्रज वोली को व्रजभाषा के साथ एक करके न समझा जाय। वगाल के वैष्णवो ने व्रज की यात्रा करते-करते एक नई वोली ही वना डाली, जिसका नाम उन्होने व्रज वोली रखा। इस वोली का मैथिल से वहुत निकट सवध है। जो कुछ भी हो, गोविददास कविवर चडीदास और विद्यापति के वाद ही उस युग के सबसे ऊचे कवि माने जाते है। उन्होने वंगला मे भी लिखा है, पर यहा हम उनकी व्रज-वोली की रचना का नमूना देगे—

जहां जहां अरुण चरण चलि जात, तहं तहं धरनि हइय मझुगात
जो सरवर पहुं निति निति नाह, हल भरि सलिल होई तथि माह
जो दरपण पहुं निज मुख चाह, मझु अंग जोति होई तथि माह।
जो वीजन पहुं वीजइ गात, मझु अंग तहि होई मृदु वात।
जंह पहुं भरमइ जलधर श्याम, मझु अंग गगन होई तछु ठाम।

—'जहा-जहा उनके सुदर चरण पडते है, मेरा शरीर वही की जमीन हो जाय। जहां-जहां जिस सरोवर मे कृष्ण स्नान करते है, मैं उसका पानी हो जाऊं। जिस दर्पण मे वह अपना मुख देखते है, मेरा अग उसकी चमक हो जाय। जिस

पत्ते को वह झलते है, मैं उसकी मन्द बयार हो जाऊं। जहां-जहां जलघर श्याम मडराते है, मैं वही का आकाश वन जाऊं।'

गोविंददास के बाद ज्ञानदास और बलरामदास भी उल्लेखनीय है, यो तो और भी बहुत-से लोगो ने ब्रज बोली तथा बंगला मे पद लिखे।

यह स्मरण रहे कि महाप्रभु चैतन्यदेव के बाद जिस प्रकार उनके नाम से एक सम्प्रदाय बन गया, चैतन्यदेव उस प्रकार का कोई संप्रदाय बनाना नही चाहते थे। हम यहा इस झगड़े मे न पडकर इतना ही बतायेंगे कि वैष्णवो के उत्थान का सबसे बड़ा परिणाम यह हुआ कि बंगला भाषा केवल लौकिक भाषा न रहकर वैष्णवो की धार्मिक भाषा हो गई। यह बात यहांतक स्वीकृत हो गई कि बंगला धार्मिक पुस्तको की टीकाएं सस्कृत मे लिखी गई, और संस्कृत पुस्तकों मे बंगला पुस्तकों के उद्धरण दिये गए जैसा कि श्री दिनेश सेन ने बताया, बंगला को वही मर्यादा दी गई, जो बौद्धों के कारण पाली को प्राप्त हुई थी। कहना न होगा कि बंगला की वृद्धि तथा प्रसार के लिए यह एक बहुत बड़ा कारण सिद्ध हुआ।

उन्ही दिनो बगाल मे शाक्तो का भी जोर हुआ, पर उनमे चैतन्य महाप्रभु की तरह कोई नेता उत्पन्न न हो सकने के कारण साहित्य मे उनका दान अधिक न हो सका। फिर भी वैष्णवो के विरुद्ध कुछ व्यंग्य कविता आदि लिखी गई।

कुछ लोग यह दावा करते है कि महाप्रभु चैतन्य कीर्तन के प्रवर्तक है, पर यह बात सत्य नही ज्ञात होती। महाप्रभु चैतन्य के पहले ही राजा लक्ष्मणसेन के दरबार में जयदेव के गीत कीर्तन के रूप में गाये जाते थे। जो हो, इतना मानना कोई अत्युक्ति नहीं है कि चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन मे एक नई जान फूंकी और उसे जनता की चीज बना दिया। सभव है, इसीसे इस अनुश्रुति का उद्भव हुआ हो कि चैतन्य महाप्रभु कीर्तन के प्रवर्तक हैं। बगला कविता को जन-प्रिय बनाने मे कीर्तन का बहुत बडा हाथ रहा।

यहां यह बता दिया जाय कि उस युग मे हिंदी और बंगला का अटूट सम्बन्ध था और बगला मे बराबर हिंदी शब्द भरे गये। यह तो हम पहले ही बता चुके है कि ब्रज के साथ निकटता स्थापित करने के लिए बंगाली कवियो ने ब्रज बोली नाम की एक बोली ही बना डाली और उसमे एक अच्छे-खासे

साहित्य की सृष्टि हुई। वैष्णवो का यह युग बंगाल मे अठारहवी सदी तक चलता रहा।

इसके बाद हम यह देखते है कि वैष्णव साहित्य का उतना जोर नही रह गया, यहांतक कि अठारहवी सदी के राजा कृष्णचन्द्र जो उस युग के बंगला के प्रसिद्ध पृष्ठपोषक थे, वैष्णवो के कुछ विरोधी रहे। उनके समय मे कविता की वडी उन्नति हुई और अवतक कविता का उद्देश्य जहा वहुत-कुछ धार्मिक था, अव राजा तथा उसके सामंतो को खुश करने का साधन वन गई। इस मोड की वात को श्री दिनेश सेन ने वड़े मार्मिक शब्दो मे वताया है। उनका कहना है—'अव कवियो के लिए राजमहल के द्वार खुल गए, इसलिए वे अव इस वात की परवा नही करते थे कि स्वर्ग के द्वार उनके लिए वन्द हो गये।' दूसरे शब्दो मे अव उस कविता की सृष्टि हुई, जिसे हम दरवारी कह सकते है।

काव्य के विषय वहुत-कुछ वही रहे, पर उनके सवध मे वक्तव्य का ढग वदल गया। नैपध-चरित, दशकुमार-चरित, हर्ष-चरित आदि सस्कृत काव्यो को आदर्श के रूप मे माना गया और उस तरह के काव्य लिखे जाने लगे। अत्युक्तियो और अतिरजित वर्णनो की भरमार हो गई। शृगार रस की प्रधानता हो गई और नख-शिख-वर्णन यानी अतिरजित ढंग से स्त्रियो के सौदर्य का वर्णन साहित्य की विशेपता हो गई। इसी युग मे राजा कृष्णचन्द्र के **राजकवि भारतचन्द्र राय** का उद्भव हुआ। भारतचंद्र एक वहुत शक्तिशाली कवि थे। उन्होने अपने विद्यासुदर तथा अन्य काव्यो मे शृगार रस को ही प्रधानता दी है, पर भाषा की जादूगरी, सुंदर अभिव्यक्ति, चुस्त छद आदि मे जो उन्होने कमाल दिखलाया, वह वंगला साहित्य मे अभूतपूर्व था। वह कोई दार्शनिक कवि नही थे, पर इसके अलावा वह भारत के किसी भी प्राचीन कवि के मुकावले मे अच्छी तरह खडे हो सकते है। उन्होने सस्कृत साहित्य का अच्छी तरह अध्ययन किया था और उन्होने अपने सामने यही उद्देश्य रखकर काव्य की रचना की कि वह संस्कृत काव्यो के मुकावले मे कुछ लिखेगे। भारतचन्द्र को वहुत अधिक सफलता मिली। इतनी अधिक सफलता मिली कि उनके वाद के कवियो मे सैकडो ने उनका अनुकरण किया, इस प्रकार उनकी शैली को सार्वजनिक मान्यता प्राप्त हुई। उनके संवंध मे वाद को और लिखेगे।

सैयद अलावल (जन्म १६१८ ई०) भी इस युग के वहुत वडे कवि हुए।

उन्होंने मुहम्मद जायसी के पद्मावत का अनुवाद बंगला मे किया । अलावल फरीदपुर-स्थित जलालपुर के नवाव के मंत्री शमशेर कुतुव के पुत्र थे। जव वह नौजवान ही थे, उस समय वह अपने पिता के साथ समुद्र-यात्रा मे गये। रास्ते मे पुर्तगाली डाकुओ ने हमला किया, और उनके पिता मारे गये। वह वाल-वाल वच गये । किसी प्रकार भागकर वह अराकान पहुचे, वहा उन्हे मुस्लिम प्रधान मंत्री भागन ठाकुर का आश्रय मिला । वही वह वहुत सालो तक रहे और उन्होने अपने आश्रयदाता की आज्ञा के अनुसार 'पद्मावत' का वंगला में अनुवाद किया । जव यह अनुवाद हो गया तो उन्हे दो फारसी पुस्तकों 'सैफुलमुक' और 'वदी उज्जमाण' के अनुवाद की आज्ञा मिली, पर वह कुछ ही अनुवाद कर पाये थे कि उनके आश्रयदाता की मृत्यु हो गई। इसके वाद उन्होंने लिखना छोड दिया, पर राजनैतिक उथल-पुथल मे किसीके कहने पर वह जेल भेज दिये गए। यह १६५८ ई० की घटना है। वडी मुश्किल से वह जेल से छूटे। एक मुस्लिम सामन्त ने फिर उनमे दिलचस्पी ली और उन्होने उन दो फारसी पुस्तको का अनुवाद समाप्त कर दिया। इसके अतिरिक्त उन्होने राधाकृष्ण तथा सती मैना आदि विपयो पर वहुत-सी कविताएं लिखी ।

अलावल ने मुख्यत अनुवाद के क्षेत्र मे काम किया, पर यह कहा जाता है कि उन्होंने जिन काव्यो का अनुवाद किया, वे उन्हे मूल से सुंदर वनाने मे समर्थ हुए। अलावल भी भारतचंद्र राय के ढर्रे पर चले और यद्यपि वह भारतचंद्र से कुछ छोटे माने गये हैं, फिर भी वह उस युग के वगला कवियो में सर्वश्रेष्ठ हैं। यह एक वहुत ही दिलचस्प वात है कि फारसी के विद्वान् होते हुए भी उन्होने अपनी वगला रचनाओ मे सस्कृत शब्द वहुत अधिक भरे है। भारतचद्र और अलावल इस प्रकार वगला मे एक नये युग की सूचना करते है। अलावल की विशेपताओ मे एक यह भी है कि वह जव किसी हिंदू देवता-देवी या त्योहार अथवा रिवाज का वर्णन करते है, तो वह उसके व्योरे मे गलती नही करते ।

अलावल की रचनाए चटगाव और अराकान के इलाको मे उर्दू लिपि मे प्राप्त हुई है। सम-सामयिक हिंदुओ मे उनका प्रचार नही था, यद्यपि विपय आदि की दृष्टि से उनके साहित्य को हिंदू साहित्य ही कहा जायगा। पद्मावत की कथा हिंदी-भापियो के लिए सुपरिचित है। यह रानी पद्मावती या पद्मिनी की गौरव-गाथा है। एक मुसलमान ने इस कहानी को मूल मे लिखा, दूसरे मुसलमान ने

उसके अनुवाद के लिए तीसरे मुसलमान से कहा, मुसलमानो ने ही इस रचना को उर्दू लिपि मे लिखकर उसको सुरक्षित रखा। इससे ज्ञात होता है कि सारे भारत मे, जायस से लेकर अराकान तक इतिहास की घटनाओ को उनके गुण-दोष के कारण सराहा या बुरा-भला कहा जाता था। अलाउद्दीन खिलजी मुसलमान था, इस नाते उसने जो कुछ भी किया, वह सारे मुसलमानो के लिए पवित्र है, इस प्रकार की धारणा उस युग में नही थी, यद्यपि मुगलो का राज्य था। बाद को चलकर किन-किन कारणो से इस प्रकार की धारणा लुप्त हो गई, यह खोज का विषय है।

हम पहले ही बता चुके है कि भारतचद्र ने विद्यासुदर पर एक बहुत बढ़िया काव्य लिखा था। भारतचद्र का जन्म १७२२ मे हुगली जिले मे हुआ। उनके पिता एक सामत थे और उन्हे राजा की उपाधि मिली हुई थी, पर वह बर्दवान के राजा से किसी बात पर लड गये और उसीमे उनका सर्वनाश हो गया।

भारतचंद्र की कविता मे ये सभी बाते है, जिन्हे कविता की बहिरंग परीक्षा करनेवाले तथा आलंकारिकगण पसंद करते है। विद्यासुदर का रचना-काल १७५७ यानी प्लासी के युद्ध के कुछ साल पहले माना गया है। यह मजे की बात है कि यद्यपि भारतचंद्र ने अंग्रेजो के आने के पहले लिखा, फिर भी उनकी भाषा करीब-करीब आधुनिक है। भारतचंद्र राय के समय मे ही बंगला भाषा का एकरूप बन चुका था, और यह कहा जा सकता है कि बाद को चल-कर मधुसूदन और बंकिम के जमाने मे यही भाषा साहित्य की भाषा बनी। भारतचंद्र की कविता देव और बिहारी के ढग की है और उनकी कविता मुख्यतः शृंगार रस की है। वह भाषा में पच्चीकारी को बहुत दूर तक ले गये है। उनकी कविता अपने जमाने मे बहुत प्रसिद्ध हुई और बाद को भी इसका बहुत प्रचलन रहा। वैष्णव तथा अन्य पौराणिक विषयो पर लिखनेवालो की कविता ऊपर से आध्यात्मिक और नैतिक थी, भले ही भीतर से वह एक हद तक ऐहिक हो, पर भारतचद्र की विद्यासुंदर आदि रचनाए संपूर्ण रूप से ऐहिक थी, और वह भी बिल्कुल शिश्नोदर-परायणता के अर्थ मे। सामंतो और राजाओं के दरबार के लिए यह उपयुक्त कविता थी।

सक्षेप मे, विद्यासुदर काव्य की कहानी इस प्रकार है। काजी या कांजीवरम् के राजा गुणसिधु के पुत्र सुदर ने यह सुना कि वर्द्धमान के राजा वीरसिंह की

कन्या विद्या वहुत सुदरी है। उसकी स्याति केवल रूप के संवध मे नही थी, वल्कि उसकी विद्या की स्याति रूप से भी अधिक थी। विद्या की तरफ से यह घोपणा हुई थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ मे परास्त करेगा, मैं उसीसे शादी करूंगी। सुदर ने अपने पिता से कुछ नही कहा और घोडे पर चढकर राजा वीरसिंह की राजधानी मे पहुच गया। सुदर ने अपने घोडे को एक वाग के पेड से वाध दिया और इधर-उधर घूमने लगा कि आगे क्या किया जाय। इतने मे राजा की मालिन हीरा फूल चुनती हुई उधर आ पहुची, और सुदर को देखकर समझ गई कि यह अवश्य कोई विशेप व्यक्ति है। सुदर तो इस तलाश मे था ही कि कोई उसे ठहरने को जगह दे। हीरा मे उसने यह वताया कि वह एक पर्यटक है और कही ठहरना चाहता है। हीरा उसे ठहराने के लिए राजी हो गई।

सुदर को यह जानकर खुशी हुई कि हीरा का काम नित्य प्रातःकाल विद्या को फूल और माला पहुचाना है। सुदर ने कहा कि जव मैं तुम्हारे यहा हू तो मुझे भी कुछ करना चाहिए, और मैं एक माला वनाता हूं, जिसे तुम जाकर राजकुमारी को दे देना। सुदर एक चतुर मालाकार था और उसने माला के रूप मे एक संस्कृत का श्लोक तैयार कर दिया। हीरा अगले दिन कुछ देर से पहुची तो राजकुमारी वहुत विगडी। हीरा ने कहा कि रात भर मैं तुम्हारे लिए एक विशेप माला वनाती रही, जिसके कारण देर हो गई। राजकुमारी ने पूछा कि वह माला कहा है। तव हीरा ने माला आगे कर दी। राजकुमारी उस माला मे गूथे हुए श्लोक को पढकर यह समझ गई कि यह माला इसके द्वारा वनाई नही हो सकती। हीरा कसमें खाती रही कि माला उसीकी वनाई हुई है, पर अंत तक वह राजकुमारी की जिरह के सामने ठहर नही सकी, और उसे असली वात वतानी पडी। तव राजकुमारी ने मालिन से कहा कि मुझे किसी तरह राजकुमार का दर्शन कराओ, पर यह काम वहुत कठिन था, क्योंकि राजा के अंतःपुर मे न तो कोई आ सकता था और न वहा से कोई जा सकता था।

आखिर यह निश्चय हुआ कि इसके लिए किसी कौशल का प्रयोग किया जाय। हीरा के कथनानुसार सुदर ने जटा और दाढी लगाकर एक साधु का रूप धारण किया और राजा वीरसिंह से जाकर वोला कि मैं विद्या से शास्त्रार्थ करना चाहता हू। राजा को यह वात माननी पडी, क्योंकि विद्या की शर्त यह थी कि कोई भी व्यक्ति आकर शास्त्रार्थ कर सकता था। साधु ने यह भी कहा

कि वह और शास्त्रार्थ करनेवालो की तरह परदे के पीछे से शास्त्रार्थ नही करेगा, बल्कि आमने-सामने बैठकर शास्त्रार्थ करना चाहेगा। विद्या बड़ी विपत्ति मे पड़ गई, क्योंकि वह प्रेमिका होने के अतिरिक्त एक विदुषी भी थी और प्रेम के लिए ही सही, शास्त्रार्थ मे हारना नही चाहती थी, लेकिन इस मामले मे हराने से भी काम नही बनता था। इसलिए वह शास्त्रार्थ की तारीख को टालती रही।

सुदर इससे निराश न हुआ और उसने काली की पूजा शुरू की। काली ने प्रसन्न होकर उसे एक सीक-सी दे दी, जिससे सुदर पत्थर भी खोद सकता था। इस सीक के सहारे सुदर ने विद्या के कमरे तक एक सुरंग बनाई और वह विद्या के सामने पहुच गया। विद्या की सखियां उसे देखकर घबडाई पर जब सुदर ने कहा कि काली की कृपा मे सीक मिली है तो उन लोगो ने इस रहस्य को छिपा रखना मजूर किया।

पर सारी आफत तो विद्या को लेकर आई। विद्या को अपने ज्ञान का घमड था, वह बोली—"मैं शादी तो उसीसे करूगी, जो मुझे शास्त्रार्थ मे पराजित करे।"

सुदर इसपर राजी हो गया और काव्य, न्याय, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ। सुदर ने प्रत्येक विषय मे अपनी प्रेमिका को हरा दिया, पर इसमे जहा शास्त्रार्थ मे उसकी जीत होती गई, वहा उसका हृदय हारता ही चला गया। अंत मे परिस्थिति यह थी कि शास्त्रार्थ मे तो सुदर विजयी था, पर विद्या की विजय उससे कही सार्थक और विस्तृत थी।

अब कोई बाधा नही रही और दोनो मे गंधर्व-विवाह हो गया। कानो-कान किसी को खबर नही हुई और सुदर उस सुरंग के जरिये से नित्य विद्या से मिलता रहा। यहांपर भारतचद्र ने प्रेम-क्रीड़ाओ का बड़ा दीर्घ वर्णन किया है, यहातक कि विद्या को गर्भ रह गया और सखिया बहुत डर गई। उन लोगो ने जाकर रानी से गर्भ रहने का हाल तो बता दिया, पर और कुछ नही बताया। रानी क्रोध मे विद्या के पास पहुची और उसने राजकुमारी को धमकाया। पर कोई नतीजा नही हुआ। तब रानी क्रोध मे राजा के पास गई और उन्हे तरह-तरह से ताव दिलाने लगी, बोली—"जिसके घर मे ऐसी बात हो सकती है, वह राजा कैसा है?"

राजा ने शहर कोतवाल को बुलाया और कहा कि यदि तुम चोर को नहीं पकड़ पाये तो तुम्हें बाल-बच्चों के साथ जीवित समाधि दी जायगी। कोतवाल ने सात दिन का समय मांगा और वह उसी समय से खोज करने लग गया। विद्या को उसके कमरे से हटा दिया गया। सिपाहियों को जल्दी ही उस सुरंग का पता लग गया, पर कोई भी सिपाही उसके अंदर दूर तक न जा सका। अंत में कालकेतु नामक एक कर्मचारी ने यह सुझाया कि हम लोग स्त्रियों के भेष में यहीं बने रहें, बहुत संभव है कि चोर खुद ही यहां आये। तदनुसार एक कर्मचारी विद्या बनकर बैठ गया और बारह अन्य कर्मचारी उसकी सखियां बनकर बैठ गये। इसके अतिरिक्त घर-घर में कर्मचारियों की स्त्रियां तथा अन्य स्त्रियां चोर की तलाश में घूमने लगीं।

विद्या को कोई मौका ही नहीं मिला कि सुंदर को खबर भेजे। सुंदर को केवल इतना पता लगा कि एक चोर की तलाश हो रही है। सुंदर अपने नित्य नियम के अनुसार संध्या के बाद विद्या के कमरे में पहुंच गया। कर्मचारियों ने कमरे में रोशनी इतनी धीमी कर दी थी कि चेहरा पहचान में न आवे। सुंदर ने विद्या के भेष में बैठे हुए कर्मचारी की ओर हाथ बढ़ाया, पर कर्मचारी ने मुंह फेर लिया और कपड़े से मुंह ढंक लिया। सुन्दर ने समझा कि देवी रूठी हुई हैं, इसलिए उसने आरजू-मिन्नत शुरू की। यहांपर काव्य में लंबा वर्णन आता है।

अंत में सुंदर पकड़ लिया गया और कर्मचारी अब हिम्मत करके सुरंग के अंदर से हीरा के घर पहुंच गये। हीरा ने बहुतेरा कहा कि उसे कुछ नहीं मालूम, पर उसे जंजीरों में बांधकर राजा के सामने हाजिर किया गया। सुंदर तो पहले ही बांधकर हाजिर किया जा चुका था। राजा ने सुंदर से बहुत पूछा कि तुम कहां के रहनेवाले हो, कौन हो, पर सुंदर ने इसी प्रकार की बातें कहीं कि मेरा नाम विद्यापति है, मेरा घर विद्यानगर है, इत्यादि-इत्यादि। सुंदर ने स्वरचित पचास श्लोक भी सुनाये, जो 'चोर पचाशत' के नाम से बंगला काव्य के ही अन्तर्गत हैं। इन श्लोकों के दो-दो अर्थ हैं। एक अर्थ में तो वे काली के स्तोत्र के रूप में हैं।

राजा सुंदर की विद्वत्ता से प्रभावित हुए, पर कुल-शील का पता न होने के कारण उन्होंने कहा—इसे मेरे सामने से वधस्थान में ले जाओ।

जव सुदर वधस्थान मे ले जाया जाने लगा तो नागरिको की ओर से लोग यही कहने लगे कि सुंदर विद्या का उपयुक्त पति है। सुदर ने जव देखा कि अंत निकट है तो उसने काली की सहायता मागी। काली ने भूतो और पिशाचो की एक सेना भेजी, जिसने राजा की सेना को हरा दिया।

दरवार में एक शुक पक्षी था, उसने राजा को वतलाया कि सुदर असल में कौन है। राजा यह सुनकर वधस्थान की ओर दौड़े और उन्होने जाकर सुंदर को गले मे लगा लिया। विवाह तो पहले ही हो चुका था, अव सार्वजनिक उत्सव हुआ। हीरा की जजीरे खोल दी गई और उसे पुरस्कृत किया गया।

यही विद्यासागर की कहानी है। कहना न होगा कि इसमे कवि को अपने जौहर दिखाने का वहुत मौका था। इस सवध मे यह भी वता दिया जाय कि भारतचंद्र इस विषय पर लिखनेवाले पहले कवि नही थे। और भी वहुत-से कवि इस विषय पर लिख चुके थे। ऐसा मालूम होता है कि वर्द्धमान के राजा के साथ यह कहानी पहले जुडी हुई नही थी। यहां उन सारे लेखको के वर्णन की आवश्यकता नही, जिन्होने इस विषय पर लिखा। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि भारतचंद ने इस विपय को लेकर सवसे अच्छी रचना प्रस्तुत की। पहले ही हम वता चुके कि उनकी भापा और शैली एक हद तक आधुनिक कही जा सकती है। उनके वर्णन वहुत चुभनेवाले और भाषा वड़ी सरस है।

भारतचद्र से कुछ पहले **रामप्रसाद** नामक एक कवि हो गये, जो काली-सम्वन्धी कविताएं लिखने में वहुत प्रसिद्ध हो गये। यद्यपि इनकी कविताएं भक्ति-सम्वंधी हैं, तथापि उनमे ऐसी-ऐसी उपमाए आदि आती है, जिन्हे गाव की जनता वहुत आसानी से समझ लेती है। यही शायद रामप्रसाद की ख्याति और जन-प्रियता का कारण है।

जैसे राजा कृष्णचद्र ने अपने दरवार मे कवियो को आश्रय दिया, उसी तरह से उनके सम-सामयिक विक्रमपुर के राजा राजवल्लभ साहित्य-रसिक थे। कृष्णचंद्र और राजा राजवल्लभ मे होड-सी चलती थी कि कौन किससे आगे निकल जाय। राजा कृष्णचंद्र ने शिवनिवास नाम से एक नगर स्थापित किया, तो राजवल्लभ ने राजनगर नाम से उससे वढकर नगर स्थापित किया। राजवल्लभ ने कई इमारतें भी वनवाई। उन्होने साहित्य-रसिको को अपने यहा स्थान भी दिया, पर भारतचद्र की तरह कवि मिलना मुश्किल था, फिर भी **जयनारायण**

और अन्नदामयी की तरह कवि और कवयित्री को प्रोत्साहित करने का श्रेय राजवल्लभ को प्राप्त हुआ। जयनारायण अच्छे कवि थे, पर उनकी कविताओ मे वह वात नहीं है, जो भारतचंद्र की कविताओ मे है। अन्नदामयी नामक कवयित्री भी जयनारायण की भानजी थी। कहा जाता है कि हरिलीला नामक पुस्तक जयनारायण और अन्नदामयी की संयुक्त रचना है। अन्नदामयी विदुपी थी और संस्कृत मे उनका ज्ञान इतना अधिक था कि एक वार जर्व राजा राज-वल्लभ के दरवार मे अग्निष्टोम यज्ञ के सम्वन्व मे किसी वहुत ही जटिल नुक्ते पर वातचीत हो रही थी तो अन्नदामयी ने वैदिक साहित्य से उद्धरण देकर सारे मामले को सुलझा दिया। अन्नदामयी की रचनाओ से भी ज्ञात होता है कि वह सस्कृत की विदुपी थी। एक कविता देखिये—

कतो चारु वक्त्रा, सुवेपा सुकेशा
सुनासा, सुहासा, सुवासा, सुभाषा :
कतो क्षीणमध्या, सुभंगा सुयोग्या,
रतिज्ञा, वशिज्ञा, मनोज्ञा, मदज्ञा
कोनो कामिनी कुंडले गंडघृष्टा,
प्रहृष्टा, सचेष्टा, केह ओष्ठ दष्टा इत्यादि।

कहना न होगा इसमे 'कतो' और 'कोनो' के अतिरिक्त वाकी सभी सस्कृत है। यह एक विवाह-मण्डप का वर्णन है, जहा तरह-तरह की स्त्रिया मौजूद है। उस युग के लोगो ने इस कविता मे रस लिया, इसके प्रमाण मौजूद है।

भारतचंद्र को जो अभूतपूर्व सफलता मिली, इसके कारण वहुत-से उदीय-मान कवि उस ओर झुके और शृगार रस के काव्यों की वाढ-सी आ गई। इनमे से अधिकतर पुस्तके अव लुप्त हैं, कुछ तो इस कारण लुप्त है कि अश्लीलता के कारण उन्हे जव्त कर लिया गया। उन्नीसवी शताव्दी के प्रारम्भ मे चंद्र-कात, कामिनीकुमार और नयनतारा के उपाख्यानो का वहुत अधिक प्रचार था, इसमे सन्देह नही। श्री दिनेश सेन ने लिखा है कि इन काव्यों के रचयिता भारत-चन्द्र, जयनारायण तथा अन्नदामयी की तरह विद्वान नही थे, पर वे शृगार-रसात्मक रचना को और एक कदम आगे ले गये। यह भी वता दिया जाय कि इन काव्योंके नायक किस प्रकार के होते थे। उल्लिखित श्री दिनेश सेन के अनुसार लार्ड वायरन-कल्पित डान जुआन पात्र को किसी मुस्लिम नवाव के हरम मे कुदा

दिया जाय तो उससे जो कहानी बनती है, वही कहानी इन लोगों की उपजीव्य थी।

चन्द्रकात सचमुच ऐसा ही पात्र था। उसने एक राजा के अन्त.पुर में जो-जो कारनामे किये हैं, वे इसी प्रकार के है। यद्यपि इस प्रकार की रचना से जहां एक तरफ उस समय के पढ़े-लिखे वर्ग की रुचि का परिचय प्राप्त होता है, वहीपर हमें यह भी मानना पडेगा कि इन पुस्तको के प्रचार ने वगला साहित्य को और एक कदम आगे वढाया और वंगला के गले में एक तरफ संस्कृत और दूसरी तरफ फारसी का जो फदा था, वह वहुत-कुछ ढीला हुआ। इन कवियो का उद्देश्य अपने पाठको का मनोरंजन था। इस कारण वे अधिक-से-अधिक जनता मे पहुचना चाहते थे। वे केवल संस्कृत तथा फारसी मे रस लेने-वाले लोगो के लिए लिखना नही चाहते थे। वे वंगला जाननेवालो के ही लिए लिख रहे थे। इस प्रकार उनकी रचना में वड़े-वडे संस्कृत शव्द और वाक्य नही मिलते। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यद्यपि इन लोगो का साहित्य अंतर्गत वस्तु की दृष्टि से जनता का विरोधी पडता था, फिर भी उनका उद्देश्य विस्तृततर जनता मे पहुचना था, इस कारण उन्होने ऐसी भाषा ग्रहण की, जो जनता की समझ मे अच्छी तरह आ सकती थी।

इस युग मे और जितने कवि हुए, उनका झुकाव भी अलंकार-वहुलता तथा शृगार रस की ओर था। गिरिधर नामक एक कवि ने इसी युग में 'गीत गोविंद' का वगला अनुवाद किया। यो तो इसके पहले ही 'गीत गोविंद' का पयार छंद में अनुवाद हो चुका था, पर गिरिधर ने जहांतक हो सका 'गीत गोविंद' के मौलिक नृत्यशील छंदों मे अनुवाद किया। यही नहीं, उन्होंने मूल संस्कृत शव्दो को भी कायम रक्खा।

> यमुना तीरे मंद वहे मारुत, तहाते वोसिया युवराज,
> करे अभिसार, करि रति रस, मदन मनोहर वेशे।
> गगने विलंवन ना कर नितम्विनी, चल-चल प्राणनाथ पासे
> तुआ निज नाम श्याम करि सकेत, वजाय मुरली मृदु भाषे।
> तुआ तनु परशि धूलि रेणु उड़त, ताहे पुनः पुनः प्रशंसे।
>
> —इत्यादि

ऊपर जिन कवियो और काव्यों का उल्लेख किया गया है, वे कवि दरवारी

या कम-से-कम शहरी थे, पर देहातो के भी अपने-अपने कवि थे, जो अपने यहां की जनता को काव्य रस पिलाया करते थे। ये कवि अपने श्रोताओं को आनद देने मे ही अपनी पूरी सार्थकता मानते थे। वे इस बात की परवा नही करते थे कि उनको ख्याति प्राप्त होगी या नही। अक्सर तो कवियो के नाम भी श्रोताओ तक नहीं पहुचते थे।

इन कवियो मे एक तरह के कवि होते थे, जो कविवालों के रूप मे संगठित थे। कविवालों की कविताओ मे कृष्ण के गुण गाये गये है। कविवालों के दल मे स्त्रिया तथा पुरुष दोनो होते थे। वे खड़े हो करके गाया करते थे, इसलिए इनको दांडा कवि या खडे कवि भी कहते थे। राधाकृष्ण के अतिरिक्त शिव और पार्वती पर भी कविवाले रचनाएं तैयार करते थे। ऐसा मालूम होता है कि बहुत दिनो तक कविवालों के दल बंगाल के देहातो का दौरा करते रहे।

बाद को चलकर कविवालों मे नये उपादान की सृष्टि हुई, जिससे वे और भी जनप्रिय हो गये। ऐसा मालूम होता है कि किसी स्थान पर कविवालो की एक टोली के साथ दूसरी टोली की मुठभेड़ हो गई। यह मुठभेड़ हाथापाई के रूप मे नही, बल्कि कविता की लडाई के रूप मे हुई। इससे लोगों को बडा रस आया और तब से कविवालो का कवितामय दंगल जनता के मनोरंजन का एक बहुत बड़ा साधन हो गया।

कविवालों में कई आशु कवि होते थे, और खड़े-खडे जिस विषय पर जरूरत होती, उसपर कविता बना डालते थे। पचास साल पहले तक बंगाल के देहातो और कस्बो मे कविवालो का जोर था और छोटे-बडे सब उनका तमाशा देखने जाते थे। साहित्य इनसे कहातक आगे बढा, इसमे सदेह है, पर साहित्य के वाहन भाषा के लिए कविवालो के भ्रमणो के द्वारा सारे बंगाल में एक तरह की भाषा का प्रचलन होने मे सहायता मिली।

सोलहवी सदी में एक कविवाले का पता मिलता है, जो जाति से मोची थे। उनका नाम रघु था। ऐसा मालूम होता है कि पहले केवल कथित छोटी जातिवाले ही इसमे दिलचस्पी लेते थे, पर बाद को इनके द्वारा किये गए कार्यो को इतनी सफलता मिली कि बडी जातिवाले इसकी ओर आकृष्ट हुए। ये कविवाले देहात के ही लोग थे, अतएव उनकी रचनाओ मे देहात की आत्मा सामने आ जाती है। देहात की छोटी-छोटी बातें इनकी रचनाओ में प्रतिफलित और प्रति-

विम्वित दिखाई देती है। राम वसु कविवाले की एक रचना मे स्त्री अपनी सखी से पति के प्रवास जाने का वर्णन करती है—"मन की वेदना मन मे ही रह गई। जव वह प्रवास मे जा रहे थे तो मैं वहुत-सी वाते कहना चाहती थी, पर शरम के कारण मर्म की वात कह न सकी। यदि मैं नारी होकर उनकी खुशामद करती तो सव लोग कहते कि यह निर्लज्ज है। विधाता को धिक्कार है कि उसने मुझे नारी का जन्म दिया। एक तो मेरा यौवनकाल है, उसपर वह वसन्त मे गये।'...इत्यादि

इसमे कोई विचित्रता नही है, पर असली वात है भाषा की, जो विल्कुल आधुनिक है। सोलहवी सदी के मध्य के रासु नरसिंह की रचना मे भी इसी प्रकार जो भाषा व्यवहृत हुई है, वह आधुनिक वंगला के यथेष्ट निकट है। उनकी एक कविता का अश यो है—

सखि ए सकल प्रेम प्रेमनाथ,
इहा ते मजिये नाहि सुखेर उदय

और लीजिये—

कह सखि किछु प्रेमेर इ कथा, घुचाव आमार मनेर व्यथा,
करिले श्रवण, हय दिव्य ज्ञान, हेन प्रेम धन उपजे कोथा।

श्री दिनेश सेन ने कुछ प्रसिद्ध कविवालों के नाम गिनाये है। रघु के नाम का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। वह जाति से मोची थे और कलकत्ता के उसपार सलकिया के रहनेवाले थे। रासुनरसिंह, गोजला गुई, लालु नंदलाल उनके समसामयिक थे। इसके वाद हरू ठाकुर या हरेकृष्ण दीर्घांगी का नाम उल्लेखनीय है। उनका जन्म कलकत्ता के शिमला नामक स्थान मे १७३८ मे हुआ था। उन्होने भी प्रेम के सवध मे गीत गाये, पर कई वार वह प्रेम को ऐहिक जगत से परे ले जाने की चेष्टा भी करते रहे। यद्यपि हरू ठाकुर एक प्रसिद्ध कविवाले हो गये, फिर भी वह पेशेवर कविवाले नही थे। कहा जाता है कि एक वार राजा नवकृष्ण ने खुश होकर उनको एक शाल भेट कर दिया। इसपर उन्होने फौरन यह शाल अपने साथ के एक कथित नीच जातिवाले ढोलकची को दे दिया। १८१३ मे हरू ठाकुर की मृत्यु हुई।

राम वसु के नाम का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वह विरह-वर्णन मे दक्ष माने जाते थे। नित्यानंद वैरागी भी एक सफल कविवाले थे।

उनका जन्म १७२१ मे हुआ, वह १८११ मे परलोक सिधार गये। उनके वाद भी कई प्रसिद्ध कविवाले हो गये, पर उनके नामो को गिनाने से कोई लाभ नही।

कविवालों मे ऐंटनी नाम से एक पुर्तगाली वहुत प्रसिद्ध हो गये। पुर्तगाली होने पर भी वह तथा उनके भाई केली वगाल मे ही वस गये थे। उन लोगो ने व्यापार से वहुत धन कमाया था। ऐंटनी चदननगर की एक विधवा ब्राह्मणी के प्रेम मे पड गये और वे दोनो एक साथ रहने लगे। यद्यपि इन दोनो का विवाह नही हुआ, फिर भी वे पति-पत्नी के रूप मे सम्मानजनक जीवन व्यतीत करते थे। ऐंटनी ने ब्राह्मणी के धार्मिक जीवन मे कोई वाधा नही डाली और ब्राह्मणी हिंदू आचार से ही रहती रही। ऐंटनी के घर मे सारे हिंदू त्योहार मनाये जाते थे, यहातक कि ब्राह्मणी के अनुरोध पर ऐंटनी ने वऊ वाजार मे एक काली मदिर का निर्माण किया। यह काली फिरगी काली कहलाती है।

ऐंटनी को वंगला भाषा का वहुत अच्छा ज्ञान हो गया था। उनके घर मे हिंदू त्योहारा के अवसर पर कविवालों की लडाई हुआ करती थी। ऐंटनी इन लडाइयो मे इतना रस लेते थे कि उन्होने स्वयं कविवालो का एक दल वना लिया और एक आशु कवि गोरक्षनाथ को अपने दल मे नौकर रख लिया। थोडे दिन मे ऐंटनी ने यह देखा कि वह स्वय गोरक्षनाथ से अच्छी कविता कह लेते है इसलिए उन्होने गोरक्षनाथ को अवकाश दे दिया, और वह स्वय कविवाले वनकर रंगमंच पर उतरे। ऐसे अवसरो पर वह फिरगियो के कपडे छोडकर उस जमाने के वंगाली लिवास धोती-चादर मे हो जाते थे। ऐंटनी इतने जनप्रिय हुए कि उनके सामने दूसरे कविवाले ठहर नही पाये। ईसाई वने रहने पर भी ऐंटनी कविवालो के ढंग पर काली की स्तुति से मगलाचरण करते थे।

भजन साधन जानि ने मां, निजे तो फिरंगी,
यदि दया करे कृपा कर हे शिवे मातंगी।

—'मैं भजन पूजन-नही जानता, मैं फिरगी हू, फिर भी हे शिवे मातगी, मुझ-पर दया करो।'

कविवालो की लडाई मे भद्दी भाषा का व्यवहार निषिद्ध नही था, व्यक्तिगत मामले भी उठाये जा सकते थे। एक वार दूसरे कविवाले ठाकुरसिंह ने ऐंटनी को इस प्रकार सम्वोधित किया—'सुनो-सुनो जी ऐंटनी, मै तुमसे एक बात जानना चाहता हूं, तुम्हारे वदन पर यह धोती-चादर क्यो है, कुर्ता कहा गया ?'

सुनो हे ऐंटनी, ग्रामेय एकटि कथा जानते चाई,
एसे ए देशे वेशे, तोमार गाये कैनी कुर्ति नाई।

इसके उत्तर में ऐंटनी ने सीधे गाली देते हुए कहा—

ए इ बांगलाय वंगालीर वेशे ग्रानंदे ग्राछि,
हये ठाकरेसिएर वापेर जामाइ कुर्ती टोपी छेड़ेछि।

—'वंगाल मे मैं वगाली कपड़ो में ग्रानद से हू, ठाकुरसिह के वाप का दामाद वनकर मैंने कुर्ता-टोपी छोड़ दी।'

दूसरे शब्दो में ऐटनी ने ग्रपनेको पूछनेवाले का वहनोई वतलाया। इस पर जो मनोरंजन हुग्रा होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है। हो सकता है कि इस प्रकार कविवाले जो कुछ देते थे, उसे साहित्य या कला की श्रेणी मे मुश्किल से रखा जा सकता है, पर जव साहित्य ग्रौर कला ग्रपना काम नही कर रहे थे, तो ये कविवाले देहातो मे कम-से-कम एक प्रकार के सामूहिक जीवन को कायम रख रहे थे। इस संवध मे ग्रौर एक वात ध्यान योग्य है कि सामंतो ग्रौर छोटे राजाग्रो के दरवार मे उन दिनो जिस प्रकार शृंगार रसात्मक ग्रश्लील कविताग्रो का वोलवाला हो रहा था, उनके मुकावले मे क्या कविवालों की कविताएं वहुत निकृष्ट थी? हम यहांपर निकृष्ट शब्द को कला या साहित्य की दृष्टि से प्रयोग नही कर रहे हैं, यहा तो नैतिक सतह पर वात कही जा रही है। इसमें संदेह नही कि सामन्तो ग्रौर राजाग्रो के दरवारो मे जो कविताएं पढी जाती थीं, उनमे कला की दृष्टि से उत्कृष्टता पाई जाती थी, पर एक तो वे ग्रधिकांशतः चर्वित चर्वण होती थी ग्रौर दूसरे जवकि वे ऐसी नही होती थी, उनमे कोई उदात्त उद्देश्य नही होता था।

हम ग्रागे कविवालो की रचनाग्रो के कुछ ग्रौर नमूने देंगे, जिससे कि यह ज्ञात हो जाय कि कविवाले उच्चतर सतह पर भी जाते थे। पहले एक कविता की दो पंक्तिया उद्धृत की गई है, उसीकी पूरी कविता लीजिये—

सखि ए सकल प्रेम प्रेम नाय
इहा ते मजिये नाहि सुखेर उदय
सुहृदभंजन, लोकरंजन, कलंकभाजन होते हय,
ऐमन पिरिति कोरि, जाते तोर, हृदि के ऐहि के ग्रार पारत्रिके।
श्रीनंदनंदन दुःखभंजन, सदा राखि मन तार पाय

अमिय त्यजे गरल भजे उपजे कि सुख,
कलंक घोषण, जगते मरण हते अधिक

—'सखी, इस प्रकार का प्रेम नही कहलाता। इसमे फंसकर सुख नही मिलता। दोस्ती टूट जाती है, लोग बुरा-भला कहते है, कलंक लगता है। ऐसा प्रेम क्यो न किया जाय, जिसमे इस लोक और परलोक दोनो मे मजे हो। श्रीनंदनंदन दु:खभजन हैं, हमेशा उनके चरणों मे चित्त रखे। अमृत छोड़कर हलाहल को अपनाने से भला क्या सुख मिलेगा? और कलंक का लगना तो मरने से भी बढ़कर है।'

क्या यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की कविता किसी प्रकार से अन्य कवियो की आध्यात्मिक कविता से निकृष्ट है? इश्कमिजाजी और इश्कहकीकी का कैसा सुदर वर्णन है। केवल कविवालों की रचना है, इसलिए इसे निकृष्ट तो नही कहा जा सकता, बल्कि इसकी उत्कृष्टता इस बात मे है कि यह जनता की समझ मे अधिक शीघ्र आयेगी। हम यहापर उन झगडो मे नही पडते कि कथित इश्कहकीकी उसी प्रकार से जनता के लिए अफीम है, जिस प्रकार से अश्लीलता या इतरता है। हम तो यहापर कविवालो की कविता की तुलना उन कवियों की कविता से कर रहे है, जो भद्र समझे जाते है।

गतानुगतिक ढंग से ये कविवाले प्रकृति-वर्णन मे भी भद्र कवियो से पीछे नही थे। एक उदाहरण लीजिये—

सुघोर धारे वहिछे एई घोरतरा रजनी,
ए समये प्राण सखी रे, कोथाय गुण मणि, घन गरजे घन सुनि,
ए मयूर मयूरी हरषित, हेरि चातक चातकिनी।
ए कदम्ब केतकी चम्पक जाति सेउति शेफालिके,
प्राणे ते प्राणे ते मोह जन्माय प्राणनाथे गृहे ना देखे
विद्युत खद्योत दिवा ज्योतिमय प्रकाशे विन मणि
प्रिये मुखे मुख दिये सारि शुक थाके दिवस रजनी।

—'यह घोर रजनी मानो एक नदी है और वह मन्द धार से वहती है। इस समय हे प्राणसखी, प्रीतम प्यारे कहां है? बार-बार बादल गरज रहे है। मोर और मोरनी हर्षित है। मैं चातक चातकी, कदम्ब केतकी तथा तरह-तरह के फूलो को देखती हूं। सुगन्ध से मन मोहान्ध हो जाता है, क्योकि साजन घर पर

नही हैं। बीच-बीच मे बिजली कौंधती है और जुगनू चमकते हैं, ऐसा मालूम होता है, जैसे दिन हो गया हो, तोता और मैना दिन-रात अपनी साथिन की चोच से चोंच सटाये हुए पडे रहते है।'

यह कहा जा सकता है कि ऐसी कविताओ मे कोई खास रस नही है और बहुत घिसी-पिटी हैं, पर यह बात तो उस युग की सारी भारतीय कविता के सम्बन्ध मे कही जा सकती हैं। यदि प्रकृति-वर्णन है तो वही चातक और चकोर, कुमुद और कमल, कदम्ब और केतकी, यदि भक्ति-रस है, तो वही गज-ग्राह, अजामिल और गणिका, सुदामा के तंदुल और शबरी के बेर, यही सर्वत्र मिलेगा। यदि बेचारे कविवालों ने अपने भद्र बडभैयो का अनुकरण किया तो इसके लिए उनको बुरा-भला कहना उचित नही होगा।

रहा यह कि कविवालों को जनता को खुश करने के लिए कभी-कभी उल्टी छलागें आदि मारनी पड़ती थी, यह कोई आश्चर्य की बात नही है। दरबारी कवि भी तो अपने प्रभुओ की काम-प्रवृत्ति को उत्तेजित करने के लिए कभी खुल्लमखुल्ला और कभी राधा-कृष्ण की आड लेकर शृंगार रस को चरम सीमा तक पहुचाते थे।

रामप्रसाद सेन का नाम पहले आ चुका है। श्यामाविषयक पद कहने में उनसे बढ़कर कोई नही हुआ। उनका जन्म १७१८ में हुआ था। पहले-पहल वह भी दरबारी कवियो के ढंग पर चले। उन्होने भी विद्यासुन्दर पर लिखा, पर इसके तुरन्त बाद भारतचंद्र इस क्षेत्र मे आ गये और उनकी रचना के सामने रामप्रसाद सेन का विद्यासुन्दर फीका पड गया। इसके बाद ही रामप्रसाद अपने गांव मे लौट गये और वहा आध्यात्मिक जीवन बिताने लगे। वे जिस स्थान पर बैठकर योगाभ्यास करते थे, वह अब भी सुरक्षित है।

उनके पिता का नाम रामराय सेन था। कहते है, रिश्तेदारो की बेईमानी के कारण उनका बचपन बहुत गरीबी मे बीता था। जिस समय वह किशोर थे, उस समय उन्हे एक जमीदार के यहां बही लिखने के काम के लिए भेजा गया। अभी वह उम्मीदवार ही थे कि एक दिन देखा गया कि एक बही में गीत-ही-गीत लिखे हुए हैं। जब जमीदार को इस बात का पता लगा और उन्हे यह मालूम हुआ कि ये गीत रामप्रसाद के लिखे हुए हैं, तब उन्होंने रामप्रसाद के लिए तीस रुपये मासिक की वृत्ति बांध दी। रामप्रसाद को राजा

कृष्णचंद्र से भी बाद को चलकर एक वृत्ति मिली। इसके अतिरिक्त १०० बीघे जमीन माफी भी मिली।

रामप्रसाद सेन ने काली पर जो भजन लिखे, वे बहुत ही जनप्रिय हुए, और उनपर भाष्य किये गए। उनके भजनों को वही मर्यादा प्राप्त हुई, जो शास्त्रों को प्राप्त है। उनके भजनों में कहीं-कहीं बड़ी उदात्त भावनाएं हैं—

वारे-वारे जतो दुःख दियो छो, दिते छो तारा,
से केवल दया तव जेनेछि मां दुःख हारा।

—हे तारा, तुमने बार-बार मुझे जो दुःख दिया है और दे रही हो, वह तुम्हारी ही कृपा है।'

एक और भजन लीजिये, जिसमें वह काली-पूजा की आडम्बरयुक्त पद्धति की निन्दा करते हैं। उसमें वह कहते हैं—'मन, तू इतनी चिन्ता में क्यों पड़ा है? बस एक बार काली कहकर ध्यान में बैठ जा।'

जांक जमके करले पूजा, अहंकार हय मने,
तुइ लुकिये तारे करबि पूजा, जानबे नारे जगत जने।
धातु पाषाण माटिर मूर्ति काज कि रे तोर से गठने,
तुमि मनमय प्रतिमा गड़ि बसाओ हृदि पद्मासने।

—'आडम्बर में पूजा करने पर मन में अहंकार पैदा होता है। धातु, पत्थर, मिट्टी की मूरत से तुझे क्या काम? तू छिपकर पूजा कर कि किसीको कानों-कान खबर न हो और मनोमय प्रतिमा बनाकर हृदय के पद्मासन में स्थापित कर। तुझे अरवा, चावल और केला आदि के भोग लगाने की क्या जरूरत, तू भक्ति-रस से सिक्त कर उन्हें तृप्त कर। चारों तरफ बत्तियों, झाड़ों की क्या जरूरत है, तू अपने मन की मणि जला और उसे दिन-रात जलने दे।'

वे अन्य कविताओं में भी आडम्बर से पूजा करने, तीर्थ-यात्रा, मन्दिर में दर्शनार्थ गमन आदि को अनावश्यक बतलाते हैं। इस प्रकार यह समझना कठिन नहीं है कि वह जनप्रिय क्यों हुए। पूजा में आडम्बर और प्रदर्शन की अधिकता हो जाने के कारण वह धनियों का क्षेत्र बनकर रह गई थी। रामप्रसाद सेन ने पूजा को इन बातों से उबारकर उसे साधारण जनता की चीज बना दिया। यही नहीं, उनके गीतों का यह प्रभाव हुआ कि निर्धन भक्त धनी आडम्बरकारी से श्रेष्ठ हो गया। धर्म की अन्तर्गत वस्तु तो वही रही, पर उसके ऊपरी रूप

मे फर्क आ गया। रामप्रसाद सेन बंगाल के घर-घर में छा गये।

उनकी कविताओ के भाव बहुत ही सरल है। एक बच्चा भी उन्हें समझ सकता है। यूरोपियन महिला भगिनी निवेदिता ने रामप्रसाद की कृतियों के सम्बन्ध मे ठीक ही कहा है कि उनकी रचनाओ मे बालक की भावुकताएं व्यक्त होती हैं। वह कहती है—'शायद सारे साहित्य मे वही एक महान् कवि है, जिनकी प्रतिभा एक बालक की भावुकताओ को मूर्त करने मे लग जाती है। हमारी अपनी यानी अंग्रेजी कविता मे विलियम ब्लेक शायद उनके निकट आते हैं, पर ब्लेक किसी भी तरह रामप्रसाद से श्रेष्ठ नही है। कवि रावर्ट बर्न ऊंच-नीच-भाव के प्रति सम्पूर्ण रूप से उदासीन है, और कवि ह्विटमैन साधारण चीजों को गौरवान्वित करके पेश करने के लिए प्रसिद्ध हैं, इस नाते ये दोनो कवि रामप्रसाद सेन से मिलते-जुलते है। पर रामप्रसाद शिशुता के जिस श्वेत उत्ताप तक पहुंचे, उसको देखते हुए वह अद्वितीय है। उम्र के कारण उनकी कविता मे कोई फर्क नही आता। उम्र से केवल आत्मविश्वास और संतुलन आता है। एक बच्चे की तरह वह कभी तो गभीर है और कभी प्रफुल्ल है, कभी झगडे पर उतारू हैं तो कभी निराश है। पर जहा बच्चे मे ये सारी बातें कोई विशेष उद्देश्य नही रखती, वहा रामप्रसाद मे उद्देश्य की गम्भीर निविडता है। जो वाक्य उन्होने कहा, उसमे उन्होने जगन्माता के गौरव का गान किया।'

शिशु-भाव की एक कविता लीजिये—

अब मैं मां-मां करके और नहीं पुकारूंगा,
मां, तुमने न मालूम मुझे कितनी यातनाएं दी हैं और दे रही हो।
मैं गृहवासी था, तुमने मुझे संन्यासी बनाकर दम लिया,
हे खुले बालवाली, और तू क्या कर सकती है।
यही न होगा कि दर-दर भीख मांगूंगा,
मां मर जाने पर क्या कोई लड़का नहीं जीता!
रामप्रसाद तो अपनी मां का ही बेटा था,
पर तू तो मां होकर मेरी शत्रु बन गई।
मां के रहते हुए लड़के को यह दुःख मिले?
तो फिर मां के रहने से क्या फायदा?

एक कविता मे वह कहते है—

हे माता, तू मुझे किस अपराध मे
मुझे इस लंबी मियाद के लिए संसार रूपी कारागार में
रखती है?
सवेरे ही उठकर मेरा खटना शुरू हो जाता है,
मैं सारी दुनिया घूम डालता हूं··· इत्यादि

रामप्रसाद सेन की मृत्यु १७७५ मे हुई।

रामप्रसाद सेन के कई अनुकरणकारी हुए, जिनमे श्री दिनेश सेन ने इन लोगों का उल्लेख किया है—(१) नाटोर के महाराजा रामकृष्ण, ये एक बडे भक्त राजा माने गए है। इन्होने काली भक्तिमूलक पद कहे। (२) कमलाकांत भट्टाचार्य। वह वर्द्धमान के महाराजा तेजश्चंद्र के गुरु थे। वह कालना के अविका-नगर के अधिवासी थे, पर १८०० ई० मे वर्द्धमान के कोटलहाटा मे आ गये। उन्होंने भी भक्तिरस-मूलक भजन लिखे। (३) दीवान रघुनाथराय। (४) दीवान रामदुलाल नंदी।

कविवालो की तरह यात्रावाले यानी यात्रा के रचयिता भी बंगला साहित्य को समृद्ध कर गये है। जहा कविवाले केवल कविता कहते थे, वहा यात्रावाले जो कुछ कहते थे, उसका अभिनय भी करके दिखलाते थे। यात्रा मे किसी प्रकार के पर्दे नही होते थे। अभिनय के पहले खोल और करताल बजाकर लोगो को एकत्र किया जाता था, फिर अभिनय शुरू होता था। लड़के साड़ी पहनकर स्त्रियो का पार्ट अदा करते थे। श्री दिनेश सेन ने अपनी पुस्तक मे बराबर यात्रा की बुराई की है और उसे एक हास्यास्पद रूप मे पेश करने की चेष्टा की है। यह उनकी नासमझी ही सूचित करती है। यात्रा एक तरह से खुली हवा के रंगमच थे और उनसे लाखों लोगो का मनोरंजन होता था। मध्ययुगीन बंगाल के सास्कृतिक जीवन मे वह एक बडी खाई की पूर्ति करती थी। यात्रा-वालो के जरिये से गाववालो मे सर्व-सामान्य संस्कृति और भाषा फैलती थी। यात्रावाले पौराणिक कहानियो के अतिरिक्त विद्यासुदर की कहानी भी प्रदर्शित करते थे। दुःख है कि यात्रावालो का कोई इतिहास नही प्राप्त होता, पर ऐसा कहा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु के युग में यात्रा हुआ करती थी।

गत दो-ढाईसौ वर्षो में कई अच्छे यात्रावाले हो गये हैं, जिनमे परमानंद

अधिकारी वीरभूमि मे ढाईसौ वर्ष पहले मौजूद थे। यात्रावालो को अक्सर पुरस्कार मे वहुत अधिक धन भी मिलता था। नदिया के भाजनघाटा के कृष्ण-कमल (जन्म १८१०) एक वहुत प्रसिद्ध यात्रावाले हो गये है। उन्होने 'स्वप्न विलास' नाम से एक पुस्तक भी लिखी, जिसकी वीस हजार प्रतिया वहुत जल्दी विक गईं। वह वहुत अच्छे गानेवाले भी थे। उनकी मृत्यु १८८८ में हुई।

: ५ :

प्राक-ब्रिटिश युग के मुख्य बंगला कवि

अव हम अपेक्षाकृत आधुनिक युग मे पदार्पण करते है। अभी तक अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव वगला पर नही पडा था। इस युग में जो कवि हुए, उनमे दाशरथी राय, रामनिधि गुप्त और ईश्वरचन्द्र गुप्त थे।

दाशरथी राय का जन्म १८०४ के वर्द्धमान के एक गाव मे हुआ। उनके घर की हालत इतनी खराव थी कि वह अपने मामा के साथ रहते थे। वही वह तीन रुपये महीने की तनख्वाह पर एक नील वागान मे नौकर हो गये। यह काम करते समय अकावाई या अक्षयापातिनी नाम की एक स्त्री के प्रेम मे वह फस गये। कहते हैं, यह स्त्री एक कुख्यात स्त्री थी। पर वह स्त्री उच्चाकांक्षा रखनेवाली थी, उसने कविवालो का एक दल संगठित किया, और अव दाशरथी राय पर यह भार पड़ा कि वह इन कविवालो के लिए कविता की रचना करे। इस रूप मे वह काफी चमके और उनकी सुप्त कवि-प्रतिभा जाग उठी। दूसरे कविवालो को जव भी मौका लगना था, वह उनकी वुराई करते थे और चूकि कविवालो मे मुह पर वुराई करने की प्रथा थी, इसलिए कई वार उनकी भरी सभा मे हँसी उड़ाई गई। उनके रिश्तेदार भी उनके पीछे पड़े और अत मे उन्हे कविवालों का साथ छोडना पडा।

दाशरथी राय ने एक नये ढग का काव्य निकाला, जिसका नाम पाचाली पड़ा। उनकी कविता वहुत अधिक जनप्रिय हुई। अधिकतर वह राधाकृष्ण के ही विषय को लेकर चले, पर वाद मे उन्होंने विधवा-विवाह आदि विषय भी लिये। कविवालो के साथ रहने का यह असर हो गया था कि वह जनता की रुचि को अच्छी तरह

समझते थे, इसके अतिरिक्त वह आवृत्ति की कला मे भी पटु थे। कहां तो नील बागान मे तीन रुपये मासिक पर नौकर थे, पर अब वह अपनी पाचाली सुनाने के लिए एक रात मे तीन रुपये लेने लगे। बढते-बढते उनका पारिश्रमिक प्रतिदिन १५०) रु० हो गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि वे १८५७ मे एक धनी व्यक्ति के रूप में मरे।

उनकी कविता मे अनुप्रास, यमक आदि अलंकारो की भरमार होती थी। बात से बात बनाना और बात मे बात निकालना, यह उनकी विशेषता थी। जनता उनकी कविता बहुत पसंद करती थी। कई बार तो वह मौके पर परिस्थिति को देखकर कविता बनाकर सुना देते थे। एक नमूना लीजिये—

पंडित का भूषण धर्म और ज्ञान, मेघ का भूषण बिजली,
सती का भूषण पति, रत्न का भूषण ज्योति।
मिट्टी का भूषण अनाज, योगी का भूषण भस्म,
वृक्ष का भूषण फल, नदी का भूषण जल।
जल का भूषण कमल, कमल का भूषण मधुकर,
मधुकर का भूषण गुंजन, दोनों परस्पर प्रेमबद्ध।
शरीर का भूषण चक्षु, जिससे जगत देखा जाता है,
दाता का भूषण दान, और साथ ही मिष्टभाषण।

ऊपर जो अनुवाद पेश किया गया, उसमें मूल का सौन्दर्य नही आ सका, क्योंकि मूल का सौंदर्य बहुत-कुछ अनुप्रास, तुक और भाषा के ऐश्वर्य में है। यह कल्पना की जा सकती है कि जिस समय दाशरथी राय ऐसी कविताएं जनता के सामने पेश करते थे, एक के बाद एक आश्चर्य के कारण जनता मे खूब वाहवाही होती होगी। इस कविता की एक-एक उक्ति एक सूक्ति के रूप मे है, और जब इतनी सूक्तिया एक साथ पिरोकर अल्पज्ञ श्रोताओ के सामने एक साथ आती थी तो वह उन्हे अभिभूत कर देती थी। इस कविता की एक विशेषता यह भी है कि इसमे मौलिकता बहुत अधिक है। दाशरथी राय तथा उनके समसामयिक साहित्यकारो ने बंगला साहित्य के क्षेत्र को जिस तरह बनाया, शायद वही इस बात के लिए जिम्मेदार हो कि बाद को चलकर बडे-बडे अंग्रेजीदाओ को भी अन्य प्रभावो के बावजूद बंगला मे लिखना पडा। दिनेशचद्र सेन ने यह साफ लिखा है कि साहित्य की रचना अथवा उसकी गुणग्राहकता अब केवल

उच्चतर वर्ग तक सीमित नही थी। 'साधारण जनता भी यह अनुभव करने लगी थी कि वंगला साहित्य उसका है। कहा जा सकता है कि हमारे साहित्य में यह ज्वार का युग था, और ऐसे युग मे सत्साहित्य के साथ-साथ कुसाहित्य या अपसाहित्य भी मिला हुआ था।"[1]

दाशरथी राय ने धार्मिक गीत भी लिखे। ऐसा मालूम होता है कि उन्हे जव जैसी जनता मिलती थी, वह उसी प्रकार की कविता कहते थे। उनकी यह कविता इस वात को सिद्ध करती है—

दोष कारू नाय गो मा
आमि स्वखात सलिले डूवे मरिमा

—'किसीका दोष नही है, हे मां, मैं स्वय ही अपनी खोदी हुई खाई में डूव रहा हूं।'

कहते हैं, मृत्यु-शैया पर उन्होने एक कविता अपने भाई तीनकौडी उर्फ तीनू को सम्वोधित करते हुए कही थी, जो वहुत करुण है। उसमें उन्होने कहा था—'भाई तीनू, तुम लौट जाओ, मैं नही जाऊगा और न जा सकता हूं। संसार में अकेले ही आया और अकेले ही जाना है।' इसके वाद उन्होने इसी कविता मे यह कहा था कि भाई तीनू, जो कुछ मेरा घर-द्वार, जमा-पूजी है, वह सव तुम्हारा है, तुम विधवा को अन्न देना।' फिर वह कहते हैं—'तुम यह सोचते होगे कि मैं अकेला हूं, पर यह वात गलत है। मैं माता की गोद मे हू।'

दाशरथी राय की पचास रचनाएं उपलव्ध है, जिनमे कुल पचास हजार पंक्तिया हैं।

इस युग के दूसरे कवि **रामनिधि गुप्त** या निधूवावू के पिता वैद्यक से किसी तरह गुजारा करते थे। उसका जन्म १७३८ मे हुआ। रामनिधि को वंगला के अतिरिक्त फारसी का भी वहुत अच्छा ज्ञान था। कहा जाता है, उनको थोड़ी-थोड़ी अग्रेजी भी आती थी। शायद वह एक पादरी के यहां पढने के लिए भेजे गए थे, पर उन्होंने अग्रेजी सीखने मे विशेष ध्यान नही दिया। सगीत मे उनकी रुचि थी और वह उसीके अनुशीलन मे लगे रहते थे। थोडे ही दिनों मे उन्होंने संगीत में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और इस संवंध में उनकी ख्याति फैल गई।

---

[1] देखिये, वगला भाषा और साहित्य (अग्रेजी), पृष्ठ ७४८

वीस साल की उम्र मे उन्हे छपरा में कोई नौकरी मिल गई और वहा रहते समय उनके साथ एक मुस्लिम गानेवाले का साबका पडा, जिससे उन्हे वहुत लाभ हुआ। कुछ समय वाद उनमें गाना लिखने की अभिलाषा इतनी जगी कि वह वंगाल मे लौट गये।

निधूवावू को ही यह श्रेय है कि वंगला कविता और संगीत को धार्मिक रचनाओं के स्वर्ग से उतारकर पार्थिव जगत मे ले आये। अवश्य ही धार्मिक होने के कारण पूर्ववर्ती कविताओ मे पार्थिव भावनाओ, जैसे प्रेम और विरह आदि के व्यक्त होने मे कोई दिक्कत नही पडती थी, राधा और कृष्ण की आड़ भी नाममात्र होती थी, अवश्य ही विद्यासुदर के गाने थे, पर वे भी सोलहो आने धार्मिकता से मुक्त नही थे, क्योकि अत तक सुदर को देवी की स्तुति करना पड़ी और तभी जाकर विद्या के साथ उसका मिलन हुआ है। निधूवावू ने प्रेम को अपने ही अधिकारों पर स्थापित किया और उन दिनो उत्तर भारत मे प्रचलित टप्पा सुर को अपनाया। निधूवावू के प्रेम-गीत वहुत सक्षिप्त होते थे। उनमे भाषा की आडम्वरमय शैली नही है। वह हृदय को छू जाते हैं। उन्हे पढते-पढते यह मालूम होता है कि कई वार हृदय पर चोट लगी। अत्यंत गीतधर्मा होने के कारण उनकी कविताओं का अनुवाद संभव नही है, क्योंकि अनुवाद मे वह वहुत फीके पड़ जायगे। ये कविताएं गाने के लिए ही लिखी गई थी। इन सव वातो के वावजूद हम उनकी एक कविता का अनुवाद प्रस्तुत करते हैं—

> मै जिससे प्रेम करता हूं वह यदि मुझसे प्रेम करे,
> तो प्रेम मे क्या मजा रह जाता ?
> फिर तो टेसू में सुगंध होती, केतकी में कांटे न होते,
> चंदन में फूल लगते, और ईख में फल लगते।

एक और नमूना लीजिये—

> कितना ही सोचता हूं कि रूठूंगा और निहोरे करवाऊंगा,
> पर जब उसका मुख देखता हूं तो यह सव भूल जाता है।
> आंखें अभिमान में कहती हैं कि ऐसा किया कि सुख गया,
> उसको देखते ही मै उसके अधीन हो जाता हूं।

ये गीत उच्च वर्गो मे वहुत प्रसिद्ध हुए और यह कहा जा सकता है कि सचमुच निधूवावू का एक युग चल पडा। इसने भी वगला साहित्य को वल दिया।

ईश्वरचंद्र गुप्त अपने युग के बगाल मे बहुत बड़े साहित्यकार माने गये। शायद वह स्वय इतने बड़े साहित्यकार नही थे, पर उन्होने जिस प्रकार से लोगो को बंगला रचना के लिए अनुप्रेरित किया, वह बहुत बड़ी सेवा थी।

ईश्वरचंद्र का जन्म १८११ मे हुआ। उनके पिता आठ रुपये मासिक पर एक नील बागानवाले के यहा नौकर थे। जब उनकी उम्र केवल दस वर्ष की थी, तभी उनकी माता की मृत्यु हो गई। ऐसा मालूम होता है कि उतनी ही उम्र मे वह काफी सयाने हो चुके थे, जैसा कि सभी प्रतिभावान लड़के होते हैं। जब उनकी माता की मृत्यु पर उनके पिता ने दूसरी शादी की तो उनको बहुत दु.ख हुआ। जब उनकी विमाता से उनका परिचय कराया गया तो उन्होंने एक ईंट फेंककर अपना जवाब दिया। इसपर उनके चाचा ने तैश मे आकर उन्हे बहुत पीटा। तब उन्होने अपनेको एक कमरे बन्द मे कर लिया और चौबीस घंटे तक उन कमरे को नही खोला।

पन्द्रह साल की उम्र में एक लडकी से उनकी शादी भी कर दी गई, जिससे उनकी शिक्षा की इतिश्री हो गई। उनको स्त्री के रूप मे एक अयोग्य लडकी मिली, जो हकलाती थी। इस प्रकार ईश्वरचद्र का जीवन बहुत दुखी रहा। पढने-लिखने मे वह कोई अच्छे नही थे और लोग समझते थे कि वह किसी काम का नही होगा।

फिर भी बचपन से ही उनमें कवित्व-शक्ति का स्फुरण दृष्टिगोचर होने लगा था। एक बार की बात है कि कुछ लोग फारसी कविता पढ़कर बंगला मे उसका अर्थ बताते जा रहे थे। ईश्वरचद्र ने बढ़े ध्यान से उन लोगों की बातचीत सुनी और थोडी ही देर मे कुछ बगला कविता बनाकर सामने आये, जिससे लोग दग रह गये, क्योकि मूल फारसी कविता के सारे भाव इसमे आ गये थे। फिर भी केवल कवित्वशक्ति से आगे बढना सम्भव नही था। सौभाग्य से इन्ही दिनो जोड़ासांको के ठाकुर-परिवार के श्री योगेंद्रमोहन ठाकुर का ध्यान उनकी तरफ गया, और ईश्वरचद्र गुप्त के सामने एक दूसरी ही दुनिया खुल गई। उन्होने अपने प्रयास से विद्या प्राप्त की और कुछ समय में ही वे इस लायक हो गये कि श्री योगेंद्रमोहन ठाकुर के साथ मिलकर 'सम्वाद प्रभाकर' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। यह १८३० के मार्च की बात है।

'सम्वाद प्रभाकर' उन दिनो बंगला मे बहुत ही प्रसिद्ध हुआ और इस

प्रसिद्धि का कारण ईश्वरचद्र की कविताएं थी। व्यंग और विद्रूप लिखने में ईश्वरचंद्र वहुत पटु थे। स्वाभाविक रूप से ऐसा पत्र खूब चला। यह द्रष्टव्य है कि इसी पत्र मे श्री वकिमचंद्र तथा श्री दीनवधु मित्र की रचनाएं पहले-पहल छपी। कहते हैं कि ईश्वर गुप्त गुणी होने के अतिरिक्त गुणग्राहक भी थे। वकिमचद्र और .दीनवंधु मित्र की प्रतिभा पहचानकर उन्हे आगे ले आने का श्रेय ईश्वर गुप्त को ही है।

१८३२ मे श्री योगेंद्रमोहन ठाकुर का देहांत हो गया। ईश्वर गुप्त इससे इतने हतोत्साह हो गये कि उन्होने 'सम्वाद प्रभाकर' बंद कर दिया, पर उन्हें तो इस वीच मे अखवार का चस्का लग चुका था, इसलिए वह इसकी तैयारी मे रहे कि किसी तरह 'सम्वाद प्रभाकर' को फिर से निकाला जाय।

अंत में १८३६ मे 'सम्वाद प्रभाकर' एक अर्द्ध-साप्ताहिक के रूप मे निकाला जा सका। इसका फिर से स्वागत हुआ और १८३९ मे इसे दैनिक वना दिया गया। ईश्वर गुप्त की ख्याति सारे वंगाल मे फैल गई और उन्होंने १८४९ मे 'सम्वाद रत्नावली' नाम से एक अन्य पत्र का सम्पादन शुरू किया। उन्होने इस वीच संस्कृत से भागवत और प्रवोध-चद्रोदय नाटक का वगला अनुवाद तैयार किया। कुल मिलाकर उन्होने कविता की एक लाख पक्तियां लिखी होगी।

यों तो जैसा कि वतलाया गया उन्होने सस्कृत से अनुवाद किया, पर उनका यश उनकी अखवारी कविताओं से फैला। यहा यह वता दिया जाय कि वह व्यंग और कौतुक हमेशा सही दिशा मे ही प्रयुक्त नही करते थे। उस युग के वातावरण के अनुसार ही उनकी कविताए होती थी। 'सम्वाद प्रभाकर' मे उन दिनो के एक कवि गौरीशंकर भट्टाचार्य उर्फ गुडगुडे भट्टाचार्य के विरुद्ध वहुत-सी कविताएं छपी थी। ईश्वर गुप्त अपने पत्र 'सम्वाद प्रभाकर' मे लिखते थे, और गुडगुड़े भट्टाचार्य 'रसराज्य' मे उसका उत्तर देते थे। इस वात का फायदा उठाकर मि० लैंग आदि पादरियो ने वड़ा आदोलन किया। वह चाहते थे कि इन पत्रों का दमन किया जाय। वात यह है कि इनके कारण भारतीय जनता मे जागृति वढ़ रही थी, इससे भोले-भाले लोगों को ईसाई वनाने मे वाधा पड़ती थी।

ईश्वर गुप्त ने प्रेम के सम्वन्ध मे भी वहुत-सी कविताएं लिखीं। एक कविता

प्रथम चुंवन पर है, जिसमे उसे प्रणय-मुख का सार, अपार आनंदप्रद और प्रेमी-प्रेमिक का धन वतलाया है। वतलाया गया है कि यदि प्रणय का प्रथम चुंवन मिले तो उसके सामने वह अमृत भी तुच्छ है, जिसके पीछे राहु पूर्णिमा के चाद को ग्रसा करता है। फिर इसी कविता मे कहा गया है कि असुर लोग जिस सुरा देवी की उपासना करते हैं, जिसके लिए यदुवशी मारे गये, ऐसी सुरा भी प्रणय के प्रथम चुंवन के आगे कुछ नही है। वह कहते है कि यदि कुवेर का सारा धन मिले, गोलकुंडा के सव हीरे हाथ लग जायं, सोना और चादी का वना सुमेरु शिखर मिले, सागर के सारे रत्न और गजमुक्ताओ की राशि मिले, तो भी मैं उन सवको प्रणय के प्रथम चुम्वन के सामने लात मार दूंगा। इस प्रकार की वहुत-सी कविताएं है।

ईश्वर गुप्त ने अपने युग मे जो महान ख्याति पाई थी, उसकी कल्पना आज करना सम्भव नही है। अव शायद ही कोई उनकी कविता पढ़ता हो। ईश्वर गुप्त ने कविवालो के लिए भी कुछ कविताए लिखी थीं, पर उनका सवसे महत्व-पूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने अपनी कुछ हद तक अश्लील और इतर ही सही, कविताओं के द्वारा वंगाली मध्यवित्त वर्ग मे पढ़ने का, विशेपकर अखवार पढने का, चस्का डाला, इसके लिए ईश्वर गुप्त की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। पत्रो को अपने संपादन और रचनाओ के द्वारा जनप्रिय वनाने के अतिरिक्त उन्होंने एक वहुत वड़ा काम यह भी किया कि वडी खोज से उन्होने भारतचंद्र, जयनारायण सेन आदि कवियो की जीवनियां प्राप्त की और उन्हे 'सम्वाद प्रभाकर' में छापा।

यहा यह प्रश्न स्वत उठता है कि पत्र-सम्पादन मे कविता लिखने का स्थान भले ही कुछ हो, पत्रों मे गद्य की ही प्रधानता होती होगी, इस विषय मे ईश्वर गुप्त का क्या स्थान है? वताया गया है कि ईश्वर गुप्त का गद्य आज विल्कुल पंडिताऊ, यहातक कि हास्यास्पद ज्ञात होता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ईश्वर गुप्त ने वंगला साहित्य के क्षेत्र में वड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। वाद को जो लोग आये, उनके लिए उन्होंने रास्ता वहुत-कुछ साफ किया।

: ६ :

आधुनिक बंगला गद्य का प्रारम्भ

आधुनिक बंगला साहित्य का कहां से प्रारभ होता है, इस संबंध मे मत-भेद हो सकता है, पर यदि हम साहित्यिक बंगला गद्य के प्रारभ से आधुनिक बंगला साहित्य का प्रारंभ मानें तो किसीको भी किसी प्रकार आपत्ति न होगी।

यो तो बंगला गद्य के प्रारभ को बहुत प्राचीन काल तक खीचा जा सकता है, पर सच बात यह है कि हिन्दी तथा अन्य कई आधुनिक भारतीय भाषाओ के गद्य की तरह बगला साहित्यिक गद्य का प्रारम्भ भी अठारहवी शताब्दी के अंत मे हुआ। उस समय तक काव्य, आख्यान, धर्मतत्व, इतिहास, स्मृति इत्यादि सारे विषय चौदह अक्षरवाले पयार तथा त्रिपदी छंद मे रचित होते थे। डा० सुकुमार सेन का कहना है कि पयार की शक्तिशालिता के कारण ही आधुनिक बंगला साहित्य मे गद्य को प्रोत्साहन नही मिला। इसमे सन्देह नही कि पयार छद इस अर्थ मे बहुत शक्तिशाली है कि उसकी रचना करीब-करीब उतनी ही आसान है, जितनी गद्य-रचना, पर यह मान लेने पर भी इस बात की व्याख्या रह जाती है कि गद्य-रचना भी तो सरल थी, फिर उसका विकास क्यो नही हुआ ?

इसका प्रधान कारण यह है कि अभी तक भारत में छापेखाने का प्रचार नही हुआ था, साहित्य हाथ से लिखी हुई नकलो के जरिये से ही फैलता था, इस कारण पद्य को तरजीह दी जाती थी। पद्यबद्ध होने के कारण पुस्तके याद रक्खी जा सकती थी। श्री सजनीकात दास ने बंगला गद्य के विलम्बित विकास के लिए यह जो कहा है कि बगाली कवि-स्वभाव थे, इस कारण उनमे गद्य का देर मे विकास हुआ, यह केवल एक तथ्य को जानकर उसकी बेकार प्रशसात्मक व्याख्या करना है, इसलिए हास्यास्पद भी है। अंग्रेजी आदि जिन भाषाओं मे गद्य का पहले विकास हुआ, क्या उनके बोलनेवाले कम कवि-स्वभाव थे ? फिर दूर क्यो जाया जाय, एक तमिल के अतिरिक्त कदाचित् सभी भारतीय भाषाओ मे, यहांतक कि पाश्चात्य देशो मे भी गद्य की द्रुत उन्नति छापेखाने के

साथ ही हुई। साहित्य की व्याख्या मे सजनीकात दास की तरह कूपमंडूकता कई वार अज्ञान के कारण ही उत्पन्न होती है, पर ऐसी व्याख्याओ से खतरा यह है कि लोग उसे सही समझकर वहक न जाय।

सोलहवी शताब्दी के पहले का कोई वगला गद्य नही मिला, पर हमे इतने व्यौरे मे जाने की आवश्यकता नही है। हमे तो उस गद्य से मतलव है, जिससे आधुनिक साहित्य का प्रारम्भ माना जा सकता है। फिर भी यह वता दिया जाय कि पहले-पहल गद्य का प्रयोग वैष्णवो ने और उसके वाद उनकी देखा-देखी रोमन कैथोलिक पुर्तगाली पादरियों ने किया। सत्रहवी सदी के मध्य भाग मे मग डाकू भूषण के एक जमीदार के लड़के को पकड़ ले गये। एक पुर्तगाली पादरी ने उसे डाकुओ से खरीद लिया और ईसाई धर्म मे दीक्षित कर उसका नाम दोम आन्तोनियो रक्खा। वाद को चलकर दोम आन्तोनियो स्वयं एक पादरी वन गया और उसने ईसाई धर्म की वढाई प्रमाणित करते हुए एक प्रश्नोत्तर-मूलक पुस्तिका लिखी। इस पुस्तिका का संक्षिप्त नाम 'ब्राह्मण कैथोलिक सवाद' था। वाद को इस पुस्तक का पुर्तगाली भाषा मे अनुवाद हुआ। मूल पुस्तिका की एकमात्र जानी हुई पाडुलिपि पुर्तगाली एवोरा शहर मे सुरक्षित थी।[1]

पुर्तगालियो ने इसी प्रकार वगला व्याकरण तथा कोश आदि तैयार किया। इसके वाद हम एकदम से अंग्रेजी शासन के युग मे पहुंच जाते है। कम्पनी के जमाने मे वगला मुद्रण का सूत्रपात हुआ। वगला मुद्रण के सृष्टिकर्ता विल्किन्सन थे और उनसे श्रीरामपुर के पचानन कर्मकार ने हरफ तैयार करना सीखा था। कम्पनी के युग मे अठारहवी सदी के अन्त मे तीन कानून-सम्बंधी पुस्तके प्रकाशित हुई। ये पुस्तकें अनुवाद के रूप मे थी।

अठारहवी शताब्दी मे श्रीरामपुर मे स्थापित वैप्टिस्ट मिशन की ओर से बंगाल में ईसाई धर्म के प्रचार का आन्दोलन चल पड़ा। १८०० ई० की जनवरी मे मिशन प्रेस की स्थापना हुई। यद्यपि इस प्रेस का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था, फिर भी बंगाल की सुप्रसिद्ध कृत्तिवासी रामायण तथा काशीराम दास के महाभारत का मुद्रण इसी प्रेस मे हुआ। ईसाई धर्म की पुस्तकें तो यहा से प्रकाशित हुईं ही। यद्यपि इन लोगो का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था,

---

[1] वागला साहित्ये गद्य—सुकुमार सेन, पृष्ठ ११.

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि बंगला गद्य के निर्माण में इन लोगो ने बड़ा हाथ बटाया।

उधर १८०० ई० की मई मे ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने अंग्रेज कर्मचारियों को देशी भाषाओं की शिक्षा देने से लिए कालेज ऑव फोर्ट विलियम की स्थापना की, पर बंगला विभाग खुलते-खुलते १८०१ की मई आ गई। इस विभाग के अध्यक्ष विलियम केरी थे और इनके सहकारी के रूप मे कई पंडित काम करते थे। इन लोगों ने जिन पुस्तको की रचना की, उन्हींको आधुनिक बंगला गद्य की मर्यादा दी गई है। केरी के सहकारियो मे **रामराम वसु** (मृत्यु १८१३) प्रधान थे। श्रीरामपुर मिशन से उनकी दो पुस्तकें 'राजा प्रतापादित्यचरित' (१८०१) और 'लिपिमाला' (१८०२) प्रकाशित हुई थी। कहा जाता है कि राजा राममोहन ने प्रतापादित्य-चरित शुद्ध किया था। गोलोकनाथ शर्मा द्वारा अनूदित हितोपदेश इसी समय के लगभग प्रकाशित हुआ।

फोर्ट विलियम कालेज के सहकारियों मे **मृत्युंजय विद्यालंकार** भी कई पुस्तकें लिख गये है। उनका 'बत्रिस सिंहासन' पहले-पहल १८०२ में प्रकाशित हुआ। बाद को श्रीरामपुर और लंदन से इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। मृत्युंजय कई प्रकार की सरकारी नौकरियो मे रहे, १८१९ मे मुर्शिदाबाद में उनकी मृत्यु हुई। वह केवल एक लेखक या अनुवादक ही नही थे, बल्कि अपनी विद्वत्ता के लिए बहुत प्रसिद्ध भी थे। उनके विचार बहुत कट्टर थे, फिर भी एक ऐसा उल्लेख मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि राजा राममोहन ने तो १८१८ में सहमरण के विषय मे पुस्तिका प्रकाशित की, पर १८१७ मे ही उन्होने यह व्यवस्था दी थी—"चितारोहण अपरिहार्य नही है। यह इच्छाधीन विषयमात्र है। अनुगमन और धर्म-जीवन-यापन इन दोनो मे शेषोक्त ही श्रेयतर है। जो स्त्री अनुमृता नही होती अथवा अनुगमन के सकल्प से च्युत हो जाती है, उसे कोई दोष नही लगता।"

राजा राममोहन राय के आते-आते बंगला गद्य कुछ बंध चुका था। राममोहन का जन्म एक मत के अनुसार १७७० मे और दूसरे मत के अनुसार १७८० मे हुआ। राममोहन राय ने १८१५ मे वेदांत पर बंगला भाषा मे पुस्तक लिखी। मृत्युंजय ने उसके विरुद्ध 'वेदात चंद्रिका' पुस्तक लिखी और अपनी पुस्तक में राममोहन को बगुला भगत, कपटी तत्वज्ञानी, धूर्त-अवधूत आदि

विशेषणो से याद किया, यद्यपि उनका नाम कही नही लिया गया।

राममोहन राय के हाथ मे पड़कर पहले-पहल वगला गद्य उन्नीसवी शताब्दी मे पाठ्य पुस्तको के दायरे से वाहर निकला। १८१५ मे राममोहन राय के दो अनुवादात्मक ग्रथ 'वेदात ग्रंथ' और 'वेदात सार' प्रकाशित हुए। जब मृत्युजय ने इसके विरुद्ध 'वेदात चद्रिका' लिखी तो उसके जवाव मे राममोहन ने 'भट्टाचार्येर सहित विचार' लिखा। इसके वाद राममोहन ने सहमरण-प्रथा के विरुद्ध उसे अशास्त्रीय सावित करते हुए 'प्रवर्तक ओ निवर्तके सवाद' तथा 'गोस्वामीर सहित विचार' दो पुस्तिकाए लिखी। इसके विरुद्ध काशीनाथ तर्क-पंचानन ने १८२३ मे राममोहन को गालिया देते हुए 'पाषड पीडन' नामक पुस्तक लिखी। राममोहन भी चुप वैठनेवाले नही थे। उन्होने उसी साल 'पथ्य प्रदान' नाम से पुस्तक लिखी। राममोहन की शैली की विशेषता यह थी कि वह तर्क और युक्ति से काम लेते थे, इसके विरुद्ध पडितो की शैली कटूक्ति और गाली-गुफ्तार की शैली थी।

१८२१ के सितम्वर मे राममोहन ने 'व्राह्मनीकल मेगजीन' नाम से एक पत्रिका निकाली। इसका एक दूसरा नाम 'ब्राह्मणसेवक' था। उसी साल के दिसवर मे 'सवाद कौमुदी' भी प्रकाशित हुई। १८२२ मे राममोहन ने 'मीरतुल अखवार' नाम से फारसी भाषा मे एक पत्र निकाला। डा० सेन ने लिखा है कि फारसी भाषा मे लिखा हुआ यही प्रथम मुद्रित समाचारपत्र था। राममोहन ने गद्य मे कठ, मुडक, मांडुक्य, वाजसेनीय सहिता आदि का गद्यानुवाद प्रस्तुत किया। उन्होने पद्य मे भगवद्गीता का भी अनुवाद किया था, पर अव यह अनुवाद प्राप्त नही है। उन्होने कुछ आध्यात्मिक गीत भी लिखे थे।

व्याकरण के क्षेत्र मे भी उन्होने काम किया था। १८२६ में उन्होने अंग्रेजी मे वगला व्याकरण लिखा था। वाद को वंगला मे इस पुस्तक का जो रूप प्रकाशित हुआ, उसका नाम 'गौडीय व्याकरण' पडा। यह पुस्तक उनकी मृत्यु के कुछ दिन वाद प्रकाशित हुई। इसमे कोई सदेह नही कि राममोहन ने वंगला भाषा की वहुत अधिक सेवा की। यहा सक्षेप मे वता दिया जाय कि राममोहन ने भारतीय पुनरुत्थान मे कितना जवर्दस्त हाथ वटाया।

राममोहन अंग्रेजी, सस्कृत, फारसी, अरवी आदि कई भाषाओ के विद्वान थे। राममोहन ने प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यता का मूल स्रोतो से अध्ययन किया

था। वह इस नतीजे पर पहुंचे थे कि भारतीय धर्म का सार एकेश्वरवाद है, न कि बहुदेव-देवी पूजा। उन्होंने इस संबंध मे १८०४ मे ही फारसी मे एक पुस्तक लिखी, जिसमें यह प्रतिपादन किया कि एकेश्वरवाद ही शास्त्रीय है। उनकी इस चेष्टा से पादरी बहुत नाराज हुए, पर कट्टर हिन्दू भी उनसे रुष्ट हुए। १८१५ मे उन्होंने वेदांत पर जो कुछ लिखा, उसमें एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया। उसी साल उन्होने मानिकतल्ला मे आत्मीय सभा नाम से एक संस्था स्थापित की, जो आगे चलकर उपासना समाज, ब्रह्म सभा या ब्राह्म समाज मे परिणत हो गई।

सहमरण के विरुद्ध उन्होने जो आदोलन चलाया, उसके कारण १८२९ में ब्रिटिश सरकार ने कानून बनाकर इस प्रथा को बद कर दिया। उन्होने मूर्ति-पूजा, तीर्थो का ढकोसला आदि के विरुद्ध भी अविश्रात आदोलन किया।

राममोहन के राजनैतिक विचार भी बहुत परिपक्व थे। जब वह इंगलैंड जा रहे थे, उस समय उन्होने एक फ्रेंच जहाज को फ्रांस की क्रातिकारी पताका धारण किये हुए देखा। इसपर वह इतने मुग्ध हुए कि उन्होने उस जहाज को खडा करवाया, उसपर चढे और चिल्ला-चिल्लाकर फ्रांस की जय बोलने लगे। लंदन में रहते समय उन्होंने अपना देशी पहनावा नही छोडा। वह भारतवर्ष को स्वतन्त्र, ब्रिटेन के मित्र तथा एशिया को आलोक प्रदान करनेवाले के रूप मे देखना चाहते थे।

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि अपने समाज-सुधार तथा धर्मसुधार-मूलक कार्यो के सिलसिले मे साहित्य-रचना की। उन्होने पत्र-पत्रिकाओं के दमनमूलक कानूनो के विरुद्ध भी लडाई की। उन्होने गोरो और भारतीयों मे भेदभावमूलक सरकारी नीति का भी विरोध किया। उन्होंने कुलीन प्रथा के विरुद्ध आंदोलन किया। उन्होंने स्त्रियो के उत्तराधिकार, दहेज आदि के सबध मे भी आंदोलन किया। सच तो यह है कि वह एक तरफ जहा पाश्चात्य सभ्यता को अपनाने के पक्ष में थे, वही वे उसके हानिकारक उपादानो के विरुद्ध उठ खड़े हुए। ऐसे क्रातिकारी तथा उच्च विचारवाले व्यक्तित्व के हाथो मे प्रारभिक बगला साहित्य का निर्माण-कार्य पड़ना बगला साहित्य के लिए बहुत सौभाग्य की बात थी।

: ७ :

बंगला का पहला उपन्यास

बंगाल मे अंग्रेजी शिक्षा के प्रवर्तन के साथ-ही-साथ उपन्यास-साहित्य का आविर्भाव हुआ। यों तो कहने के लिए यह कहा जा सकता है कि भारत मे भी पहले उपन्यास होते थे, पर सच्ची वात यह है कि न केवल भारत में, वल्कि सभी देशों मे पूजीवाद और छापेखाने के साथ-साथ उपन्यासो का आरम्भ हुआ।

यों तो रामायण, महाभारत में भी उपन्यास का मजा आता है, पर वे पद्य मे हैं। यदि हम संस्कृत गद्य-साहित्य की ओर दृष्टिपात करे तो कथासरित्सागर, वेताल पंचविंशति, दशकुमार-चरित, कादम्बरी तथा बौद्ध जातकों में उपन्यास के कई उपादान मौजूद हैं। इन ग्रन्थों मे वर्णन के आडम्वर के नीचे निश्चय ही अक्सर कहानी दवकर रह गई है। बौद्ध-जातको मे फिर भी कुछ गनीमत है, क्योकि उनमे राजाओ से उतरकर साहित्य की वस्तु को बहुत-कुछ मध्यम वर्ग मे लाया गया है, और वर्गो का भेद उतना स्पष्ट नहीं है। फिर भी इन सवकी कहानियों मे ऊल-जलूल वातों के साथ-साथ वास्तविक घटनाएं इस प्रकार मिलाई गई हैं कि आधुनिक पाठक उसे सहन नही कर सकता। अप्राकृतिक या अतिप्राकृतिक वातो की भरमार है।

पंचतंत्र इनसे विल्कुल भिन्न प्रकार का साहित्य है। यदि कहा जाय कि हमारा पंचतंत्र सारे विश्व-साहित्य मे अनोखा है तो कोई अत्युक्ति न होगी। केवल ईसप की कहानिया उसके कुछ पास आती है, यद्यपि यह भी एक मत है कि ईसप की कहानिया पंचतंत्र से ही उद्भूत है। पशु-पक्षियो की वातचीत के जरिये से जीवन-संवधी मोटी-मोटी वाते वता देने की ओर ही लेखक का ध्यान है, उसमे चरित्र-चित्रण या नाटकीय गुण-उत्पादन का कोई प्रयास नही है। कहानी तो महज एक वहाना है, लेखक का उद्देश्य नीति की शिक्षा देना है। अवश्य विष्णु शर्मा ने इससे अधिक कुछ दावा भी नही किया है। उन्होने तो साफ कह दिया है कि कथा के मिस से वालको के लिए नीति शिक्षादान ही उनका उद्देश्य है। वाल-साहित्य के रूप में पंचतंत्र हमेशा आदर प्राप्त करेगा, पर उससे उपन्यास-साहित्य से जो रस मिलता है, उसकी आशा करना सर्वथा व्यर्थ है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, हमारे प्राचीन साहित्य मे जातक साहित्य ही उपन्यास के सबसे नजदीक है। उस युग की बहुत-सी घटनाओं का इससे परिचय प्राप्त होता है। अतिरंजन की मात्रा अपेक्षाकृत कम है।

जब बंगला का निजी अस्तित्व कायम हो गया तो उसमे भी बहुत-कुछ संस्कृत का ही सिलसिला चला, पर बंगला मे उस प्रकार शब्दाडंबरपूर्ण समास-बहुल रचना की गुंजाइश नही थी, इसके अलावा बंगला की रचनाएं पंडितो के लिए न होकर साधारण लोगो के लिए थी, अतएव रचना कुछ सरल अवश्य हो गई, फिर भी ढाचा तो वही रहा, और उपाख्यानो का रुख भी धार्मिक ही रहा।

महाप्रभु चैतन्य पर जो पुस्तकें लिखी गई, उनमें रामकृष्ण की जगह चैतन्य को बैठाया गया, फिर भी बाते वही रही। बल्कि इस संबंध मे कलकत्ता विश्वविद्यालय के द्वारा संगृहीत 'मैमनसिंह के गीत' आधुनिक उपन्यास के अधिक निकट हैं। इन गीतो का रचनाकाल सोलहवी और सत्रहवी शताब्दी माना गया है। इन गीतो के आविष्कार से बंगला साहित्य की एक लुप्त कडी का पता लगा है। कृत्तिवास. काशीराम, मुकुन्दराम और भारतचन्द्र मे जो खाई है, वह इनके आविष्कार से बहुत कुछ पाटी जा चुकी है। इन गीतो मे छोटे-छोटे उपाख्यान भी आते हैं। इनमे उस समय के समाज के बहुत सजीव चित्र मिलते हैं। इन गीतो के सम्बन्ध में सबसे बडी बात यह है कि इनमे परम्परागत वर्णन-शैली को बलपूर्वक हटाकर जो चीज जैसी है, उसे उस रूप मे देखने की चेष्टा है। प्रेमिक-प्रेमिकाओ की बातचीत या व्यवहार के कृत्रिमता लाने की चेष्टा न कर, उन्हे अधिक-से-अधिक स्वाभाविक बनाने की चेष्टा है। यदि बगला साहित्य मे अग्रेजी से स्वतंत्र कोई ऐसा साहित्य है, जो साथ ही आधुनिक उपन्यास-साहित्य के बहुत करीब है तो वह मैमनसिंह के गीत हैं।

इनके अतिरिक्त बंगला साहित्य मे अरबी, फारसी सूत्र से आये हुए हातिमताई की कहानी, लैला-मजनू, चहारदरवेश, गुलबकावली आदि कहानियां भी मौजूद थी। इन कहानियो का प्रचार हिन्दू, मुसलमान सभी घरो मे था।

जब बंगाल मे समाचारपत्रो का आरम्भ हुआ, तभी उसीके साथ-साथ उपन्यास-साहित्य का भी सूत्रपात हुआ। १८२१ मे 'समाचार-दर्पण' में 'बाबू' नाम से एक रेखाचित्र छपा। दो अंकों में याने २४ फरवरी और ६ जून के अंको में

यह रेखाचित्र सम्पूर्ण हुआ। इसमे उस युग के एक धनी-पुत्र तिलकचन्द्र का चित्रण था। यह धनी-पुत्र मुसाहिवो से घिरे रहते है, उन्हे न तो कोई शिक्षा मिली है और न उनमे कोई चरित्र-बल है। तिलकचद्र अपने अंतर की शून्यता को वाहरी आडवर से ढकने की चेष्टा करते रहते है। उनकी एक चिन्ता यह भी है कि मुसाहिवो मे उनकी इज्जत वनी रहे। नतीजा यह है कि वह शुरू से आखिर तक हास्यास्पद बने रहते है। यह रेखाचित्र पाठको के मनोरजन और साथ ही नसीहत के लिए लिखा गया था।

मालूम होता है 'वावू' रेखाचित्र वहुत प्रसिद्ध हुआ, इसलिए १८२३ मे प्रमथनाथ शर्मा ने 'नववावू विलास' नाम से एक रचना प्रकाशित की, जिसके संबंध मे यह वताया जाता है कि यह वगला का पहला उपन्यास है। **प्रथमनाथ शर्मा** का असली नाम भवानीचरण वन्द्योपाध्याय था। एक ऐसा भी अनुमान है कि शायद 'वावू' के भी यही लेखक थे। वे 'समाचार चद्रिका' और 'सस्वाद-कौमुदी' नामक दो पत्रो के सम्पादक थे, और हिन्दू समाज के स्तभ माने जाते थे। 'नववावू-विलास' को 'वावू' का ही एक परिवर्द्धित संस्करण कहा जा सकता है। इसमे भी उन्ही वातो का चित्रण था, जिनका चित्रण 'वावू' मे था। इसका भी उद्देश्य समाज-सुधार-मूलक था।

इन दोनो रचनाओ मे चित्रित वावू उस समय के समाज की एक विशेप उपज था। उसकी सारी आमदनी जमीदारी से आती थी, पर पहले के युग मे जमीदारो पर जो थोडी-वहुत रोक थी, वह उसके शहर मे आकर वस जाने से टूट गई थी। धन उडाने के उपाय पहले के मुकावले में अधिक थे, इसीसे 'वावू चरित्र' वना।

१८५७ मे **प्यारी चांद मित्र** का 'अलालेर घरेर दुलाल' प्रकाशित हुआ। मजे की वात यह है कि यह भी उसी विपय को लेकर चला। १८६२ मे **काली-प्रसन्न सिंह** ने 'हुतोम पेचार नक्काशा' लिखा, वह भी इसी विपय पर था। मालूम होता है कि उस युग के वुद्धिजीवी धनिको की उच्छृखलता से वहुत परेशान थे।

'अलालेर घरेर दुलाल' पहले के धनी पुत्रों से विशिष्ट इस अर्थ मे था कि उसका नायक मिस्टर शेरवोर्न के स्कूल मे गया था, इसलिए उसने कुछ अंग्रेजी शब्द और टीमटाम अपनाई थी। उस समय का सुन्दर चित्र उसमे आ जाता

है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास बाद के बहुत-से उपन्यासो से अच्छा है। इसमे से एक चरित्र ठग चाचा है। झूठे वादे करने मे और चालाकी मे वह ऐसा चरित्र बन जाता है, जिसे भुलाना असंभव है। कोई चरित्र नाक से बोलता है तो कोई किसी ढंग से वाक्यो की रचना करता है, कोई गवास से पीडित है। इस प्रकार यह एक सफल व्यंगात्मक रचना है। इस उपन्यास की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे वागाडबरपूर्ण भाषा छोडकर बोल-चाल की भाषा अपनाई गई है। इससे भी बडी बात इस उपन्यास के बारे मे यह है कि यह बगला का पूर्णकाय पहला उपन्यास है। ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भी कहा जाय, साहित्यिक दृष्टि से यही से बगला उपन्यास का सूत्रपात होता है। फिर तो वह एक अनवरत धारा मे चलने लगता है।

'आलालेर घरेर दुलाल' मे अंग्रेजी शिक्षा की प्रथम प्रतिक्रिया के चित्र मिलते है। श्रीकुमार बनर्जी के अनुसार इस पुस्तक मे १७७५ से लेकर १८२५ तक के बंगाली समाज का चित्र मिलता है। अभी तक अग्रेजी शिक्षा जातीय जीवन मे मज्जागत नही हुई थी, अभी तक इस बात का प्रबल सघर्ष चल रहा था कि यह रहे या वह रहे। इस कारण एक उखाड-पछाड का वातावरण था और चूकि अभी तक यह तय नही हुआ था कि कितना रहेगा और कितना जायगा, इसलिए वातावरण मे एक विक्षोभ और आलोडन मचा हुआ था। उस समय यह तो निर्णीत-सा हो चुका था कि पाश्चात्य रग-ढग और विचारधारा बल्कि विचारशैली की विजय होगी, पर अभी न तो प्राचीन और अर्वाचीन का कोई समन्वय होता दिखाई पड रहा था, और न एक-दूसरे पर पूरी तरह से हावी हो सकी थी।

यहापर यह भी बात स्पष्ट कर दिया जाय कि जिन लोगो ने पाश्चात्य सभ्यता से चकाचौंध होकर उसकी बुरी-भली सब बाते अपना ली, स्वाभाविक रूप से उन लोगो ने बगला छोडकर अग्रेजी अपनाई, नतीजा यह हुआ कि बगला साहित्य मे वे अपनी कोई निशानी नही छोड गये। हा, ऐसे लोगो मे माइकेल मधुसूदन थे, जिन्होने ईसाई धर्म ग्रहण किया और अग्रेजी मे काव्य रचना करने की ठानी, पर कुछ ऐसा सयोग हुआ कि भीतर-भीतर वह बंगला से प्रेम करते थे, और अन्त तक उन्होने अग्रेजी को तिलांजलि देकर बगला अपनाली। इसी प्रकार श्री राजनारायण वसु को बुढापे मे होश आया और उन्होने अपने यौवन

की आंग्ल-प्रभावित लीलाओं की कहानी व्यंगात्मक रूप से लिखी। पर किसीने उपन्यास में उस धारा का प्रतिनिधित्व नही किया, जिसने पाश्चात्य सभ्यता के सामने साष्टांग दण्डवत कर आत्मसमर्पण कर दिया था। उपन्यास-साहित्य में यह पहलू अज्ञात ही रह गया।

फिर भी 'आलालेर घरेर दुलाल' और वाद के वहुत-से उपन्यासो में जिस संघर्ष का चित्र हमारे सामने आता है, उससे हम उस युग के सामाजिक मन्थन का वहुत अच्छी तरह अनुमान कर सकते हैं। यह वात कही गई है कि 'आलालेर घरेर दुलाल' के लेखक जीवन के वृहत् व्यापक सत्य को अपनी सत्ता में प्रस्फुटित नहीं कर पाये, पर उन्होने जो सामाजिक चित्र हमारे सम्मुख पेश किया है, वह वहुमूल्य है।

समसामयिक अन्य साहित्य

हम इस पुस्तक मे वंगला साहित्य के इस युग का कोई व्यौरेवार इतिहास देने नही जा रहे हैं। हमारे इस संक्षिप्त इतिहास में मुख्य धाराओं और व्यक्तित्वो के सम्वन्ध में ही इगित किया जा सकता है।

उन्नीसवीं सदी के द्वितीय दशक के वाद वंगला साहित्य मे वरावर संस्कृत तथा अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित होते रहे। सामयिक पत्र-पत्रिकाएं भी प्रकाशित होने लगीं। श्रीरामपुर के मिशनरियो ने १८१८ में 'दिग्दर्शन' नाम से एक छोटी-सी मासिक पत्रिका निकाली। लगभग इसी समय गंगाधर भट्टाचार्य ने कलकत्ता से 'वंगाल गजट' प्रकाशित किया। इन पत्रों मे छोटी-मोटी खवरो के साथ-साथ दिलचस्प वातें रहती थी। 'दिग्दर्शन' में भूगोल, इतिहास तथा देश-विदेश की वहुत-सी आश्चर्यजनक वातें प्रकाशित होती थी। 'समाचार दर्पण' (१८१८ की मई में प्रथम प्रकाशन) के सम्पादक के स्थान पर जान क्लार्क मार्शमैन का नाम जाता था, पर इसके असली संपादक उनके सहकारी जयगोपाल तर्कालंकार थे। 'समाचार दर्पण' मिशनरियो का पत्र था, इसलिए इसमें अक्सर ऐसी वातें भी प्रकाशित होती थीं, जो हिन्दुओं के लिए अप्रिय और ग्लानिकर होती थीं। इसी कारण राममोहन राय को 'संवाद कौमुदी' प्रकाशित करनी पड़ी। 'संवाद कौमुदी' ने भाषा को सरल वनाने मे हाथ वटाया। इस पत्र में राममोहन के सहयोगियों में भवानीचरण वन्द्योपाध्याय (१७८७-१८४८) थे।

मतभेद हो जाने के कारण वह अलग हो गये और उन्होंने एक दूसरा पत्र निकाला।

भवानीचरण ने कई पुस्तकें भी लिखी और हितोपदेश तथा 'मेटिरिया मेडिका' का अनुवाद किया। इन्होंने पोथी के ढंग से भागवत, गीता और मनुसंहिता आदि शास्त्र-ग्रंथों का प्रकाशन भी किया।

इसके बाद १८२६ में 'बंगदूत' प्रकाशित हुआ। इसके परिचालकों मे राममोहन राय, द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर आदि थे और नीलरतन हालदार इसके संपादक थे। बाद के युग मे कवि ईश्वर गुप्त के सपादन में 'संवाद प्रभाकर' निकला। कवि ईश्वर गुप्त अच्छे कवि माने गये हैं, पर उनका गद्य सुंदर नहीं था। वह दीर्घ वाक्य, समासबद्ध शब्द तथा अनुप्रास-मंडित शैली में विश्वास रखते थे, जिससे बगला गद्य आगे की ओर न बढ़कर पीछे की ओर लौटा। 'संवाद प्रभाकर' के बाद 'ज्ञानान्वेषण', 'ज्ञानोदय' आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ।

बंगला पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में इसके बाद १८४३ में 'तत्व बोधिनी पत्रिका' का प्रकाशन एक बहुत बड़ी घटना है। यह पत्र ब्राह्म समाज के मुखपत्र के रूप मे प्रकाशित हुआ, पर प्रथम बारह वर्ष तक इसके संपादक अक्षयकुमार दत्त थे, जिनकी रुचि विज्ञान और गंभीर चिंतन में थी, इस कारण एक संप्रदाय का मुखपत्र होते हुए भी यह पत्र कट्टरता के कीचड़ से कभी कलुषित नही हुआ। अक्षयकुमार वैज्ञानिक विषयों पर निबंध लिखा करते थे। बाद को कुछ दिनों तक प्रसिद्ध सुधारक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थोडे दिनो के लिए इसके संपादक थे। इस पत्र को उस युग के श्रेष्ठ लेखकों, जैसे महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर, राज-नारायण बसु और द्विजेंद्रनाथ ठाकुर आदि का सहयोग प्राप्त था। 'तत्व बोधिनी पत्रिका' ने बंगला साहित्य मे जो आदर्श पेश किया, उसीको बंकिमचंद्र ने अपने 'बंगदर्शन' पत्र मे आगे बढ़ाया।

अक्षयकुमार दत्त (१८२०-८६) अपेक्षाकृत आधुनिक बंगला गद्य के प्रथम सुलेखक माने गये हैं। उन्हे बाकायदा शिक्षा प्राप्त करने का मौका नही मिला। पहले उन्होंने संस्कृत भाषा पढी, बाद को अपने ही प्रयास से अंग्रेजी सीखी। कवि ईश्वर गुप्त के असर मे पड़ने के कारण वह पहले-पहल कविता की ओर झुके, पर साथ ही ईश्वर गुप्त के कहने पर अंग्रेजी अखबारों के लेखों का अनुवाद भी करने लगे। अक्षयकुमार बाद को देवेंद्रनाथ ठाकुर के संसर्ग में आ

गये और १८४० मे जव तत्ववोधिनी पाठशाला स्थापित हुई तो देवेंद्रनाथ ने उन्हे वहां शिक्षक लगवा दिया। छात्रो के लिए कोई उपयुक्त भूगोल नही था, इसलिए अक्षयकुमार ने एक भूगोल लिखा और वह तत्व-वोधिनी सभा के द्वारा प्रकाशित हुआ। १८४२ मे उन्होने प्रसन्नकुमार घोप के साथ मिलकर 'विद्या-दर्शन' नाम का एक मासिक पत्र निकाला, जिसकी केवल ६ संख्याए निकली, पर 'तत्व वोधिनी पत्रिका' चलती रही। जव १८५५ मे कलकत्ता मे एक नार्मल स्कूल स्थापित हुआ तो विद्यासागर महोदय ने उनसे इस विद्यालय का प्रधान शिक्षक पद स्वीकार करने के लिए कहा। उन्होने सहर्प यह पद ग्रहण किया, पर मस्तिप्क रोग के कारण उन्हे यह कार्य छोड देना पडा। विद्यासागर महोदय ने उनकी सिफारिश की और उन्हे सभा की ओर से कुछ मासिक भत्ता दिया जाने लगा। पर कुछ दिनो के वाद जव उन्हे पुस्तको से कुछ आमदनी होने लगी तो अक्षयकुमार ने स्वयं यह भत्ता छोड दिया।

अक्षयकुमार ने विज्ञान पर कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी। उन्होंने 'भारत-वर्षीय उपासक सप्रदाय' नाम से एक इतिहास-ग्रंथ प्रस्तुत किया। इस पुस्तक मे इतिहास के अतिरिक्त, धर्म और भापा विज्ञान पर भी आलोचना थी। उस समय तक प्रकाशित वगला ग्रंथो में यह शोध की दृप्टि मे सवसे उच्चकोटि की पुस्तक थी।

उनकी मृत्यु के वाद जो शोध-संवधी सामग्री वच गई थी, उसका आधार लेकर उनके छोटे लडके रजनीनाथ दत्त ने 'प्राचीन हिंदु दिगेर समुद्र यात्रा आर वाणिज्य विस्तार' नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की। पर यह वाद की वात है।

: ८ :

वंगला रंगमच और नाटक का आदि युग

अत्यंत प्राचीन काल मे भारत मे रंगमच थे और नाटक खेले जाते थे। सस्कृत नाट्य साहित्य काफी उन्नत था और समय-समय पर उसमे नई कृतिया आती रहती थी, पर मुस्लिम युग में तांता टूट-सा गया और वंगाल मे जात्रा नामक एक

संगठन रहा, जिसने अभिनय-कला को जीवित रक्खा। धर्म के साथ जुड जाने के कारण जात्रा के चालू रहने मे सहायता मिली।

पर जिसे हम आधुनिक रंगमंच कहेगे, वगाल मे उसका उदय अग्रेजो के आने के बाद ही हुआ। जब अग्रेजों की भारत मे अच्छी-खासी सख्या होगई तो कलकत्ता मे अग्रेजी नाटक के लिए रंगमंच की स्थापना हुई। पलासी के युद्ध के पहले ही लाल वाजार सडक पर 'प्ले हाउस' नामकनाट्य गृह की स्थापना हुई थी। ईस्ट-इंडिया कम्पनी के हाथ में शासन-सूत्र जाने के पहले ही यह नाट्य-गृह वर्पो तक चालू था। इस संवध में एक उल्लेखनीय वात यह है कि इसके वहुत वाद १७७४ में एक अग्रेज ने शिकायत करते हुए यह लिखा था कि कलकत्ता मे एक नाट्यगृह है, पर कोई गिरजा नही है, जिसके अभाव की पूर्ति पुराने किले के अन्दर के एक वड़े कमरे से की जाती है। दुःख है कि इस नाट्य-गृह मे कौन-कौन-से खेल खेले गये, उस संवंध मे कुछ जानने का उपाय नही है, क्योंकि उन दिनों न तो कोई समाचार-पत्र था, न गजट।

इस प्ले हाउस का किसी तरह अत हो गया और एक नया प्ले हाउस खोला गया। ऐसा समझा जाता है कि १७७६ के लगभग यह प्ले हाउस खुला। इन नाट्यगृहो मे इतना मालूम होता है कि अंग्रेजी नाटक खेले जाते थे और स्त्रियों का पार्ट भी पुरुप ही करते थे। मालूम होता है कि १७८८ के लगभग स्त्रियो का अभिनेत्री रूप मे नाटकों मे दर्शन होने लगा। समसामयिक समाचार-पत्रो मे यह तो उल्लेख मिलता है कि अभिनेत्रियो के आ जाने से नाटको की जन-प्रियता वहुत वढ गई। यद्यपि मुख्यतः अंग्रेजी नाटक ही खेले जाते थे, फिर भी १७८९ मे अंग्रेजी मे शकुन्तला नाटक के खेले जाने का पता मिलता है।

अभी तक वगला नाटको के खेले जाने का कोई उल्लेख नही मिलता। यह एक मजे की वात है कि जिस प्रकार आधुनिक वगला गद्य के निर्माण मे पुर्तगाली पादरियो तथा यूरोपियनो ने प्रमुख भाग लिया, उसी प्रकार से वंगला रंगमंच को प्रारम्भ करने का श्रेय लेबेडाफ नामक एक रूसी को प्राप्त है। लेवेडाफ के सवध मे इतना ही पता चलता है कि वह एक वहुभाषाविद रूसी था और उसने गोलोकनाथ दास की सहायता से वंगला नाटक तैयार कराये और उनको खेलने का प्रवंध किया।

उसने वहुत दिनो तक भारतीय भाषाओ मे शोध-कार्य किये, फिर दो

अंग्रेजी नाटको का बंगला में अनुवाद किया। एक नाटक का नाम था 'डिसगाइस' (छद्म वेश) और दूसरे का नाम था 'लव इज दि वेस्ट डाक्टर' (प्रेम ही सबसे अच्छा चिकित्सक है)। लेवेडाफ ने यह देखा कि जिन हिस्सो मे भंडैती अधिक थी, लोगो ने उन्हे गम्भीर हिस्सो से अधिक पसन्द किया। लेवेडाफ ने स्पष्ट लिख दिया है कि उसने इन अनुवादो को प्रकाशित किया था, फिर इन्हे पडितो के सुपुर्द किया गया था।

लेवेडाफ आगे लिखते है—"इसके वाद मुझे इस वात की सुविधा मिली कि मैं यह देखू कि पडितो ने किस भाग और किन वाक्यो को अधिक पसन्द किया और किनसे उनकी भावुकता उत्तेजित हुई। मेरा विचार है कि यदि मैं यह कहूं कि मेरे अनुवाद के कारण हास्य रसवाले तथा गम्भीर दृश्यो का रस वढ़ गया था तो इसका कारण यह था कि मुझे जैसा गुरु मिला था, वैसा किसी दूसरे यूरोपीय को प्राप्त नही था और इसके वगैर दूसरे मेरी वरावरी कैसे करते? जव पडितों ने मेरे अनुवाद की प्रशसा की तव मेरे भाषाविद गोलोकनाथ दास ने यह कहा कि यदि मै इस नाटक को खेलना चाहू तो गोलोकनाथ मुझे देशी लोगो मे से ही पुरुष तथा स्त्रियां अभिनेता और अभिनेत्रियों के रूप में उपस्थित कर सकता है। मुझे यह वात सुनकर वहुत खुशी हुई।"

थोडे में कहानी यो है कि तीन महीने के अन्दर अभिनेता तथा अभिनेत्रिया मिल गई और १७९५ के २७ नवम्बर को बंगला भाषा मे 'छद्म वेश' नाटक प्रथम वार खेला गया। १७९६ के २१ मार्च को फिर यह नाटक खेला गया। लेवेडाफ को गवर्नर जनरल तथा दूसरे लोगो की तरफ से वहुत प्रोत्साहन मिला। दुःख है कि लेवेडाफ ने गभीर शोध की तरफ ध्यान न दिया और थोड़े दिनो के अंदर वह यहां से चला गया और उसने सस्कृत का एक व्याकरण रूसी भाषा मे प्रकाशित किया।

लेवेडाफ के संवध मे जो कुछ पता लगा वह यह है कि उसका पूरा नाम गेरेसिम लेवेडाफ था। वह यूक्रेन का एक किसान था और १७७५ में नेपेल्स के रूसी दूतावास मे किसी नौकरी पर था। वह पेरिस, लन्दन घूमते हुए वैंड मास्टर के रूप में मद्रास आया और १७८७ के अगस्त मे कलकत्ता पहुंचा। वह वेहाला का उस्ताद था। यह पता नही लगा कि गोलोकनाथ दास कौन थे।

हमने पहले जो कुछ कहा, उसमे हमें यह भी वताना चाहिए था कि जो

अंग्रेजी नाटक खेले जाते थे, उनमे उन दिनो के बंगाली उच्च शिक्षित दर्शक रूप मे भाग लेते थे। यही नही, इन नाटको के लिए चन्दा आदि करने में भी वे बहुत आगे रहते थे। इस प्रकार लोगो मे नाटक देखने की अभिरुचि बढ रही थी। यह दु.ख है कि लेबेडाफ के चले जाने के बाद बहुत दिनों तक बगला नाटक खेले नही गये। जात्रा होते रहते थे, पर उनसे पढे-लिखे लोगो की तृप्ति नही होती थी। धीरे-धीरे यह आवाज़ उठने लगी थी कि बंगला नाटक खेले जाने चाहिए। १८२९ के एक उल्लेख से यह ज्ञात होता है कि 'समाचार चद्रिका' ने यह आवाज उठाई थी कि जिस प्रकार अंग्रेजो के मनोविनोद के लिए सार्वजनिक नाट्य-गृह चालू है, उसी प्रकार बंगला में भी नाटक खेले जाने चाहिए। यह कहा गया था कि धनी-मानी व्यक्तियो को आगे बढकर इस संबंध मे हाथ बटाना चाहिए।

इसी प्रकार की भावना मे प्रसन्नकुमार का हिंदू थियेटर तथा नवीनकृष्ण बोस का श्याम बाजार थियेटर खुला। हिंदू थियेटर १८३१ के २८ दिसंबर को खुला था। उस दिन अध्यापक विलसन के द्वारा अनूदित उत्तररामचरित का एक भाग तथा जूलियस सीजर का एक हिस्सा खेला गया था। डा० विलसन ने केवल अनुवाद किया, ऐसी बात नही, बल्कि उन्होने स्वय अभिनेताओ को भी प्रशिक्षित किया। नाटक खेले जाते समय सुप्रीम कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश तथा यूरोपीय और भारतीय गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

इसके बाद इन लोगो ने और भी नाटक खेले। यद्यपि कुछ श्वेतागों ने इनमें सब तरह से हाथ बटाया, पर कुछने खुल्लमखुल्ला इनकी बडी निंदा भी की और यह भी कहा कि अभी भारतीय लोगो की शिक्षा इतनी कम है कि उन्हे इन झगड़ो में, विशेषकर अग्रेजी नाटक खेलने के झगडे मे, नही पडना चाहिए।

श्याम बाजार थियेटर मे हिंदू थियेटर की तरह नाटक खेले जाते थे। हिंदू थियेटर केवल इस माने मे बगाली था कि उसके अभिनेता आदि बंगाली थे, पर वहां अंग्रेजी नाटक ही खेले जाते थे। पर श्याम बाजार थियेटर मे बगला नाटक खेले जाते थे। इस नाट्य-गृह मे भारतचद्र का 'विद्यासुदर' नाटक खेला जाता था। कई प्राकृतिक दृश्य भी दिखाये जाते थे और वज्रपात तथा बिजली का कौंधना दिखाने की इसमे व्यवस्था थी। यह एक बहुत मजेदार बात है कि नाटक रात साढे बारह बजे से लेकर प्रात.काल साढे छ: बजे तक खेला जाता था। विद्या का पार्ट राधामणि या मणि नाम की एक बाईजी करती थी, जिनका पिता बगाली

था। अन्य स्त्रियां भी इसी प्रकार वेश्यालयों से आई हुई बतलाई जाती हैं। इस नाट्य-गृह के मालिक नवीन बाबू ने अभिनय को सफल बनाने मे कुछ उठा नही रक्खा था। ऐसा मालूम होता है कि साल में चार-पांच नाटक खेले जाते थे। नाटक देखने के लिए एक हजार के लगभग भीड होती थी, जिसमे हिंदू, मुसलमान, पछांह के लोग तथा यूरोपियन होते थे।

एक समसामयिक लेखक ने यह लिखा है कि राधामणि की उम्र कोई सोलह साल की थी और यह एक अच्छी गायिका होने के अतिरिक्त हाव-भाव भी खूब करती थी। उस लेखक ने इस बात पर विशेष रूप से आश्चर्य प्रकट किया था कि यद्यपि राधामणि पढी-लिखी नही थी और बंगला की बारीकियों से परिचित नहीं थी, फिर भी वह सारे काम अच्छी तरह करती थी। इसी प्रकार इस लेखक ने अन्य अभिनेत्रियों की भी बडी प्रशसा लिखी है।

इस प्रकार की समसामयिक प्रशंसा के साथ-साथ कई ऐंग्लो-इंडियन अखबार इसकी निंदा भी करते थे। 'दि हरकारा' नामक अखबार ने लिखा कि यह तो एक अश्लील नाटक है। 'इंगलिशमैन' नामक अखबार ने इससे भी कुछ आगे बढ़कर यह कहा कि इस प्रकार के नाटको से भारतीयो की किसी प्रकार नैतिक या भौतिक उन्नति नही हो सकती, क्योंकि न तो इसमे किसी प्रकार का नयापन है, न उपयोगिता और न शील और जनता के प्रत्येक हितैषी के लिए यह उचित है कि इस प्रकार के नाटकों के विरुद्ध आवाज उठावे।

नवीनबाबू ने बगला नाटको को सफल बनाने के लिए अपना सबकुछ स्वाहा कर दिया। उनपर दो लाख रुपये का कर्ज चढ़ गया, फिर भी उनका नाम लेबेडाफ के बाद बगला के रंगमच के इतिहास में अमर रहेगा।

ऐसा मालूम होता है कि यद्यपि बंगला नाटको के अभिनय की ओर रुचि बढ रही थी, फिर भी उस समय के पढे-लिखे वर्ग मे अग्रेजी नाटको को देखने का चाव बहुत अधिक था। तदनुसार कई ऐसे रगमच बने, जो बंगाली अभिनेताओं के द्वारा अभिनीत अग्रेजी नाटक दिखलाया करते थे। इसका कारण एक तो यह था कि उस जमाने में पढे-लिखे वर्ग अंग्रेजी के बहुत अधिक प्रशंसक थे और सच तो यह है कि बंगला में इस दिशा में था ही क्या? बगला नाटकों का अभाव रंगमंच की उन्नति मे बहुत बाधक था। जिस लेबेडाफ ने बंगला नाटक शुरू किया, वह नहीं रह गये थे और फिर नवीनबाबू ने इस काम को उठाया, वह

भी उन्ही तक रह गया।

इसमें कोई संदेह नही कि 'विद्या सुंदर' ही पहला वंगला नाटक था। 'विद्या सुंदर' के रचयिता कृष्णचंद्र ने मृत्यु के पहले 'चंडी' नाम से एक नाटक लिखा था, जिसमे देवी चंडी, महिषासुर और प्रजा यही पात्र थे। सूत्रधार संस्कृत में बोलता था, पर बाकी सब लोग वंगला बोलते थे। पर वह ऐसी वगला थी और उसमे संस्कृत, हिंदी और फ़ारसी के इतने शब्द थे कि उसे समझना टेढी खीर है। यह नाटक १७६० के लगभग लिखा जा रहा था, पर रचयिता इसे संपूर्ण नही कर पाये। पडित विद्यानाथ वाचस्पति ने 'चित्रयज्ञ' नाम से एक नाटक लिखा, पर यह भी अजीब खिचडी भाषा मे लिखा गया था, यहांतक कि एक साहब ने इसे एक संस्कृत नाटक करके उल्लेख कर दिया। इस संबंध मे तीसरा प्रयास लेबेडाफ का था, जिसका पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

एक उल्लेख के अनुसार श्री मांकटन ने १८०९ से शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक का अनुवाद वंगला मे किया था, पर न तो इसकी कोई प्रति प्राप्त हुई और न इसके खेले जाने का कोई प्रमाण मिलता है। १८२१ में 'कलि राजा' नामक एक प्रहसन के खेले जाने का प्रमाण मिलता है। कई लोगो ने यह सदेह किया है कि यह कोई जात्रा होगा, पर डाक्टर हेमेन्द्रनाथ दास गुप्त ने अकाट्य प्रमाणो से सिद्ध किया है कि इसमें जात्रा शब्द सफर के अर्थ मे आता है, न कि जात्रा के अर्थ मे। इन्ही दिनो और भी वहुत-से इसी प्रकार के प्रहसन खेले जाते होंगे, क्योंकि १८८२ के 'संवाद कौमुदी' से एक पत्र-लेखक ने इस बात पर शंका प्रकट की है कि आजकल जो प्रहसन खेले जा रहे है, उनका रुझान अनैतिकता की ओर है।

१८२२ के ९ मार्च को एक धनी व्यक्ति के घर पर विलियम फ्रैंकलिन लिखित 'कामरूपा' (Comıoopa) का वगला रूपांतर अभिनीत हुआ था। १८२२ में संस्कृत के 'प्रवोधचन्द्रोदय' नाटक का 'आत्म तत्त्व कौमुदी' नाम से प्रकाशन हुआ था। इसी प्रकार १८२२ मे 'हास्यार्णव' नाम से एक नाटक प्रकाशित हुआ था। कहा जाता है, यह नाटक यो तो व्यंग्य से भरा पड़ा था, पर इसमे अश्लीलता भी थी। ऐसे ही और भी कई नाटक इस युग मे लिखे गए।

१८४० के लगभग 'शकुन्तला' और 'रत्नावली' के वगला मे अनूदित होने का पता लगता है, पर ये नाटक वहुत-कुछ संस्कृत मे ही थे। डा० गुप्त के अनुसार

योगेंद्रचंद्र गुप्त के १८५२ मे प्रकाशित 'कीर्तिविलास' को ही प्रथम ढंग का बगला नाटक होने का श्रेय देना चाहिए, यद्यपि कुछ लोगों ने ताराचरण सिकदार के 'भद्रार्जुन' को ही यह गौरव दे रक्खा था। कीर्तिविलास वृद्ध राजा चद्रकात का पुत्र था और कैकेयी की तरह उसने अपनी दुष्ट रानी की सलाह पर न केवल अपने पुत्र को देश निकाला दिया, बल्कि उसे प्राणदड भी दे दिया। अन्त मे जाकर कामुक सभासद प्राणनाथ की दुर्गति भी दिखाई जाती है।

'भद्रार्जुन' नाटक मे सुभद्रा-अर्जुन की कहानी का आधार है। समय की दृष्टि से भले ही 'कीर्तिविलास' पहले प्रकाशित हुआ हो, पर तकनीक की दृष्टि से 'भद्रार्जुन' मे ही बगला नाटक को सस्कृत के सूत्रधार, नन्दी, विदूषक आदि से छुटकारा मिला। इस दृष्टि से ताराचरण सिकदार की सेवा बहुत बडी है। बाद को अन्य लोगो ने भी इसको अपनाया और बगला नाटक का यह अंग हो गया।

'भद्रार्जुन' और 'कीर्तिविलास' के साथ ही 'भानुमती रचित-विलास' नाम से एक नाटक प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक मौलिक नही थी, बल्कि शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'वेनिस का सौदागर' का ही रूपांतर था। इसमे की भानुमती पोर्शिया है। अक और दृश्य शब्दो के स्थान पर इसमे अक और अंग शब्द प्रयुक्त हुए है। इसके लेखक हरचंद्र घोष थे। यद्यपि यह नाटक मौलिक नही था, फिर भी इसमे पाश्चात्य नाटक-कला का ही अनुसरण किया गया था, इस प्रकार यह नवीन नाटक-साहित्य की ओर एक कदम था। इस नाटक मे फिर भी सरस्वती की स्तुति और नादी थी। कहते हैं, इस नाटक को सफलता मिली, इस कारण हरचद्र ने 'कौरव विजय' नाम से एक नाटक लिखा। इन नाटको का समय १८५३ के पहले का है। 'कीर्तिविलास' तथा 'भद्रार्जुन' इनसे भी पहले लिखे गए थे।

इसी समय के लगभग कवि ईश्वरचंद्र गुप्त ने 'वोधेन्दु विकास' नाम से एक नाटक लिखा। यह 'प्रभाकर' नामक पत्र मे १८५३ मे प्रकाशित हुआ था। इसमे वार्तालाप के अतिरिक्त गाने भी थे। यह सस्कृत नाटक 'प्रवोधचद्रोदय' की छाया लेकर लिखा गया था और १८५६ मे पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ। यह नाटक रंगमच के उपयुक्त नही पाया गया।

ईश्वरचंद्र गुप्त ने 'कलि' नाम से भी एक नाटक लिखा था, पर वह भी असम्पूर्ण ही रहा। यहां यह वता देना उचित होगा कि 'कीर्तिविलास' और 'भद्रार्जुन' को भी रंगमंच पर जाने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ।

इस युग का सबसे महत्त्वपूर्ण नाटक 'कुलीन कुल सर्वस्व' माना गया है, जिसके लेखक पंडित रामनारायण तर्करत्न थे। यह नाटक सम्पूर्ण रूप से मौलिक था। जिस प्रकार से यह नाटक लिखा गया, वह यो है कि रंगपुर के एक जमीदार कालीचरण चतुर्धुरीन ने १८५३ मे दो पत्रो मे यह प्रकाशित करवाया कि कुलीन प्रथा के विरुद्ध जो सबसे अच्छा नाटक लिखा जायगा, उसके लेखक को पचास रुपये पारितोपिक के रूप मे दिये जायगे। पडित रामनारायण तर्करत्न के नाटक को यह पारितोपिक मिला और वह इसके वाद इतने प्रसिद्ध हुए कि वह नाटुके रामनारायण कहलाने लगे। १८५४ मे यह पुस्तकाकार प्रकाशित भी हुआ। सव दृष्टियों से देखने पर 'कुलीन कुल सर्वस्व' इससे पहले लिखे गए वंगला नाटको से कई कदम आगे जाता था। कुलीन प्रथा के विरोध मे लिखे जाने के कारण यह नाटक एक सामाजिक उद्देश्य भी रखता था। इस नाटक का उन दिनो वहुत प्रचार हुआ और विशेपकर नवयुवको ने इसका विशेप स्वागत किया।

इन्ही दिनो 'शकुन्तला' और 'वेणी सहार' नाटको का भी प्रचार हुआ, पर इनमे से कोई भी उतना जनप्रिय नही हुआ, जितना 'कुलीन कुल सर्वस्व' हुआ। इस युग के अन्य उल्लेख योग्य नाटकों मे 'स्वर्ण शृखल' नाम का एक नाटक भी था। ऐसा मालूम होता है कि वगला नाटक वहुत खेले जाने लगे थे और कई नाटक खेले जाने के लिए लिखे गए। कई धनी व्यक्तियो ने अपने घरों में नाटक खेलने का प्रवध किया, जिनमे आशुतोप देव या छातूवावू तथा कालीप्रसन्नसिह उल्लेखनीय है। शेपोक्त व्यक्ति सस्कृत नाटको के खेले जाने के पक्ष में थे, इस-लिए उनके प्रोत्साहन पर सस्कृत नाटको के अनुवाद तैयार किये गए। 'मालती माधव' और 'विक्रमोर्वशी' का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। यह वता दिया जाय कि अनुवाद करते हुए अनुवादको ने मूल का सर्वत्र अनुसरण नही किया।

१८५८ मे कालीप्रसन्नसिह ने 'सावित्री सत्यवान' नाम का एक नाटक प्रस्तुत किया। यद्यपि कथानक महाभारत से लिया गया था, तथापि लेखक ने उसको अपने ढंग से यूरोपीय साचे में ढाल दिया था। यह नाटक १८५८ के ५ जून को खेला गया था। १८५९ मे कालीप्रसन्न ने 'मालती माधव' प्रस्तुत किया, पर इसमे भी उन्होंने रगमच पर प्राप्त अनुभवो के अनुसार यथेच्छ परिवर्तन किया था।

इसके वाद तो वगला रंगमंच मे एक नया युग उपस्थित होता है। वेलग-छिया नाट्यशाला की स्थापना के साथ वगला रगमच वहुत लम्बी छलांगे भरने

लगता है। इस समय तक इस दिशा मे जो थोड़ा-बहुत काम हुआ था, वह समय को देखते हुए कुछ कम नही था, पर अब भी बंगला नाटक और रंगमंच की नैया मंझधार मे डगमगा रही थी। यह निश्चित नही था कि वह अपनी यात्रा में आगे बढ़ सकेगी या डूब जायगी, पर बेलगछिया नाट्यशाला की स्थापना के बाद बंगला रंगमच एक स्थायी संस्था के रूप में हो गया। पाइकपाड़ा के दो राजाओं ने बहुत खर्च करके रंगमंच का निर्माण करवाया। १८५८ के ३१ जुलाई को रात के साढ़े आठ बजे 'रत्नावली' नाटक आरंभ हुआ और साढे बारह बजे यह अभिनय समाप्त हुआ। इस नाटक पर दस हजार रुपये खर्च किये गए थे। सर फ्रेडरिक हेलीडे तथा कई अन्य अंग्रेज भी नाटक देखने आये थे। अभिनेता अच्छे घरानो के लोग थे। बाद को इनमे कई बहुत उच्च पदो पर पहुच गये। इस अवसर पर केशवचंद्र नामक एक अभिनेता को बहुत ख्याति प्राप्त हुई। इन्होंने विदूषक का पार्ट किया था। बाद को माईकेल मधुसूदन दत्त ने अपना एक नाटक 'कृष्णकुमारी' इसी केशवचंद्र को समर्पित किया था और उन्हें वह उस युग के सबसे बडे अभिनेता मानते थे। बाद को केशवचंद्र कंट्रोलर जनरल के दफ्तर मे सुपरिटेडेट हो गये।

बेलगछिया नाट्यशाला मे ही प्रथम राष्ट्रीय आर्केस्ट्रा या वाद्यवृंद का निर्माण हुआ, जो भारतीय वाद्य-यंत्रो पर आधारित था। 'रत्नावली' नाटक बारह रातो तक खेला गया। माइकेल मधुसूदन ने जो पाश्चात्य साहित्य, काव्य, नाटक आदि से भली-भांति परिचित थे, इसकी बहुत प्रशंसा की है।

'रत्नावली' के बाद मधुसूदन दत्त लिखित 'शर्मिष्ठा' नाटक इस रंगमंच पर खेला गया। कहा जाता है, जिस समय 'रत्नावली' के अभिनय की तैयारी हो रही थी, उस समय एक दिन मधुसूदन ने रिहर्सल देखकर कहा—"राजा लोग इतने रद्दी नाटक पर इतना पैसा खर्च कर रहे हैं। यदि मुझे मालूम होता तो मैं इस रंगमंच के योग्य कोई नाटक देता।" इसपर लोग उस समय हँसे थे पर बाद को उन्होंने बहुत जल्दी एक नाटक लिखा और १८५९ के ३ सितबर को उनका नाटक खेला गया। यह नाटक भी बहुत सफल रहा। लोगो ने इसकी बहुत प्रशंसा की। मधुसूदन संस्कृत नाटक से बिल्कुल ही हट गये थे। इसके बाद इस नाट्यशाला में अन्य अनेक नाटक खेले गये। स्वयं मधुसूदन ने 'पद्मावती', 'एके कि बोले सभ्यता', (क्या इसीको सभ्यता कहते है) 'बूड़ो

शालिकेर घाडेरो', (बूढे पर रंग छाया) इत्यादि नाटक लिखे। उनके नाटकों के संबंध मे 'कृष्णकुमारी' नाटक भी १८६० में रचा गया।

बंगला नाटक-साहित्य मे यह प्रथम दु.खात नाटक था। इस नाटक की वहुत प्रशंसा हुई। यहा यह वता दिया जाय कि कवि के रूप मे मधुसूदन का स्थान बंगला साहित्य मे वहुत ऊचा है, पर जैसा कि डा० दास गुप्त ने लिखा है, हमे यह भूलना नही चाहिए कि वह ही प्रथम सफल पौराणिक नाटक, प्रथम दुःखांत नाटक, प्रथम ऐतिहासिक नाटक तथा एक ऐसे प्रहसन के रचयिता, थे, जो अब भी ताजा वना हुआ है। उन्हीकी प्रतिभा के कारण वगला रगमंच अपने पैरो पर खड़ा हो गया।

जैसे राजा राममोहनराय आधुनिक वगला-साहित्य के जनको में थे, उसी प्रकार ब्राह्म समाज के एक दूसरे प्रमुख नेता भी वाद को वगला साहित्य के अन्यतम पुरोधा प्रमाणित हुए। यह वहुत कम लोगो को मालूम है कि वह एक अभिनेता भी थे। वे हैमलेट वनकर रगमच पर उतरे। यह अंग्रेजी मे खेला गया, पर वाद को उन्होने उमेशचंद्र मिश्र रचित 'विधवा-विवाह' नामक एक वगला नाटक मे (१८५६) हाथ वटाया था और उनका भाई इसका एक पात्र वना था।

दीनवधु-युग की झाकी

इसके वाद हम दीनवंधु-युग मे प्रवेश करते हैं। पर उसमे प्रवेश करने के लिए कुछ भूमिका की आवश्यकता है। आज वंगालियो मे कोई 'नील दर्पण' नाटक को नही पढता। मेरा आशय यहांपर उन लोगों को नहीं गिनना है जो परीक्षा पास करने के लिए या साहित्य के इतिहास मे गंभीर अध्ययन करने के लिए इस पुस्तक को पढते हैं। यह नाटक केवल साहित्य के इतिहास की दृष्टि से नही, हमारे राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से भी वहुत महत्वपूर्ण है। उसका महत्व कितना अधिक है, इसका इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि स्वय वकिमचंद्र ने इस पुस्तक को वंगाल का 'अकल टाम्स कैविन' वतलाया है।

यह नाटक नीलकोठी के साहवों के अत्याचारो के विरुद्ध लिखा गया था। यहां पर यह वताना आवश्यक है कि ये नील-कोठी के साहव कौन थे और नील कोठी क्या थी। आजकल तो सभी रंग रासायनिक है। पर पहले नील से ही

रंग बना करता था। मैं संक्षेप मे नील की खेती का इतिहास प्रस्तुत करता हूं, जिससे आलोच्य नाटक की पृष्ठभूमि समझ मे आ जाय।

जब अंग्रेज आये, उन्होंने बंगाल की जमीन को नील की खेती के उपयुक्त पाया। पहले-पहल कुछ किसानो को इसमें फायदा भी रहा। स्वयं राजा राममोहन राय ने १८२९ मे यह कहा था कि नील की खेती से किसानो को फायदा है। यदि किसानो पर ही इसका बोना-न बोना, और बोना तो कितना बोना, यह छोड दिया जाता तथा उन्हे अपनी उपज को स्वतंत्रतापूर्वक बेचने दिया जाता तो बात और होती।

पर यहा तो कुछ अंग्रेज कोठीवाले इसके एकाधिकारी हो गये और उन्होने मनमाने ढग से बर्ताव शुरू किया। यद्यपि ये अंग्रेज कोई सरकारी हैसियत नही रखते थे, तथापि अंग्रेज होने के कारण ही उन्हे मानो भारतीयों पर मनमाना करने का पट्टा मिला हुआ था। वे जो चाहे सो करते थे।

यो तो देखने मे एग्रीमेंट का रूप होता था, पर असल मे किसान को कोई स्वतंत्रता नही होती थी। नील की कोठी के कारिंदे जाकर प्रत्येक खेत पर निशान लगा देते थे कि इस खेत मे नील और इसमे धान बोया जायगा। किसान की क्या मजाल थी कि वह उसका उल्लघन करे।

नील कोठियो के साहबो का यह अत्याचार बीसियो वर्ष तक बंगाल में चला। एग्रीमेंट एक साल का होता था, पर असल मे आजीवन गुलामी का पट्टा लिखा जाता था। हर साल जब हिसाब होता था तो नील की गाडिया देने के बाद नील के किसानो के हिसाब मे कुछ भी नही निकलता था। नतीजा यह कि उन्हे और भी पेशगी लेनी पड़ती थी।

१६२२ में नील के साहबो के अत्याचारो के विषय में पहला उल्लेख 'समाचार चंद्रिका' और 'समाचार दर्पण' नामक बंगला अखबारो मे मिलता है। इसके बाद अक्षयकुमार दत्त ने 'तत्वबोधिनी' पत्रिका मे नील के किसानों पर अत्याचार के संबध मे लिखा था। अच्छी-से-अच्छी जमीन पर जबर्दस्ती नील की खेती कराई जाती थी।

किसी-किसी क्षेत्र मे दस साल के एग्रीमेंट का पता मिलता है। यह भी पता चलता है कि जब नील के किसान अत्याचारो के विरुद्ध विद्रोह करने लगे तो

इस वहाने अत्याचारो को वंद करने के वजाय अंग्रेज सरकार ने नील की कोठी के साहवो को मजिस्ट्रेटो के अधिकार दे दिये। जो लोग अग्रेजी साहित्य और अंग्रेजो की विज्ञाननिष्ठा को सामने रखकर साम्राज्यवाद के इन पहलुओ को भूल जाते हैं, वे ब्रिटिश शासन की असलियत को नही समझ पाते।

नील के साहवो को यह अधिकार तो पहले से मिला हुआ था कि वह किसानो को जब चाहे तव अपनी कोठी में कैद कर ले। नील के किसानो मे इससे वड़ा असंतोष फैला हुआ था। इनमे आंदोलन इस मात्रा तक पहुंचा था कि वड़े लाट लार्ड कैनिग १८५७ के विद्रोह से इसके सवव मे अधिक चितित थे। उन्होने लिखा है—"करीव एक हफ्ते तक मैं इतना उद्विग्न था कि मै दिल्ली के गदर के समय भी नही था, और मुझे डर था कि यदि इस समय किसी नील मालिक ने भय या मूर्खतावश एक गोली चला दी तो उससे सभव है कि वगाल के दक्षिणी हिस्से मे प्रत्येक कारखाने मे आग लग जाय।'

शायद इसी उद्विग्नता के कारण वगाल के लेफ्टिनेट गवर्नर सर जान पीटर नदी से वगाल के देहातो का दौरा करने लगे। १८६० के १७ दिसवर को उन्होने दौरे के वाद एक रिपोर्ट दी जिसमे उन्होने कहा कि मै "६०-७० मील तक भागीरथी तथा जमुना नदियो मे नाव के द्वारा दौरा करता रहा तो उसमे मैंने देखा कि यह ६०-७० मील का किनारा अर्जी देनेवाले किसानो से भरा हुआ था, यहातक कि गांव की औरते तक जमा थी, ऐसा मालूम होता है कि जो लोग वहापर अपनी फरियाद लेकर आये थे वे नदी के दोनो किनारो पर स्थित दूर-दूर के गावो से आये थे। मैं नही जानता कि आजतक किसी राज-कर्मचारी के भाग्य मे यह वात हुई कि नही कि लगातार १४ घटे तक दोनो किनारो पर खड़े अर्जी देनेवालो की कतारो के वीच से स्टीमर पर चले। सभी लोग वड़े अदव से माग रख रहे थे और यह स्पष्ट है कि वे जिस विपय को लेकर आये थे उसके सवव में वहुत गंभीर थे। यह सोचना वेवकूफी होगी कि जो यह दसियां हजार लोग आये थे, और जिनमे पुरुप, स्त्रियां तथा वच्चे थे, उसका कोई अर्थ नही है।"

इसके पहले ही १८५६ में ५० लाख नील के किसानो ने हड़ताल कर दी थी। इसीकी प्रतिध्वनि साहित्य मे 'नील-दर्पण' नाटक के रूप मे हुई। इसे क्यो वकिमचद्र ने वंगला का 'अंकल टाम्स कैविन' वतलाया, यह पहले जो कुछ

लिखा गया उससे स्पष्ट हो गया होगा।

वंकिमचंद्र ने लिखा—"दीनबंधु मित्र को समाज के संबंध मे अद्भुत ज्ञान था और उनमे प्रवल सहानुभूति थी। इन्हीके कारण वह नाटक लिखने की ओर अग्रसर हुए। जिन इलाको मे नील पैदा होता था, उनमें वे खूब घूमते रहते थे। वे अपने ही तजर्वे से जानते थे कि प्रजा पर किस प्रकार का अत्याचार हो रहा है। उनको इस प्रजा-पीड़न के संबध में जितनी जानकारी थी, इतनी और किसीको नही थी। अपनी स्वाभाविक सहानुभूति के कारण उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उन्होने ही उन दु.खो को झेला हो। इसीलिए उन्होंने अपनी कवित्वपूर्ण लेखनी से यह दुख-गाथा तैयार की। 'नील दर्पण' वगाल की 'टाम काका की कुटिया' है। टाम काका की कुटिया ने अमरीका के हब्शियो को गुलामी से मुक्त किया। उसी प्रकार से 'नील दर्पण' नील के गुलामो की गुलामी को मिटाने में वहुत कार्य कर सका।"

हम पहले यह बता दे कि यह पुस्तक किस प्रकार एक भयंकर राजनैतिक अस्त्र के रूप मे हो गई। इस पुस्तक का अनुवाद अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ। इससे इतना तहलका मचा कि इसके प्रकाशक पादरी जेम्स लेग पर मुकद्दमा चला और उन्हे एक महीने की कैद तथा एक हजार रुपये जुर्माना किया गया। शासक वर्ग के इस क्रोध का यह रूप विशेष ध्यान देने योग्य है कि इस पुस्तक के मूल लेखक को कोई सजा नही दी गई। अंग्रेजी मे 'नील दर्पण' के प्रकाशन से सरकार रुष्ट इस कारण हुई कि इससे शासक वर्ग के ढोंग में वाधा पडती थी। यहां फिर एक वार हम ब्रिटिश न्याय और अंततोगत्वा सब न्यायो के वर्ग-चरित्र को देख ले।

जिस मधुसूदन दत्त नामक व्यक्ति ने 'नील दर्पण' का अनुवाद किया था, उसे भी सजा दी गई। फिर भी आदोलन चलता रहा। मैं यहा अपने 'राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास' से उद्धृत करता हूं—"आदोलन ने इतना ज़ोर पकड़ा कि सरकार ने एक नील कमीशन वैठाया, पर इस कमीशन ने कोई अच्छी सिफारिश नही की। कमीशन ने उलटा यह कहा कि नील की खेती होनी चाहिए। साथ ही उन्होंने नील के किसानो के दुखो को दूर करने के लिए कोई अच्छी सिफारिश नही की। सच तो यह है कि जबतक जर्मनी ने वैज्ञानिक ढंग से नील उत्पादन नही किया तबतक नील की खेती चलती रही। भारतवर्ष मे उस समय

कोई नेता ऐसा उत्पन्न होता जो नील के किसानो के आंदोलन को १८५७ के विद्रोह के साथ सयुक्त कर देता तो इसमें संदेह नही कि भारतीय इतिहास कुछ दूसरा ही होता ।"

जो हो, नील के किसानो के विषय को लेकर एक नाटक लिखना बड़े साहस और सूझ की बात थी। इसलिए इसमें आश्चर्य की बात नही कि दीनबंधु इस नाटक को लिखकर बहुत प्रसिद्ध हुए और उनका नाटक जनप्रिय हुआ ।

दीनबंधु का जन्म बंगला के १२३८ मे नदिया जिले के चंवेरिया गांव मे हुआ । उनके पिता का नाम कालाचांद मित्र था । बचपन मे हेयर स्कूल का छात्र रहते समय ही उन्होंने बंगला लिखना आरंभ कर दिया था। वह ईश्वर गुप्त के अनुयायी थे । ऐसा समझा जाता है कि उनकी पहली रचना 'मानव चरित्र' नामक एक कविता थी, जो ईश्वर गुप्त सपादित 'साधुरजन' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी । इसके बाद तो वह बराबर कुछ-न-कुछ लिखते रहे । उनकी एकाध रचनाएं इतनी प्रसिद्ध हुई कि जिस सख्या मे वे छपी, पत्रिका की उस संख्या को फिर से छापना पड़ा ।

दीनबंधु ने जीवन को बहुत पास से देखा था । डाक-विभाग मे एक मामूली बाबू के रूप मे भर्ती होकर वह उस विभाग के एक बड़े अफसर हो गये थे और इस नाते उन्हे मणिपुर से गंजाम और दार्जिलिग से समुद्र तक बार-बार जाना पड़ता था । इसके अलावा उनमे यह आदत थी कि वह जहापर भी दौरे पर जाते, वहा सरकारी काम समाप्त कर हरेक से मिलते थे। इस कारण हम यह देखते है कि उनकी रचनाओ मे छोटे-से लेकर बडे तक सबके जीवन से वे बखूबी परिचित थे।

जब उनका 'नील दर्पण' नामक नाटक प्रसिद्ध हुआ तो वह एक पार्टी में बैठे हुए थे । किसीका परिचय अभी नही कराया गया था । उस पार्टी मे नील कोठी का एक बंगाली कारिंदा भी था । किसी प्रकार से 'नील दर्पण' नाटक पर उसकी नजर पहुची । इसपर उस कारिंदे ने कहा—"साले ने हूबहू नील की कोठी मे जैसे जो कुछ होता है, वैसा ही लिख दिया है । मालूम होता है जैसे हमारा कोई कर्मचारी ही लेखक है ।"

दीनबंधु ने यह बात सुनी तो वह हँसे । उधर मेजबान ने झेंपते हुए दीनबंधु

का परिचय लोगो से कराया। तव वह कारिंदा दीनवंधु से माफी मागने लगा। इसपर दीनवंधु वोले—"आपके शब्द चाहे जैसे भी हो, पर आपने जैसी प्रशंसा मेरी की है, वैसी आजतक किसीने नही की।"

दीनवंधु के नाटक की इस वस्तुवादिता के कारण ही उनके नाटक मे वह गुण आ गया, जिससे वह उस युग मे प्रसिद्ध हुए।

संक्षेप मे नाटक की कथावस्तु यो है .

गोलोकचद्र और उनके नौकर साधु मे वातचीत हो रही है। साधु यह कह रहा है कि अव इस देश को छोड देना चाहिए, पर गोलोक कह रहा है—यहा हमारे सात पुरखे रहते आये है। जो धान पैदा होता है, उससे साल भर चलता है, अतिथि-सेवा होती रहती है और पूजा भी होती है। जो सरसो होती है, उससे तेल मिलता है, और साठ-सत्तर वच जाते है। खेत का चावल, खेत की दाल, वाग से तरकारी और पोखरे से मछली मिलती है। ऐसे देश को कैसे छोड़ा जाय ?

साधु ने कहा—पर अव तो ये वाते जाती रही। नील के साहवो के मारे अव तो नील वोना पडता है। उसका भी पैसा मिल जाता तो ठीक रहता।

दूसरे गर्भांक मे भी किसान आपस मे वात कर रहे है कि नील की खेती के मारे सवकी आफत है। किसान आपस मे कह रहे है कि गाय-बैल वेचकर गाव छोड़कर भाग चला जाय। वात यह है कि किसानो की सारी जमीन पर नील की खेती होने लगी थी।

वे वात ही कर रहे थे कि इतने मे अमीन और प्यादे आकर उन किसानो को वाधने लगे।

तीसरे गर्भांक मे मिस्टर उड अपने दीवान को इसलिए डाट रहा है कि वह अधिक अत्याचार नही कर रहा है। साहव कह रहा है—तुम साले डरपोक हो, नालायक हो, तुम डर गये हो, तुम घवड़ाते हो।

इसपर दीवान कह रहा है—हुजूर, जव मैंने यह ओहदा लिया तो डर कैसा ? मैंने तो डर, लज्जा, मान, मर्यादा सवकी तिलाजलि दे दी। गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या, स्त्री-हत्या, घर मे आग लगाना यह सव तो मेरे लिए अग के आभूषण हो गये हैं। जेलखाना तो मेरे सिर पर नाचता रहता है।

इसपर साहव ने कहा—मैं वात नहीं मांगता, काम मागता हूं।

इतने मे वे ही दो किसान वधकर आते है। दीवानजी को तो खैरख्वाही दिखानी थी, वे इनपर वहुत विगड़ते हैं। कहते हे—सुना है, तुम साहव को कैद करना चाहते हो।

इसपर वह किसान प्रतिवाद करता है। तव दीवानजी कहते हैं कि गांव मे स्कूल वना है, इसीसे राज्य-द्रोह फैल रहा है। साहव कहते है कि मैं स्कूल वंद करा दूगा। इसके अलावा वह और भी विगड़ते है।

दीवानजी कहते हैं—हुजूर, यह नीलवाले खेत मे खेती नही कर रहा है। साले ने लेने को तो पेशगी के रुपये ले लिये, पर कहता है कि नील की खेती मुझसे नही होती। कहता है कि वक्त नही है।

इसपर उडसाहव आपे से वाहर होकर कहते हैं—साला वड़ा हरामजादा है। पेशगी तू लेगा, और खेती मै करूं? साला वडा हरामी है (जूते की ठोकर मारना), अभी तेरी मुलाकात श्यामचाद से करता हूं।

साहव ने अपने डंडे का नाम श्यामचाद रखा था। उसे उतारकर साहव मारना शुरू करते हैं और किसान जोर-जोर-से चिल्लाता है। इसपर साहव पराक्रम दिखलाने के लिए व्लाडी, निगर तथा मां-वहन की गालिया देते हैं।

इसी प्रकार से यह नाटक चलता जाता हे। व्रिटिश साम्राज्यवाद का नग्न रूप सामने आ जाता है। हमने पहले ही वतलाया कि अव यह नाटक न तो पढा जाता और न खेला जाता है, फिर भी इस नाटक के अंदर भारतीय इतिहास का एक अध्याय निहित है। इस नाटक को वगला साहित्य और साथ-ही-साथ भारतीय इतिहास का एक क्रोशशिला कहा जा सकता है। सच तो यह है कि इतिहास की किसी पुस्तक मे नील की कोठियो मे साहवो के देशव्यापी अत्याचार की कहानी इतने अच्छे ढंग से नही लिखी गई है।

दीनवंधु मित्र ने 'नील दर्पण' के वाद 'सधवार एकादशी' (सधवा की एकादशी), 'नवीन तपस्विनी', 'कमले कामिनी' (कमल मे कामिनी), 'विये पागला वुडो' (व्याह करने के लिए पागल वूढा) आदि नाटक लिखे, जो वहुत सफल हुए। वाद में इन नाटको का कई वार उल्लेख आयेगा।

: ६ :

ईश्वरचंद्र विद्यासागर

बंगला भाषा के इतिहास मे ईश्वरचंद्र विद्यासागर (१८२०-९१) का स्थान बहुत उच्च है। १८४७ मे उनकी लिखी हुई 'वेताल पंचविंशति प्रकाशित हुई। इसमे बंगला भाषा जडता छोडकर सुदर प्रवाहमही शैली मे प्रकट हुई। विद्यासागर ने बंगला गद्य को पहले की तुलना मे बहुत आगे बढाया। प्रथम संस्करण में अर्द्ध-विराम चिह्न का प्रयोग बहुत कम था, पर अगले संस्करण मे इसका प्रचुर प्रयोग किया गया।

कवींद्र रवींद्र ने विद्यासागर की सेवाओं का वर्णन करते हुए लिखा था—"बंगला भाषा को पूर्व-प्रचलित अनावश्यक समास के आडंबर से मुक्त करके उसके पदो के बीच के अंशों को युक्त करने का सुनियम स्थापित करके विद्यासागर ने बंगला गद्य को केवल सबके व्यवहार के योग्य बनाया, ऐसी बात नही, उन्होंने उसे सुदर बनाने का भी निरंतर प्रयास किया। गंवारू पंडिताई और गंवारू बर्बरता दोनो के हाथ से उद्धार कर उन्होंने इसे संसार की भद्र सभा की उपयुक्त आर्य भाषा के रूप मे प्रस्तुत किया।"

ऐसी किंवदंती है कि विद्यासागर ने 'वेताल पंचविंशति' के पहले फोर्ट विलियम कालेज की पाठ्यपुस्तक के रूप मे 'वासुदेव चरित' की रचना की थी। डा० सेन लिखते हैं कि शायद यह पुस्तक लल्लूजीलाल के 'प्रेमसागर' नामक हिंदी ग्रंथ के आधार पर लिखी गई थी। यदि बात सच है तो डा० सेन की इस संबंध में कही हुई दूसरी बात याने यह कि कृष्ण-चरित होने के कारण ही फोर्ट विलियम के अधिकारी वर्ग ने इसे मजूर नही किया, कुछ ठहरती नही है, क्योंकि प्रेमसागर तो फोर्ट विलियम कालेज के लिए लिखा गया था और छपा भी था। रही 'वेताल पंचविंशति' सो इसमें संदेह नही कि वह प्रसिद्ध हिंदी पुस्तक 'वेताल पचीसी' पर आधारित थी। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण मे लेखक का नाम नहीं दिया गया था, केवल इतना ही लिखा था—'कालेज ऑव फोर्ट विलियम नामक विद्यालय के अध्यक्ष श्रीयुत् जी० टी० मार्शल महोदय के आदेश से प्रसिद्ध हिंदी पुस्तक के अनुसार लिखित।' पुस्तक ने यह भी लिखा था—

"जो लोग इसे खरीदना चाहे, वे कालेज ऑव फोर्ट विलियम के बंगला सरिश्ते-दार श्रीयुत् दीनबंधु न्यायरत्न भट्टाचार्य के पास खोज करने पर पा सकेंगे, मूल्य तीन रुपये।" यह दीनबंधु महोदय विद्यासागर के छोटे भाई थे।

विद्यासागर ने मार्शमैन के ग्रंथ का आधार लेकर 'बांगलार इतिहास' लिखा (१८४७-४८), 'चेंबर्स' का आधार लेकर १८४६ में 'जीवन-चरित' नामक पुस्तक लिखी। विद्यासागर ने महाभारत का अनुवाद भी शुरू किया था, पर जब कालीप्रसन्न सिंह ने यह कार्य उठा लिया तो उन्होने इस कार्य से हाथ खीच लिया। इसके बाद उन्होने १८५१ मे 'बोधोदय' लिखा, जो लगभग एक सौ वर्ष तक पाठ्यपुस्तक का गौरव प्राप्त किये रहा। पहले बत्तीस साल मे इसके ८१ संस्करण छपे। इसी प्रकार इन्होने और भी बहुत-सी पुस्तके लिखी।

बाद मे उन्होने ज्ञान-विज्ञान तक अपनेको सीमित न रखकर समाज-सुधार पर भी कई पुस्तके लिखी। दो पुस्तको मे (१८५५) उन्होने विधवा-विवाह का समर्थन किया। १८७१ और १८७३ मे उन्होने बहु-विवाह के विरुद्ध दो खडो मे एक पुस्तक लिखी। राजा राममोहन के बाद जिन लोगों ने समाज-सुधार का कार्य उठाया, उनमे उनके बाद विद्यासागर का ही नाम आता है। ऐसा अनुमान है कि जो रचनाए विद्यासागर के नाम से प्रचलित है, उनके अलावा भी उन्होने कुछ पुस्तकें लिखी थी। इनमे कई पुस्तिकाएं तो उन पंडितों पर व्यग करते हुए लिखी गई थी, जिन्होने विधवा-विवाह का विरोध किया था।

यद्यपि विद्यासागर ने बगला भाषा की जो सेवा की, वह बहुत ही सराह-नीय थी, फिर भी उस समय बहुत-से लोगो ने उनका विरोध किया और उन-की सेवाओ को विशेष महत्व देने से इंकार किया।

सबसे आश्चर्य की बात है कि बकिमचद्र ने नाम देकर और गुमनाम रूप से उनकी सेवाओ को तुच्छ प्रमाणित करना चाहा। उनका मुख्य वक्तव्य यह था कि विद्यासागर ने या तो संस्कृत से अनुवाद किया या अग्रेजी से, इस कारण उन्हे मौलिक लेखक का सम्मान नही मिलना चाहिए। पर यह बात सही नही है। विद्यासागर ने जिन पुस्तकों का अनुवाद भी किया, उनका आक्षरिक अनु-वाद नही किया। उन्होने अपने ढंग से उसी बात को लिखा। डा० सुकुमार सेन ने बकिमचंद्र के विद्यासागर-विरोधी मतव्यो पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि बंकिमचंद्र विद्यासागर के यश के प्रति कुछ ईर्ष्या की भावना रखते थे,

तभी उन्होंने ऐसा लिखा है। "वंकिमचद्र स्वय कभी कवियशः प्रार्थी नही थे, इस कारण वह अपने समसामयिक कवियो की प्रशंसा करते हुए कुंठित नही होते थे, पर समसामयिक शक्तिशाली गद्य लेखको के प्रति वे कई बार अन्याय कर गए।"[1]

अन्य समसामयिक सुलेखक

इस युग के उल्लेखनीय कवियो मे भूदेव मुखोपाध्याय थे। १८५६ मे उनकी पहली पुस्तक 'शिक्षा-विषयक प्रस्ताव' प्रकाशित हुई। १८५८ मे 'पुरातत्व सार' नामक उनकी इतिहास-सवधी पुस्तक प्रकाशित हुई। उन्होने कई पाठ्यपुस्तके भी प्रस्तुत की। १८५७ मे 'ऐतिहासिक उपन्यास' नाम से उनकी दो ऐतिहासिक आख्यायिकाएं प्रकाशित हुई। ये आख्यायिकाए अंग्रेजी के आधार पर लिखी गई थी। पर भूदेव का महत्व उनके लिखे हुए उपन्यासो के कारण नहीं (यद्यपि यह कहा जाता है कि उनके उपन्यास 'अंगुरीय विनिमय' की शैली पर ही वंकिमचद्र ने 'दुर्गेशनदिनी' नामक अपना पहला उपन्यास लिखा था) और न उनकी लिखी हुई पाठ्यपुस्तको के कारण है, उनका महत्व तो उनके विचारोत्तेजक निबंधो के कारण है। 'आचार प्रबंध', 'पारिवारिक प्रवध', 'सामाजिक प्रबंध', 'विविध प्रबंध' और 'पुष्पाजलि' नाम से उनके कई निवध-संग्रह निकले, जो विशेष क्रांतिकारी न होते हुए भी विचारोत्तेजक थे। जिस देश मे तर्क का इतना पतन हो गया था कि उसका अर्थ केवल शास्त्रार्थ' निर्णय करना रह गया था, वहा ये निवध एक नई दिशा की ओर संकेत कर रहे थे।

पहले ही देवेंद्रनाथ ठाकुर (१८१७—१९०५) का उल्लेख किया जा चुका है। वह 'तत्व-वोधिनी पत्रिका' के संस्थापक और उसके एक प्रधान लेखक थे। उनकी शैली वहुत सरल इसलिए थी कि उन्हे कुछ विचारो का प्रचार करना था, इस कारण वह सरल भाषा को तरजीह देते थे। वह धर्म पर ही लिखते थे। हा, उन्होने एक आत्मकथा लिखी है, जो बगला भाषा की एक श्रेष्ठ पुस्तक है। यह पुस्तक १८९८ मे प्रकाशित हुई थी। देवेंद्रनाथ ठाकुर तथा उनके ब्राह्म-समाज के साथियो को बंगला भाषा की एक और सेवा करने का गौरव प्राप्त

[1] बांगला साहित्ये गद्य, पृ० ६८

है। वह यह कि उन्होने वगला भाषा मे व्याख्यान देकर उसे व्याख्यानोपयोगी वनाया। इससे भी वडी सेवा देवेंद्रनाथ ठाकुर की यह थी कि उन्होने उस वातावरण को तैयार करने मे हाथ वटाया, जिसमे आगे चलकर वहुत वडे-वडे लेखक उत्पन्न हुये।

इन दिकपालो के अतिरिक्त वहुत-से साधारण लेखक वगला भाषा की सेवा मे तत्पर रहे और अंगेजी तथा संस्कृत से वहुत-सी पुस्तको का अनुवाद हुआ। ऐसे लोगो मे कई विद्यासागर के शिष्य थे, कई 'तत्व वोधिनी पत्रिका' से प्रभावित थे और कई स्वतंत्र कार्यकर्ता भी थे। इस इतिहास को उनके नाम गिनाकर भाराक्रात करने की कोई आवश्यकता नही मालूम होती।

भाषा की उन्नति मे साथ-साथ उसमे लेखिकाओ का होना स्वाभाविक है। डा० सुकुमार सेन के अनुसार १८५७ मे 'चित विलासिनी' नाम से जो पुस्तक प्रकाशित हुई थी, वही आधुनिक काल मे महिला रचित प्रथम वगला पुस्तक है। लेखिका का नाम **कृष्णकामिनी दासी** वताया गया था। इस पुस्तक मे वंगाल की कुलीन प्रथा की निदा की गई थी। ऐसा सदेह किया जाता है कि कृष्णकामिनी दासी संभव है कि कोई महिला न हो, वल्कि किसी पुरुष का छद्म नाम हो। पुस्तक मे गद्य-पद्य दोनो थे।

१८६३ मे **कैलाशवासिनी देवी** ने 'हिंदू महिला गणेर हीनावस्था' प्रकाशित की। इनकी और भी दो पुस्तके प्रकाशित हुई। इसके वाद कई और लेखिकाएं सामने आई।

सौदामिनीसिंह ने १८६६ के प्रारंभ मे 'एकजन-ब्रह्मवादिनीर युक्ति' नाम से एक पुस्तक छपवाई। **कामिनी सुंदरी देवी** वंगला की प्रथम महिला नाट्यकार हैं। उन्होने 'उर्वशी' नाम से एक नाटक लिखा था। **दयामयी देवी** ने १८६९ मे 'पतिव्रता धर्म' नाम से एक पुस्तक लिखी।

उन्नीसवी शताब्दी मे महिला लेखिकाओ द्वारा लिखित रचनाओं मे **श्रीमती रामसुंदरी** लिखित 'आमार जीवन' एक उल्लेखनीय पुस्तक है। लेखिका ने पहले साठ वर्ष तक की अपनी मानसिक तथा शारीरिक अवस्था पर सारा वृत्तात लिखा। वाद मे जव उनकी उम्र ८८ साल की हो गई, तव उन्होने वाद २५ वर्षो का इतिहास लिखकर पहली पुस्तक मे जोड़ दिया। यह [illegible] पद्यमय है। पद्य उन्हीका लिखा हुआ है। वड़ी सरलता और सा[illegible]

जीवन की छोटी-छोटी घटनाए लिखी गई हैं। उस समय के समाज के बहुत छोटे-छोटे चित्र इस पुस्तक मे एकत्र किये गए है। लेखिका उच्च शिक्षिता नही थी। अपनी चेष्टा से ही उन्होने लिखना-पढ़ना सीखा था। घर बहुत बडा था और बच्चे भी बहुत-से थे, फिर भी उन्होने पहले पोथी पढ़ना, फिर छपी हुई पुस्तक पढना और उसके बाद लिखना सीखा था। इस पुस्तक का साहित्यिक महत्व शायद अधिक न हो, पर उस युग के सामाजिक इतिहास के एक उत्सग्रंथ के रूप में यह पुस्तक बहुत ही महत्वपूर्ण है।

: १० :

युगप्रवर्तक बंकिमचंद्र

बगला के प्रथम सफल उपन्यासकार बंकिमचंद्र थे, इसी हैसियत से उन्होने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। वह मुख्यत ऐतिहासिक उपन्यासकार ही समझे जाते हैं, क्योकि उनके अधिकांश उपन्यासों मे कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक व्यक्ति पात्र-पात्री के रूप मे हैं, किंतु स्मरण रहे कि केवल दो-चार ऐतिहासिक व्यक्ति को पात्र बनाकर खड़ा कर देने से ही कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार नही हो सकता। इसके लिए सबसे आवश्यक बात है कि उस समय के वातावरण की सृष्टि की जाय, चाहे पात्र एक भी इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति न हो। इस दृष्टि से जाच की जाय तो मृणालिनी, दुर्गेशनंदिनी, चंद्रशेखर तथा कपालकुण्डला को ऐतिहासिक उपन्यास नही कहा जा सकता। राजसिंह करीब-करीब ऐतिहासिक उपन्यास हो गया है, यद्यपि उसमे इतिहास के साथ काफी मनमानी की गई है। सर वाल्टर स्काट ने अपने उपन्यासों में घटनाओ के क्रम में बहुत गलती की है, फिर भी वह ऐतिहासिक आबोहवा पैदा करने की सामर्थ्य के कारण ऐतिहासिक उपन्यासकार माने गये हैं।

उपन्यासकार बंकिम से धर्मतात्विक बंकिम इतने दब गये कि बहुत-से लोग तो जानते ही नही कि बंकिम ने धर्मतत्व पर भी अपनी लेखनी चलाई है, किंतु उनकी अपनी दृष्टि में उन्होंने धर्मतत्व पर एक नवीन विश्लेषणात्मक पद्धति

से जो कुछ लिखा है वह अधिक महत्वपूर्ण था। इसमे संदेह नही कि उनके युग को देखते हुए उनके धर्मतात्विक मत भी क्रांतिकारी नहीं तो प्रगतिशील थे। उन्होंने समाज के रथ को गतानुगतिकता के कीचड़ से निकालकर वुद्धिवाद के राजमार्ग पर चढाने की चेष्टा की, यद्यपि वह स्वय सोलहो आने वुद्धिवादी थे, ऐसा आज कहना कठिन है। फिर भी वह प्रगतिशील थे, इसमें संदेह का अवकाश नही। उन्होने लिखा था, "तीन-चार हजार वर्ष पहले भारतवर्ष के लिए जो कायदे-कानून वने थे, आज उनको हरफ-व-हरफ मानकर चलना संभव नहीं। वह ऋषि स्वयं यदि आज मौजूद रहते तो कहते, 'नही, ऐसा नहीं हो सकता, यदि तुम हमारी विविध-व्यवस्थाओ को पूर्ण रूप से कायम रखकर चलो तो उससे हमारे धर्म के मर्म का विरुद्धाचरण ही होगा।' हिंदू-धर्म का वह मर्म भाग अमर है, हमेशा रहेगा और मनुष्यों का उससे कल्याण ही होगा, क्योकि मनुष्य-प्रकृति मे ही उनकी नीव है। सभी धर्मो मे विशेष विधियां सामयिक ही होती है। वे समय-भेद के अनुसार परिहार्य तथा परिवर्तनीय हैं।"

वंकिमचंद्र के धर्मतत्व की मैंने अवतारणा इसलिए की कि उनकी साहित्य-साधना धर्मानुशीलन से विल्कुल भिन्न पर्याय की वस्तु नही थी। यदि वे प्रत्यक्ष रूप से स्वजाति, स्वदेश तथा स्वसमाज से अपने साहित्य की प्रेरणा प्राप्त करते थे तो परोक्ष रूप से मनुष्य को अदृष्ट तथा मनुष्यता के आदर्श की खोज से ही उन्हे प्रेरणा मिलती थी।[1] वंकिमचंद्र साहित्य मे आदर्शवादी थे। उन्होने लिखा है, "काव्य का मुख्य उद्देश्य नीतिज्ञान नही है, किंतु नीतिज्ञान का जो उद्देश्य है काव्य का भी वही उद्देश्य है, याने चित्तशुद्धि।" उन्होंने उत्तरचरित की समालोचना करते हुए और भी लिखा है, "जो लोग कुकाव्य निर्माण कर दूसरे के चित्त को कलुषित करने की चेष्टा करते हैं, वे चोरों की तरह मनुष्य-जाति के शत्रु है और उनको चोरों की तरह शारीरिक दंड दिया जाना चाहिए।"

ऊपर के उद्धरणो से स्पष्ट है कि वगला के प्रथम दिग्विजयी उपन्यासकार साहित्य मे किस मत को लेकर चलने के पक्षपाती थे, किंतु सौभाग्य से वह उपन्यास लिखते समय हमेशा अपने इस मत को स्मरण मे न रख सके। जिसे वह कला समझते थे, उन्ही सामाजिक शक्तियो ने उन्हें डिगा दिया, और उन्हे वहुत-कुछ

[1] आधुनिक बंगला-साहित्य—श्री मोहितलाल मजुमदार

वास्तविकता से बाँध रक्खा। अवश्य यह भी है कि अंत तक चलकर उन्होने खीच-खाचकर अपने आदर्श को निभा ही दिया। उपन्यासो की भलाई के हक मे एक और भी अच्छी बात हुई, वह यह कि बंकिमचंद्र के सामने उपन्यास के आदर्श के रूप मे अंग्रेजी के रोमांटिक लेखको की रचनाए थी। बंगला के सुप्रसिद्ध आदर्शवादी कवि-समालोचक श्री मोहितलाल ने बंकिमचंद्र के उपन्यासो की इस प्रकार से संक्षिप्त आलोचना की है .

"उनके पहले उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' मे साहित्यिक प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ भी नही था। 'दुर्गेशनंदिनी' बंगला का पहला रोमांस है, जो अंग्रेजी रोमांसो के सुपरिचित आदर्श पर लिखा हुआ है। 'मृणालिनी', 'युगलांगरीय' 'राधा-राणी' भी इसी एक ही आदर्श पर रचित है। हा 'मृणालिनी' की कल्पना मे देश-प्रेम ने पहले-पहल प्रवेश किया है। उनके द्वितीय उपन्यास 'कपालकुण्डला' को उत्कृष्ट काव्य कहा जा सकता है। चौथा उपन्यास 'विषवृक्ष', 'चंद्रशेखर' और 'कृष्णकान्तेर विल' समाज-समस्या और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लिखे गये थे। 'आनन्दमठ' और 'राजसिंह' मे देश-प्रेम की प्रधानता है, 'देवी चौधुरानी' तथा 'सीताराम' मे धर्म समस्या प्रबल है, 'रजनी' मे निरा मनोविज्ञान तथा 'इंदिरा' मे गल्प-रचना का ही आनन्द है। देखा गया कि विशुद्ध उपन्यास अर्थात् जिनमे समाज-नैतिक तथा धर्म-नैतिक कोई उद्देश्य नही है उनकी संख्या बहुत कम है, ऐसी रचनाओं मे 'कपालकुण्डला' सबसे सुन्दर कृति है। जिनमे स्वदेश, समाज, धर्म या नीति से प्रेरणा ली गई है उनमें जगह-जगह पर कल्पना की चरम स्फूर्ति हुई है, चरित्र की महिमा तथा घटना-विन्यास की चतुरता के कारण वह नाटकीय सौंदर्य से मंडित हो गये है। समस्या की खीचातानी मे बहुत-सी भयंकर त्रुटिया रहने पर भी बंकिम की जो कुछ सृजन-शक्ति है उसने मानो इन्ही समस्याओ के घात-प्रतिघात मे पड़कर पत्थर पर घिसे हुए इस्पात के फले की तरह चिनगारियों की वर्षा की है।"

बंकिमचंद्र ने यूरोप के रोमांचिक शैली के पौधे को भारत में लाकर स्थापित ही नही किया, बल्कि उसको संपूर्ण रूप से यहा की आबोहवा का अभ्यस्त (Acclimatise) करके यही की मिट्टी से रस ग्रहण कर पल्लवित-पुष्पित होना सिखलाया। इसमे कोई सन्देह नही कि बंकिम यूरोपीय साहित्य के ऋणी है, किन्तु इस ऋण के परिमाण के संबंध में लोगो का ज्ञान अक्सर अतिरंजित है। एक

विद्वान् लेखक श्रीकुमार वनर्जी का कथन है कि इस वात का कोई प्रमाण नही कि वंकिम जेन अस्टेन, डिकेस, थैकरे तथा जार्ज इलियट से परिचित थे। हां, स्काट के साथ उनका परिचय नि.सदेह है। उनके एक उपन्यास में लार्ड लिटन की छाया भी है, किन्तु "उनकी कला सपूर्ण रूप से मौलिक है और इन दिग्गजो का अनुकरण-मात्र नही।" हमने जो उपमा इस पैरे के प्रारम्भ मे दी है वह विल्कुल सत्य है, उन्होने पाश्चात्यो से यह तो सीखा कि उपन्यास का स्वरूप तथा ढांचा कैसा होना चाहिए, किन्तु इसके अलावा उनके उपन्यासो का माल-मसाला सभी स्वदेशी है। वंकिम से पौराणिक-क्लासिक साहित्य युग का अवसान होकर आधुनिक वगला साहित्य का सूत्रपात होता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया, वह उपन्यासकार वंकिम के वारे मे ही है, पर वंकिम एक राष्ट्र-निर्माता भी थे, यह उनके दो उपन्यासों 'देवी चौधुरानी' और 'आनदमठ' से विशेषकर 'आनंदमठ' से प्रमाणित होता है। ये उपन्यास-कला की दृष्टि से वहुत उच्चकोटि के नही है, फिर भी इनमे लेखक ने एक नया तत्व पेश किया। 'आनदमठ' के सत्यानंद तथा 'देवी चौधुरानी' के भवानीपाठक एक विराट आदर्श को लेकर चलते है। इन दोनो मे जिस प्रकार देशभक्ति, राजनैतिक दूर-दृष्टि तथा संगठन-शक्ति दिखाई गई है, वह देखने में किसी प्राचीन युग के चित्र हैं, पर वास्तव मे लोगो के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते है। जिस युग का चित्रण इन दोनो पुस्तकों मे किया गया है, उसमे इस प्रकार की देशभक्ति आदि की भावना नही थी।

इस प्रकार वकिम ने इतिहास के नाम पर या यो कहा जाय तो अधिक अच्छा होगा कि ऐतिहासिक कहानी की आड में एक राजनैतिक आदर्श लोगो के सामने रक्खा। यह कितनी वडी वात थी, इसे आज अच्छी तरह समझने और उसके मूल्याकन करने का समय आ गया है। अवश्य ही 'आनदमठ' या 'देवी चौधुरानी' को इस अर्थ मे ऐतिहासिक उपन्यास कहना उचित न होगा कि उनमे किसी ऐतिहासिक काल का वर्णन दिया गया है। यह तो पहले ही वताया जा चुका है कि जिस आदर्श को जिस काल के माथे मढ़कर पेश किया है, उस काल मे वह आदर्श संभव नही था।

उस समय वंगाल वल्कि सारा भारत क्षुद्र स्वार्थो के पीछे दौड़ रहा था, कोई सामूहिक भावना नही थी। पुराना साम्राज्य विखर चुका था। यद्यपि यह

साम्राज्य नाम के लिए मुगल साम्राज्य था, तथापि छोटे-छोटे मुसलमान सामन्त इसके सबसे बड़े दुश्मन साबित हुए। ऐसे समय मे बस एक आदर्श था, वह यह कि आगे आप, फिर बाप। सच तो यह है कि लोग अपने-आपको सम्हालने मे इतने लगे हुए थे कि वे किसी बृहत्तर बात के लिए समय या कर्म-शक्ति नही लगा सकते थे।

इस सर्वव्यापी बिखराहट के समय बंकिमचंद्र ने 'आनंदमठ' में संतान सम्प्रदाय की आदर्श निष्ठा रखी। संतान सम्प्रदाय की कुछ ऐतिहासिक नींव है, पर उसके नाम से जो देश-प्रेम, आदर्शवाद, निस्स्वार्थ भावना आदि दिखलाई गई हैं, वह उपन्यासकार बंकिमचंद्र को ऋषि बंकिमचंद्र, बल्कि और भी स्पष्ट शब्दो मे कहा जाय तो राष्ट्रनिर्माता बंकिमचंद्र की, मर्यादा प्राप्त होती है। इतिहास में संतान संप्रदाय का जो चित्र मिलता है, उसमे उसके लोग लूट-खसोट करते हुए, अराजकता फैलाते हुए पाये जाते है। इस प्रकार लूट-खसोट करने के पीछे राजनैतिक उद्देश्य स्पष्ट नही था। हां, यह कहा जा सकता है कि असंतोष प्रकट करने का यह एक उपाय था।

पर बंकिमचद्र ने 'आनद मठ' मे सतान सम्प्रदाय को एक आदर्शवादी सुसंगठित दल के रूप मे दिखलाया है। बंकिमचंद्र ने सतान सम्प्रदाय का संबंध उसके पहले जो महान् दुर्भिक्ष हुआ था, उससे जोडकर यह दिखलाया कि दुर्भिक्ष के कारण संतान संप्रदाय पुष्ट हुआ था।

यह भी द्रष्टव्य है कि 'आनंद मठ' में दो बार अंग्रेज सैनिक टुकड़ियो की हार कराई गई है। यह वह समय था जब १८५७ की स्वतन्त्रता की चेष्टा व्यर्थ होने की बात अभी लोगो के दिमाग मे ताजी थी, उसके दमन के रोगटे खडे कर देनेवाले उपाय अभी तक लोगो को याद थे, ऐसी अवस्था मे उपन्यास के पीछे के दरवाजे से ही सही आत्म-सम्मान तथा आत्म-गौरव को जाग्रत करना बड़ी भारी बात थी।

सबसे बडी बात यह है कि 'आनद मठ' के संबध मे जो बात ऊपर बताई गई है, बाद के लोगों ने उसे इसी रूप मे लिया। 'आनंद मठ' एक उपन्यास होते हुए भी बाद के युग के क्रातिकारियो की कई पुश्तो के लिए पाठ्य-पुस्तक और प्रचार-पुस्तक के रूप में हो गया। वन्देमातरम् उठते हुए राष्ट्रीय आदोलन का नारा बन गया। 'आनंद मठ' को इस दृष्टि से

विचार करने पर उसे केवल एक उपन्यास के रूप मे देखने की प्रवृत्ति से हम वच जायेगे ।

डा० श्री कुमार वद्योपाध्याय ठीक ही कहते है, "आनद मठ का वास्तविक गौरव वस्तुवादी उपन्यास के रूप मे नही है । इसने वंगाल के पाठक-समाज पर जो व्यापक प्रभाव छोड़ा है, वह धर्म-ग्रंथ के अतिरिक्त और किसी प्रकार साहित्य के भाग्य मे नही प्राप्त रहा । यह कहना अत्युक्ति न होगी कि 'आनद मठ' ने आधुनिक वंगाल को जन्म दिया है, आधुनिक वंगाली के हृदय और मनोवृत्ति को गठित किया है, जो देशात्म-वोध आज प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति की साधारण मानसिक सम्पत्ति है, वकिम ने ही उसका पहला अंकुर उगाया था । उन्होने ही यूरोप के देश-प्रेम के पौवे को वंगाल के विशेप वातावरण में, वगाली पूजा-सामग्री की सहायता से वगाली हृदय को भक्ति चदन-चर्चित करके वंगाल मे प्रतिष्ठित किया । वर्तमान युग मे ऐमी कोई भी राजनैतिक सस्था वगाल मे नही है, जिसकी पहली प्रेरणा 'आनंद मठ' से न आई हो । वगालियो की राजनीति-चर्चा की विशिप्टता राजनैतिक व्याख्यान की भापा तक वकिम की कल्पना के रग से रंगी हुई है । बकिम ने मूर्ति-पूजक वंगालियो के मानसिक स्वर्ग मे एक नई देवी प्रतिमा की स्थापना की और वंगालियो के हृदय की भक्ति को एक नये मार्ग मे परिचालित किया । विश्व-साहित्य मे जो थोडे-से युगांतकारीग्रंथ हैं, 'आनंद मठ' को उनमे प्रधान स्थान प्राप्त है । वदेमातरम् आधुनिक वगाल का वेदमन्त्र है । इसलिए 'आनंद मठ' को केवल साहित्य की दृप्टि से विचार करने पर इसकी संपूर्ण महिमा या प्रभाव समझ मे नही आ सकता । इसका स्थान साधारण साहित्य-लोक से वहुत ऊंचा है ।"

इस दृप्टि से देखने पर 'आनन्द मठ' की सच्ची महिमा समझ मे आती है। वगाल के वाहर भी जितने क्रातिकारी आदोलन हुए, उनमे 'आनंद मठ' का महत्वपूर्ण स्थान रहा । मुझे स्मरण है कि जिन दिनो मैं क्रातिकारी वना, उन दिनो यानी १९२२-२३ के ज़माने मे सवसे पहली किताव जो किसी नौजवान के हाथ मे उसके मन की गति जानने तथा उसके मन को ढालने के लिए दी जाती थी, वह थी 'आनंद मठ' ।

काकोरी युग के पहले के जो क्रांतिकारी थे, वे भी इस पुस्तक का उपयोग

इसी प्रकार करते थे। सच तो यह है कि उत्तर भारत का सारा क्रांति-आंदोलन लगभग १६२५ तक संतान सम्प्रदाय के आदर्श पर चलता रहा और उसमे धर्म का बहुत अधिक प्रभाव रहा। यहापर मै यह बताने नही जा रहा हू कि किस प्रकार वाद का आदोलन धार्मिक भावना से मुक्त हो गया और उसने एक दूसरा आदर्श अपनाया।

मैं समझता हूं कि विश्व-साहित्य में 'आनद मठ' ही एकमात्र उपन्यास है, जिसमे का एक गीत वाद को राष्ट्रीय गीत बन गया। यह एक अनहोनी ऐतिहासिक घटना है, पर यह केवल एक आकस्मिक घटना नही है। ऐसा नही कि लोगो ने उपन्यास को ताक पर रख दिया हो, और उसके अन्तर्गत गीत को अपनाया हो। नही, लोगो ने पुस्तक को भी एक धर्म-ग्रथ की तरह, नये युग की गीता की तरह, अपनाया, और साथ-ही-साथ उन्होंने वदेमातरम् के नारे को अपनाया। मुझे डर है कि वदेमातरम् के कवि के रूप मे वकिमचद्र को जिस प्रकार स्मरण किया जाता है, वह उससे कही अधिक सम्मान और कृतज्ञता के अधिकारी हैं। वह केवल अपने साहित्यिक कार्यो के लिए नही, केवल वंदेमातरम् के कवि होने के नाते नही, वल्कि एक कर्तव्यच्युत, पतित, पददलित जाति को एक अमृतोपम आदर्श का पता देने के लिए, त्याग और साधना का एक जीता-जागता सामूहिक चित्र उपस्थित करने के लिए हमारे पूज्य और श्रद्धेय हो चुके हैं। साहित्यकार के रूप मे उनका जो स्थान है, वह तो है ही।

डाक्टर सुबोध सेन ने वकिमचद्र के उपन्यासो को तीन वर्गो मे विभक्त किया है। 'राजसिह' एक सुवृहद् ऐतिहासिक उपन्यास है; 'कृष्णकांत का विल', 'विप-वृक्ष' आदि उपन्यासों मे सामाजिक और पारिवारिक जीवन का चित्र खीचा गया है। 'दुर्गेशनदिनी', 'कपालकुडला', 'मृणालिनी' आदि मे इतिहास है, पारिवारिक जीवन का चित्र भी है, किन्तु ये फिर भी ठीक-ठीक न तो ऐतिहासिक उपन्यास ही हैं और न पारिवारिक जीवन की कहानी है, क्योकि इनमे कल्पना का एक ऐसा ऐश्वर्य है जो पारिवारिक जीवन की वास्तविकता का उल्लंघन कर गया है, साथ ही जिसने इतिहास के दावे को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नही किया है। कल्पना की यह जो समृद्धि है, यह न केवल हमारे गिनाये हुए तीसरी किस्म के उपन्यासो मे परिलक्षित हुई है, वल्कि वकिम के सामाजिक और ऐतिहासिक

उपन्यासो मे भी इसी समृद्धि का बोलबाला है। वंकिम के ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत युग के युद्धविग्रह या सामाजिक जीवन का पुंखानुपुख और वास्तविक चित्र नही दिया गया है। उनका ऐतिहासिक उपन्यास थैकरे के हेनरी ऐस्माड की श्रेणी के उपन्यास से संपूर्ण रूप से भिन्न है। उनकी कल्पना ने इतिहास को विचित्र वर्णसंपन्न बनाया है...। वकिम के पात्रो का प्रधान गुण यह नही है कि उनमें विभिन्न प्रवृत्तियो का समावेश नही, वल्कि एक प्रवृत्ति का ऐश्वर्य है। केवल दो-एक पात्रो मे ही उन्होने साधारण मनुष्य का चित्र खीचा है। ऐसे साधारण मनुष्यो मे सबसे पहले नगेद्रनाथ या गोविदलाल का स्मरण हो आयेगा। ...डाक्टर श्रीकुमार के अनुसार वकिम मे पाप के प्रति स्वाभाविक वितृष्णा थी, वर्तमान युग के वस्तुवादी उपन्यासकारो की तरह पाप का विश्लेषण करना उन्हे पसद नही था।...वंकिमचद्र ने अपने कई उपन्यासो मे इतिहास का आश्रय लिया है, फिर भी उन्होने विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास एक ही—'राजसिह'—लिखा है।...उनके अपने मतानुसार भी 'राजसिह' ही उनका एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है।[1] जहांतक काल्पनिक जगत मे उड़ान भरने की बात है वंकिमचद्र देवकीनंदन खत्री की ही जाति के थे, किंतु वकिम तथा खत्री मे फर्क यह था कि एक ने परिष्कृत स्वरूप को अपनाया, दूसरा ऊल-जलूल कल्पना-जगत में विचरता रहा, एक ने आधुनिक कला को अपनाकर कल्पना की उड़ान भरी, दूसरा केवल चंडूखानो में भटकता रहा। वकिम का मनोविज्ञान से कोई दृढ संबध नही था। उनके उपन्यासो मे मानसिक द्वद्व और परिवर्तन का चित्र बहुत कम है। जहा मानसिक परिवर्तन भी है, वहा वह बहुत-कुछ आकस्मिक है, लेखक उसको वर्णित परिस्थितियो मे स्वाभाविक करके दिखा नही पाये।

---

[1] शरत्चंद्र—डाक्टर सुबोध सेन

: ११ :

कवि माइकेल मधुसूदन

एक नाटककार के रूप मे हम माइकेल का परिचय पहले ही दे चुके है। माइकेल मधुसूदन दत्त, जैसा कि उनके नाम के साथ लगे हुए माइकेल शब्द से स्पष्ट है, ईसाई धर्मावलम्बी थे, साथ ही उनका परिचय ग्रीक, लेटिन आदि साहित्य के साथ प्रत्यक्ष था। वह पहले अंग्रेजी मे ही काव्य-रचना करना चाहते थे, पर मित्रों के समझाने पर वंगला भाषा की ओर झुके और उसके श्रेष्ठतम कवियों मे हो गये। उनका महत्व कितना अधिक है यह इसीसे ज्ञात हो सकता है कि डा० सुकुमार सेन ने उन्हे आधुनिक बंगला-काव्य का वाल्मीकि माना है।

माइकेल की जीवनी सक्षेप मे यह है कि "वह पाश्चात्य की करीव-करीव सभी प्रधान भाषाएं जानते थे, पाश्चात्य मे उन्होंने खूब भ्रमण भी किया था। पहले उन्होंने अग्रेजी मे कविता लिखी, किन्तु बाद में सुझाने पर वंगला मे लिखने लगे। एक स्त्री के प्रेम मे पड़कर वह ईसाई हो गये थे। कहना न होगा कि ऐसे व्यक्ति मे पाश्चात्य कितनी प्रवलता के साथ होगा, किन्तु वह चाहे कितना भी प्रवल हो, कवित्व उनमे प्रवलतर था, तभी वह न तो गुमराह हुए, न उन्होंने हवा के सामने घुटने टेके, न उनका काव्य कही अजीर्ण रोगी का उद्गार ज्ञात होता है। माइकेल की काव्य-प्रेरणा मे सबसे प्रवल जो तत्व है वह है वाहरी वस्तु का वाहरी रूप। केवल विचित्र वस्तुओ का सग्रह कर उनको दूर मे स्थापन कर या पास मे सजाकर उनके दर्शन या स्पर्शन के आनन्द में ही वह विभोर है। छोटी या वड़ी तस्वीर वात-की-वात में वातों से आंखो के सामने खड़ी कर देने मे, या कारीगर की तरह मूर्ति की सुषमा खोज निकालने मे उन्हे कितना आनन्द है, उनकी कल्पना मानो उल्लास की विह्वलता मे थिरकने लगती है। उपमा के वाद उपमा का जाल विछाकर वे जिस रूप को प्रकाश करते है वह विचारो की झलक नही, वाहरी वस्तुओ के विन्यास का सौन्दर्य है। विषाद की प्रतिमा स्वरूपा वन्दिनी सीता के माथे पर सेंदुर को वह गोधूलि के ललाट मे नक्षत्र रत्न की भांति देखते है। वह वस्तु को भाव के द्वारा या भाव को वस्तु के द्वारा स्पष्ट करने के आदी नही, वह तो एक वस्तु को स्पष्ट करने के लिए बहुत-सी वस्तुओ

को लाकर आख के सामने ढेर कर देते है, वह चित्र को चित्र से ही स्पष्ट करते हैं। आलोक और छाया इन दो ही वर्णो मे संगमरमर की मूर्ति जैसे अपनेको प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार उनकी बनाई हुई मूर्तिया अत्यन्त सरल और सामान्य सुख-दु ख की छाया और आलोक से हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है। इसलिए देखने में मिल्टन को अनुसरण करते हुए मालूम होने पर भी मधुसूदन मनुष्य के संसार को पीछे और नीचे छोड़कर महाकाव्य के अत्युच्च कल्पलोक मे सीमाहीन दिग्देश मे अपनी कल्पना को भेज नही पाये। मनुष्य को ही उन्होने वडा करके देखा था। पुरुष का पौरुष तथा नारी के नारीत्व ने उनके मन की जीभ मे जो रस का सचार किया था, उसीकी व्याकुलता मे ये काव्य लिखे गये हैं। माइकेल को पढने से यह मालूम होत है जैसे इस गायनप्राण वगला कवि ने एक नये जगत का आविष्कार किया हो, वहा हृदय-समुद्र की वल खाई हुई लहरो की अलख फेन-रेखा वुलवुलो की माला मे विलुप्त हो जाती है, किंतु उसीके साथ दूर से आया हुआ जल का कलकल और भग्ननौका-यात्री का आर्तनाद एकात निकुज के वंशी-रव को एक अपूर्व वेदना से प्रतिध्वनित कर देता है। कवि-कल्पना के इस नये अभियान ने नये साहित्य की गति को एक निर्देश दिया था, फलस्वरूप मन के सूक्ष्म लीला-विलासो से वेखवर होकर मनुष्य को देह के राज्य मे खडा करवाकर उसके स्वाभाविक आकार, प्रकार तथा रूप को देखने की आकाक्षा जगी। पाप-पुण्य से परे उसके प्राणो की उमगें नियति के अमोघ नियम से कैसी भीषण-मधुर हो उठती है, इस वगला कवि के चित्त मे उसीकी प्रेरणा जगी थी।"[1]

कवीन्द्र ने माइकेल के सवध मे लिखा है—"आधुनिक वगला के कविता-साहित्य मे माइकेल मधुसूदन ने जो इसके प्रथम द्वारमोचक थे, सवसे वढ़कर दुःसाहस दिखलाया। उन्होने जिस मिलटनी वाढ़ से दुरूह शब्द तरंग उठाकर वगला भाषा को तरंगित कर दिया, उससे वढ़कर अपरिचित और अनभ्यस्त वगाली पाठको के लिए कुछ भी नही था। यह विल्कुल अपरिचित और अनभ्यस्त होते हुए भी इतना अपरिचित नही था कि वगाली पाठक इसे समझ ही न सके। वंगाली शिक्षित समाज अंग्रेजी साहित्य के जरिये इस विस्तृततर

[1] आधुनिक वगला साहित्य, पृष्ठ १८

जगत् से परिचित हो चुका था। उस समय के शिक्षित वगाली मिलटन, शेक्स-पियर की आज से ज्यादा चर्चा करते थे। इसलिए ज्योंही वगला भाषा के वाद्य-यंत्र के जरिये वही परिचित ताल, लययुक्त जगत् उनके सामने आया तो वे वाहवाह करने लगे। मधुसूदन की प्रतिभा के कारण वगला काव्य के रंचमंच पर पहले-पहल प्राच्य-पाश्चात्य गले मिले।"

वंगला साहित्य मे पाश्चात्य का प्रभाव इस प्रकार द्रुत गति से रग लाने लगा और अव भी ला रहा है, उसका श्रेय वहुत अश मे पद्य-साहित्य मे मधुसूदन को हे। रवीन्द्रनाथ ने जो कहा है कि वे वगला पद्य-साहित्य के द्वारमोचनकारी हैं वह ठीक ही है। प्राक-पाश्चात्य बंगला तथा भारतीय साहित्य में कुछ विशेष विषय थे जैसे राम और कृष्ण की कथा, वैष्णव भक्ति का विभिन्न रूप, वहुत हुआ दो-चार राजे-महाराजे की कथा गा दी गई। तुलसीदास, सूरदास, चडीदास, विद्यापति, चद्रवरदाई, भारतचंद्र, तुकाराम इन्ही को लेकर गाते रहे। इसके सव तरह के मिश्रण गाये, और लिखे जा चुके थे। भारतीय कविता-साहित्य इन्ही की चहार-दीवारी मे घूम-घूमकर कातर क्रदन कर रहा था। इस वास्टिल से उद्धार करने के लिए एक विचारगत क्राति की जरूरत थी। वह क्राति पाश्चात्य प्रभाव के कारण संभव हुई। मधुसूदन ही वे क्रातिकारी थे, जिन्होंने इसका फायदा उठाकर इसको सभव किया। यह वात नही कि माइकेल ने राम, कृष्ण और पौराणिक गाथाओ को विलकुल त्याग दिया, वल्कि सच वात तो यह है माइकेल ने अपनी श्रेष्ठ रचनाएं पौराणिक कहानियो तथा व्यक्तियो के इर्द-गिर्द लिखी, किन्तु उनमे एक नया जीवन, एक क्रातिकारी रूप से अभिनव दृष्टिकोण, एक नई व्याख्या तथा नया तरीका ला दिया।

मधुसूदन की रचनाओ मे 'मेघनादवध' सवसे अच्छा है। इसमे हमारे चिर-परिचित राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, मेघनाद, प्रमीला आते हैं; किंतु कोई यदि समझे कि ये हमारे पुराणो मे वर्णित तथा वैष्णव कोमल-कांत-पदावली के व्यक्तित्व हैं तो वडी गलती होगी। नाम तो वे ही हैं, घटनाओ की परम्परा तथा कथानक की समाप्ति उसी तरह है, किंतु इनके व्यक्तित्व विलकुल वदले हुए हैं। 'मेघनादवध' को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि राम-रावण का युद्ध निरवच्छिन्न रूप से भले-बुरे का युद्ध नही है, वल्कि दो उच्चाकांक्षी राजाओ का युद्ध है या ज्यादा-से-ज्यादा दो सभ्यताओ के सघर्ष का युद्ध हे। माइकेल का मेघनाद लक्ष्मण से

कोई बुरा आदमी नही जचता, उसका वध कोई दैत्य का विनाश नहीं वल्कि एक शहीद की शहादत के रूप मे हमारे सामने आता है। पुस्तक पढ़ते-पढते ऐसा मालूम होता है कि यदि हम लडकपन से राम-लक्ष्मण की जय और मेघनाद की पराजय चाहते न आते तो कदाचित हमे मेघनाद की जय से ही तृप्ति होती। माइकेल ने मेघनाद को करीव-करीव एक दूसरा अभिमन्यु वनाकर छोडा है। माइकेल की सीता अच्छी है, किंतु प्रमीला और भी अच्छी है। सीता से प्रमीला कुछ कम महिमामयी नही मालूम होती। प्रमीला चरित्र एक नाम के अतिरिक्त संपूर्ण रूप से माइकेल की ही सृष्टि है, पौराणिको को इसकी कल्पना भी नही थी। यह प्रमीला देशी और विदेशी सभी आदर्श की तिलोत्तमा है। मालूम होता है, कवि ने इस चरित्र को वनाने मे अपने वर्णागार के सव वर्ण खर्च कर डाले है। इस प्रकार परिचित नामो को कायम रखकर उनको एक नया चरित्र देकर माइकेल ने अपनी कविता के लिए, अपने पाठको के लिए तथा अपने विचारो के लिए अच्छा ही किया है। इस प्रकार वह जो वातें काव्यामोदियो तक पहुचाना चाहते थे, वह और भी सुगमता के साथ पहुच गई। माइकेल ने एक काव्य 'हेक्टरवध' भी लिखा है, किंतु वह वगाली पाठकों के गले नही उतरा। भारतीय साहित्य के सौभाग्य से माइकेल ने ओडिसि तथा वाइवल से अपने नायक नही चुने, नही तो केवल नामो के ही कारण उनकी सफलता मे संदेह होता।

'वीरांगना' काव्य माइकेल की एक दूसरी अमर रचना है। इसमे वीराग-नाओ के लिखे हुए पत्रो का संग्रह है। द्वारकापति कृष्ण विदर्भाधिपति भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का लिखा हुआ एक पत्र इसमे है, जो उन्होने तव लिखा था जव उनके भाई रुक्मी ने चेदीश्वर शिशुपाल के साथ अपनी वहन के विवाह की वात चलाई। इस पत्र की लिखनेवाली रुक्मिणी है, किंतु यह पत्र करीव-करीव वैसा ही है जैसे एक कालेज की लडकी अपने प्रेमिक को लिखेगी जिसके साथ वह भाग जाने मे ही समझती है कि सुखी होगी। रिझाने के सव ही तरीके हैं, लज्जा भी है, साथ-साथ निर्लज्जता भी। वही आग्रह और अपने प्यारे को सातवे आसमान पर चढाकर अपनेको उसकी अयोग्या समझना। उसमे यह नही लिखा गया कि मैं लक्ष्मी हू, तुम नारायण, यह मूर्ख रुक्मी एक ऐसी वात करने जा रहा है जो असंभव है।

वह लिखती है—

निशार स्वपने हेरि पुरुष-रतने
कायमन अभागिनी संपियाछे तारे,
देवी साक्षी करि, वरि देवनरोत्तमे
वरभावे। नारी दासी, नारे उच्चारिते
नाम तांर, स्वामी तिनि

—रात मे स्वप्न मे मैंने उस नर-रत्न को देखा, तबसे इस अभागिनी ने देवताओ को साक्षी करके इस देव तथा नरो में उत्तम को वर रूप से वरणकर उन्हे देह तथा मन सौंप दिया। मैं नारी हू, दासी हू, उनका नाम उच्चारण नही कर सकती, क्योंकि वह पति जो हैं।

एक स्त्री स्वाधीनतावादी को, जो नारी की स्वतंत्रता की खोज मे जान हथेली पर लिये फिरती है, उसको शायद इसकी अंतिम पंक्तियो मे दासी शब्द खटके, किंतु यदि क्षमा किया जाय तो मैं कहने का साहस करूंगा कि यह स्वाभाविक है। हां, आजकल के प्रेम-पत्रों मे यदि उधर से अपने को दासी लिखा जाता है तो इधर से दास भी लिखा जाता है।

रुक्मिणी आगे लिखती है—

शुनो एवे दुःख-कथा। हृदय-मन्दिरे
स्थापि से सुश्याम-मूर्ति, सन्यासिनी यथा
पूजे नित्य इष्टदेवे गहन विपिने,
पूजिताम आमि नाथे। एवे भाग्य-दोषे
चेदीश्वर नरपाल शिशुपाल नामे,
(शुनि जनरव) नाकि आसिछेन हेथा
वरवेशे वरिबोरे, हाय अभागीरे

—अब जरा मेरी दुःख-कहानी सुनिये। हृदय-मंदिर मे उस श्याम मूर्ति को रखकर मैं उसकी उसी तरह पूजा करती थी जैसे कोई संन्यासिनी अपने इष्टदेव को गहन विपिन मे पूजती है। अब दुर्भाग्य के कारण सुनती हूं, ऐसी अफवाह है कि चेदिश्वर शिशुपाल नामी कोई राजा मुझ अभागी के वर-रूप में आ रहे हैं।

कालरूपे शिशुपाल आसिछे सत्वरे—
आइसो ताहार अग्रे। प्रवेशि ए देशे

हरो कोरे—हरे लये देह तौर पदे
हरिला ए मन जिनि निशार स्वपने

—सुनती हूं शिशुपाल काल की तरह जल्दी आ रहा है, आप उससे भी पहले आये, और इस देश मे प्रवेशकर मुझे हर ले जायं, और उन्हीको मुझे सौंप दें, जिन्होने रात्रि के स्वप्न में मेरा मन हरण कर लिया।

'नीलध्वज के प्रति जना' नामक पत्र में हमे जना का जो चरित्र मिलता है, वह माता तथा पत्नी के रूप में इतनी महीयसी है कि उसके सामने सब क्लासिकल चरित्र फीके पड़ जाते है। जब पांडवो ने अश्वमेध का अश्व छोडा तो माहेश्वरी-पुरी के युवराज प्रवीर ने उस अश्व को पकड लिया, इसके फलस्वरूप अर्जुन के हाथ से वह मारा गया। माहेश्वरीपति महाराज नीलध्वज ने इसपर युद्ध न कर अर्जुन से संधि कर ली, इसपर पुत्रशोकातुरा रानी जना ने अपने पति को लिखा—

"राजतोरण मे रण-वाद्य बज रहा है, घोड़े हिनहिना रहे है, हाथी चिंघाड़ रहे है, आसमान मे राजपताका फहरा रही है, राजसेना मस्त होकर हुंकार छोड रही है, किंतु आखिर क्यो? क्या तुम इसलिए सज रहे हो कि प्रवीर बेटा का प्रतिशोध लिया चाहते हो और अर्जुन के रक्त से मेरी शोकाग्नि को बुझाना चाहते हो? यही तो महाराज तुम्हे फबता है, तुम क्षत्रियो के मणि तथा महाबाहु हो। जाओ मतवाले गजराज की तरह किरीटी के ऊपर सूडो को आस्फालन करते हुए टूट पडो और उसका गर्व रणस्थल मे मेटकर उसके कटे हुए मुड को ले आओ। उस मूढ ने अन्याय युद्ध मे एक बालक को मार लिया, जाओ महाबाहु, जाकर उसे विनाश कर डालो। मै इस ज्वाला को फिर भूल जाऊंगी। जन्म मे मृत्यु तो खैर है ही, विधाता का यही विधान है। क्षत्रकुल-रत्न वीर प्रवीर समुख समर मे खेत रहकर स्वर्ग गया है, उसपर रोने की बात ही क्या है! राजन्, तुम पृथ्वी को पालो, क्षात्रधर्म को अपने भुजबल से पालो तो सही।'

"किंतु यह क्या, जना? तुम क्या पागल हो रही हो? तुम्हारी सभा में नर्तकी नाच रही है, गायक गा रहा है, वीणा की ध्वनि उमड़ रही है, तुम्हारे पुत्र का हत्यारा तुम्हारे सिंहासन पर बैठा है। अब शायद वह तुम्हारा सबसे जबर्दस्त मित्र है। तुम अब अपने अतिथिरत्न की बडी सेवा कर रहे हो। कितनी लज्जा

की बात है। दुःख की यह कहानी मै अब कहू तो किससे ? क्या माहेश्व
पुरीश्वर नीलध्वज आज पुत्र-शोक के मारे लुप्तबुद्धि हो चुके है ? जिस दार
विपत्ति ने राजन्, तुम्हारा पुत्र हर लिया, क्या उसीने तुम्हारी बुद्धि का
सफाया कर दिया ? नही तो भला मुझे समझाओ कि अर्जुन आज तुम्हारी पु
का सम्मानित अतिथि किस नाते से हो रहा है ? कैसे तुम आज मित्र रूप
उस कर का स्पर्श करते हो जो प्रवीर के रक्त से रजित हो चुका है। क्या क्षा
धर्म यही है ? तुम्हारा धनुष, तूण, अस्त्र, चर्म कहा है ? दुश्मन के सीने
चुभते हुए शरो का निशाना बनाने की बजाय क्या आज तुम उन्हे बातो से स
मे तुष्ट कर रहे हो ? जब तुम्हारी ये बाते फैलेगी तो देश-विदेशो मे लं
क्या कहेगे ?

"मै जानती हू, लोग पार्थ को रथीश्रेष्ठ कहते है। झूठी बात, उसने
बदलकर स्वयंवर मे लाखो राजाओ को उल्लू बनाया। ब्राह्मण समझकर उस
साथ किस राजा ने ढग से लडाई की होगी ? दुष्ट ने खांडव कृष्ण
सहायता से जलाया, फिर शिखंडी की आड लेकर महापापी ने कौरवो के गौ
वृद्ध पितामह भीष्म को हराया। गुरु द्रोणाचार्य को उसने किस छल से मा
जरा सोचो तो। जब पृथ्वी ने रुष्ट होकर महायशा कर्ण के रथ के पहियो
निगल डाला तो तब उस बर्बर ने कर्ण को मार डाला। मुझे बतलाओ तुम
स्वय महारथी हो। क्या यह सब महारथीपना है ? यह तो व्याध का काम
कि छल से सिह को मारता है, किंतु सिह अपने रिपु को पराक्रम से ही परा
करता है।

"राजन्, तुम क्या नही जानते हो। न मालूम आज किस कारण पार्थ
सामने तुम्हारा सिर झुका हुआ है। क्या ब्राह्मण आज चडाल के पैर की
लेगा ?...किंतु यह सब उलहना व्यर्थ है। तुम आखिर मेरे बडे ही
यदि मै तुम्हारी भर्त्सना करूं तो मै केवल पाप की भागी बनूगी। मैं कुल-ना
हू, विधना का यही विधान है कि मैं पराधीन हूं। मुझमे वह शक्ति नही
अपनी शक्ति से अपनी इच्छा पूर्ण करूं। दुर्दान्त अर्जुन ने मुझे पुत्रहीना
दिया, मालूम होता है विधाता ने इस कौन्तेय को इस कारण पैदा किया
लोगो के सुख का नाश करता फिरे। तुम पति मेरे प्रति दुर्भाग्य से वाम हो
हो। फिर मै इस संसार मे जीऊ तो किसलिए और क्यो ? आज यह वि

जनसस्यावाली पृथ्वी मेरे लिए निर्जन हो चुकी है। इस जले हुए ललाट पर विधना ने जो लिखा है वह अव होकर के ही रहा।

"हाय मेरा प्रवीर। क्या इसीलिए तुझे मैंने दस मास दस दिन तक कष्ट सहकर गर्भ मे धारण किया?...क्या इसी प्रकार मां का ऋण चुकाया जाता है? हे आंखे, तुम वरस रही हो? कौन तुम्हारे आंसुओं को पोंछनेवाला है? हे मन, क्यों तू जलता है? अरे मणिहीन फणी, तेरे माथे की मणि तो पांडव के शर से खंड-खंड हो चुकी, अव वांवी के अन्दर मुंह छिपाकर रोना ही तेरे लिए रह गया है। जाओ महावाहु, अपने मित्र पार्थ के साथ जाओ, यह अभागी तो अव महायात्रा कर इस ससार से जाती है। मैं क्षत्रकुलवाली हूं और क्षत्रकुल वधू भी, कैसे मैं यह अपमान सह सकती हू! मैं तो जाकर जाह्नवी के जल मे अपना प्राण दिये देती हूं। देखू यदि कृतान्त के यहां जाकर मेरे शोक का अन्त हो। मैं हमेशा के लिए तुम्हारे चरणो से विदा मांगती हूं। जव तुम अपने प्रासाद मे लौटोगे तो यदि तुम 'जना कहां है?' करके पुकारोगे तो प्रतिध्वनि जवाव देगी 'जना कहां है?"

कहां वैयक्तिक स्वतंत्रतालवलेशशून्य वैष्णव-कविता और कहां माइकेल की यह पग-पग पर अपने लिए स्वतंत्र रास्ता निकालकर झूमती हुई चलनेवाली कविता! माइकेल ने अपने इन भावों के आत्मप्रकाश में कठिनता न हो, इस कारण अतुकान्त को अपनाया, किंतु कृत्तिवास, काशीरामदास तथा पदावली के पयार-छन्द को अपनाया, साथ ही उसकी गति वदलकर उसमे नये जीवन-प्रवाह का संचार किया। वह युग ही ऐसा था कि सभी क्षेत्र मे नयेपन की गुजाइश थी। आज वगला इस मर्यादा को पहुंची है कि उसमे सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कविता तथा स्थूल-से-स्थूल विज्ञान लिखा जा सकता है; किंतु मधुसूदन के युग मे भापा नये युग के प्रयोजन, वल्कि कहना चाहिए नये युग के सतत वृद्धिशील प्रयोजन, के अनुसार पिछड़ी हुई थी। मधुसूदन को इसलिए वीणा धारण करने के लिए वीणा की लकड़ी काटनी पड़ी, तार वनाने पडे, तव वीणा पर आलाप शुरू किया। मधुसूदन की भापा दुरूह है, उसमे संस्कृत के तत्सम शब्द, वडे-वडे समास वहुत हैं, किंतु "फिर भी" समालोचक मोहितलाल लिखते है, "माइकेल के शब्दो की दुरूहता ने वंगाली पाठकों को उतना नही भरमाया जितना रवीन्द्रनाथ की अनभ्यस्त शैली ने लोगो को पहले-पहल परेशान किया।"

मधुसूदन ने इसलिए छंद को तो नही त्यागा, किंतु अपनी प्रतिभा की विपुल दृष्टि से उसे अपने भावो के अनुरूप कर लिया। पदावली साहित्य के युग मे, मधुसूदन के युग मे और आज भी बंगला छंद एक बहुत ही सरल वस्तु है। हिंदी छदो की तरह बगला छद को आयत करने के लिए किसीको पिंगल पढने की या दीर्घ अभ्यास की जरूरत नही, यह भी एक कारण है कि बगला मे कविता की इतनी उन्नति हो सकी। प्राचीन बगला मे, सच पूछा जाय तो, पयार, त्रिपदी, चौपदी आदि चार-पाच छद थे। इनके मिश्रण से जो छंद होते थे वे मिश्र छंद कहलाते थे। अवश्य भारतचद्र जैसे कवियो ने सफलतापूर्वक कुछ संस्कृत छंदो की भी वगला मे आमदनी की, किंतु ये छंद बंगला शब्दो की उच्चारण-पद्धति के साथ सामजस्यहीन होने के कारण दूसरे कवियो ने उन्हे नही अपनाया। त्रिपदी, दीर्घ त्रिपदी और चौपदी में यति इकरस होते थे, फिर पग-पग पर तुक मिलाना पडता था, इस कारण मधुसूदन को जो बगला कविता उत्तराधिकार सूत्र मे मिली वह भाव-गदगद् और रीढशून्य थी। मधुसूदन ने पयार को ही लिया, किंतु उसको नये तरीके से ढालकर उसमे नये सगीत की सृष्टि की। यह असाध्य साधन वह अपनी भाषा की ही वादौलत करने मे समर्थ हुए।[1]

माइकेल ने इस पयार को ही महाकाव्य के सुर मे बाध दिया। इस प्रकार माइकेल ने केवल विचार-जगत् मे ही एक बिल्कुल नया जगत् नही पेश किया, बल्कि उस विचार के लिए उपयुक्त वाहन का भी निर्माण किया। भाषा और छंद यदि भावो से आगे निकल गये या पीछे रह गये तो कवि को सफलता नही मिलती, इसलिए अधिक या कम प्रत्येक कवि को अपनी भाषा तथा छद आदि का सृजन करना पडता है। इसीको हम किसी कवि की शैली कहेगे। मधुसूदन ने जैसे पौराणिक नामो को लेकर उनको बिल्कुल अपौराणिक आधुनिक बना दिया, उसी प्रकार उन्होने बंगला छंदो मे विशेषकर पयार को ग्रहण करते हुए उसमें ऐसे परिवर्तन कर दिये जो वैष्णव कवियो के लिए अकल्पनीय थे। पयार मे चौदह अक्षर होते हैं। "उसके आठ पैर होते है, किंतु उसको कितने प्रकार से चलाया जा सकता है, इसका प्रमाण माइकेल के 'मेघनादवध' काव्य मे मिलता है।" उस महाकाव्य की अवतारणा की प्रथम पंक्तियो को ही लीजिये। इन पंक्तियो

[1] आधुनिक बंगला साहित्य, पृष्ठ ११५

में उन्होंने विभिन्न वजन का सुर अलापा है, किसी जगह पर भी पयार को उन्होंने प्रचलित यति स्थान पर रुकने नही दिया। पहली पंक्ति मे ही वीरवाहु की वीर-मर्यादा सुगंभीर होकर वज उठी—

सम्मुखसमरे पोड़ि वीर चूड़ामरिण वीरवाहु[1]

फिर मानो उनकी अकालमृत्यु का संवाद जैसे टूटी हुई रणपताका की तरह टूटे हुए छंदो मे टूट पडा।

चलि जवे गेला यमपुर अकाले[2]

फिर जैसे छंद ने झुककर मंगलाचरण किया।

कह हे देवी अमृतभाषिणी[3]

इसके वाद असली वात जो सवसे महत्वपूर्ण है, परिणाम की सूचना की तरह जैसे आनेवाली आधी के सुदीर्घ मेघगर्जन की तरह क्षितिज की एक ओर से दूसरी ओर तक प्रतिध्वनित होती है—

कोन वीरवरे वरि सेनापति पदे
पाठाइलो रणे पुनः रक्षकुलनिधि
राघवारि[4] यह माइकेल का चमत्कार है।[5]

अतुकात होने के कारण कवि को तुक खोजने के लिए कही अपने भावों को कुठित नही करना पडा।

: १२ :

इस युग के अन्य महत्वपूर्ण लेखक

वकिमचद्र के साथ-ही-साथ उपन्यासकार रमेशचंद्र का नाम लेने की परिपाटी है। इसका कारण यह है कि रमेशचंद्र (१८४८-१६०६) वंकिमचंद्र

---

[1] वार चूडामणि वीरवाहु सम्मुख समर में खेत रहकर
[2] जव अकाल ही यमपुर चले गये
[3] तो वताओ हे देवी अमृतभाषिणी,
[4] राघवारिक्षकुलनिधि ने किस वीरवर को सेनापति पद में वरण कर भेजा।
[5] देखिये सवुजपत्र १३२५ में रवींद्रनाथ का छंद लेख

के बहुत-कुछ समसामयिक थे, और दोनो साहित्यकारो ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर बंगला भाषा को समृद्ध किया। ऐसा मालूम होता है कि १८७२-७३ मे बंकिमचंद्र और रमेशचंद्र नौकरी के सिलसिले में एक साथ हुए थे, तभी बंकिमचद्र ने उन्हे बंगला साहित्य की ओर प्रवृत्त किया। रमेशचंद्र यह समझते थे कि वह शायद सफल उपन्यासकार न हो सकेंगे, पर बंकिमचंद्र ने उन्हे समझाया और उनके संबंध में भविष्यवाणी की कि वह बगला के अच्छे उपन्यासकार होंगे।

इसपर रमेशचंद्र उपन्यास लिखने के लिए तैयार हुए और एक के बाद एक उनके छः उपन्यास निकले। इन उपन्यासो के नाम है—'बंग विजेता' (प्रथम पुस्तक रूप में प्रकाशन १८७४, पहले यह 'ज्ञानांकुर' पत्रिका मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था), 'माधवी ककरण' (१८७७), 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' (१८७८), 'राजपूत-जीवन-संध्या' (१८७९), 'संसार' (बंगला सन् १८९३ याने लगभग और 'समाज' (१८९४)। इनमें से प्रथम दो आपात दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास ज्ञात होने पर भी इतिहास की पृष्ठभूमि में रोमाटिक उपन्यास मात्र हैं। 'राजपूत-जीवन-संध्या' और 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' सचमुच ऐतिहासिक उपन्यास हैं और इनमे, जैसा कि ऐतिहासिक उपन्यासो मे होता है, ऐतिहासिक पात्रो के साथ-साथ कल्पित पात्र भी है, पर ऐतिहासिक घटनाक्रम और वातावरण का ख्याल रक्खा गया है। रमेशचंद्र दत्त एक प्रसिद्ध इतिहासकार भी थे, इसलिए उनके लिए ऐतिहासिक वातावरण का निभाना बहुत आसान था।

यहांपर हम एक क्षण के लिए रुककर पाठक का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि यद्यपि वन्देमातरम् गान मे 'सप्त कोटि कंठ कलकल निनाद कराले' आता है, फिर भी इस युग के दोनों देशप्रेमी उपन्यासकार बकिमचंद्र और रमेशचद्र अखिल भारतीय देशभक्ति से अनुप्राणित थे। वन्देमातरम् गान जिस प्रसंग मे आया है, उसमे कदाचित् त्रिंश कोटि देना सभव नही था क्योकि 'आनंद मठ' की सारी कहानी बगाल के एक स्थानीय विद्रोह के इर्द-गिर्द प्रवाहित होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से तो सप्त कोटि का आदर्श भी उस ऐतिहासिक आदोलन पर लादना बहुत बड़ा बोझ था, यद्यपि जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूं, इस प्रकार एक सीमित और छोटे-से आंदोलन पर एक बृहत् आदर्श लादने मे बंकिम का जो उद्देश्य था, उसे देखते हुए वह ठीक ही था।

वंकिमचद्र के 'राजसिंह' और रमेशचंद्र के 'महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात' तथा 'राजपूत जीवन सध्या' अखिल भारतीय देशभक्ति की उपज है, न कि प्रादेशिकता की। मध्ययुग मे राजपूतो को कोई विशेपता नही दी जाती थी, राणा प्रताप जैसे व्यक्ति की वात और है। ममस्त राजपूत जाति को एक वीर जाति के रूप मे पेश करने और भारत के सामने एक आदर्श के रूप मे खडा करने का श्रेय कर्नल टाड (चाहे उनका इतिहास कसौटी पर कितना भी लचर सिद्ध हो चुका हो) और वंगाल के इन दो उपन्यासकारो तथा उनके वंगाली अनुकरणकारियों को वहुत-कुछ प्राप्य हैं। केवल यही नही, महाराष्ट्र को भी इसमे पहले-पहल शरीक किया गया। वाद को चलकर डी० एल० राय आदि नाटककारो ने इसी परिपाटी को कायम रक्खा। यहा यह वता दिया जाय कि इन उपन्यासो का अनुवाद फौरन हुआ और उसने उठती हुई अखिल भारतीय देशप्रीति को पुष्ट करने में हाथ वटाया।

यहां एक वात यह भी वता देना उचित होगा कि इन उपन्यासों को केन्द्र वनाकर, वल्कि इन उपन्यासों से पुष्ट होकर जो अखिल भारतीय राष्ट्रीयता की धारा चल पढी, वह अनिवार्य रूप से हिंदू राष्ट्रीयता हो गई। 'आनद मठ' के सतान संप्रदाय के लोग सव विदेशी शासन के विरुद्ध थे, इस कारण वे मुस्लिम शासन के विरोवी थे। इसी प्रकार राजपूतो और मराठो का झगड़ा मुसलमान शासको से ही था। इसका नतीजा यह हुआ कि इस राष्ट्रीयता मे मुसलमानो का, विशेपकर हमारे देश के पिछड़े हुए मुसलमानों का, कोई स्थान नही रहा। हमारे यहां की परिस्थिति में यह कैसे आशा की जा सकती थी कि हमारे मुसलमान भाई इन रचनाओं मे से मुस्लिम विरोध को यह कहकर उड़ा देगे कि खुल्लमखुल्ला अग्रेजो का विरोध करना संभव नही था, इसलिए इतिहास की आड ली गई थी, वस्तुत: लेखको का अभिप्राय मुसलमानों का विरोध करना नही था, क्योकि अव तो वे भी गुलाम हो चुके थे। सच तो यह है, जैसा कि मैंने अन्यत्र वहुत विस्तार के साथ दिखलाया है कि जिसे मुस्लिम काल कहा जाता है, उसमे भी उच्च वर्ग के थोडे मुसलमानो के अतिरिक्त वाकी सव मुसलमान हिंदुओं की तरह ही शोपित और पददलित थे, वल्कि पूर्ण सत्य तो यह है कि हिंदुओ में भी सामंत तथा उच्च वर्ग के लोग शासको के धर्मावलंवी न होते हुए भी शासन में साझीदार थे। इस पुस्तक मे इस प्रश्न पर

संक्षेप मे इतने से अधिक कहने की गुंजाइश नही है।

रमेशचंद्र के वाकी दो उपन्यास सामाजिक थे। रमेशचद्र ने इन उपन्यासों मे गाव की गृहस्थी का वहुत सुदर चित्र खीचा है। इसपर डा० सुकुमारसेन का यह कहना है कि "उनकी तरह का जीवन नगरवासी धनी सतान के लिए ही उपयुक्त था। रमेशचंद्र से पहले और किसीने भी वंगला साहित्य में ऐसा शांत, कोमल, मधुर पल्लीचित्र नही प्रस्तुत किया।"

रमेशचंद्र दत्त ने उपन्यासो के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र में भी वड़ा उपयोगी कार्य किया। उन्होने ऋग्वेद के वंगला अनुवाद का प्रकाशन आरंभ किया। इसके अतिरिक्त उन्होने सव धर्मशास्त्रो का निचोड़ भी हिंदूशास्त्र नाम से दो खंडो मे प्रकाशित किया। रमेशचद्र ने अंग्रेजी में रामायण और महाभारत का संक्षिप्त अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी मे उनकी कई अन्य पुस्तकें प्रकाशित हुई, जिनसे अखिल भारतीय क्षेत्र मे भी वह वहुत प्रसिद्ध हो गये।

वंकिमचद्र के एक वडे भाई **संजीवचंद्र** (१८३४-१८८९) अच्छे लेखक हो गये हैं। उन्होने दो उपन्यास, दो कहानियां, एक ऐतिहासिक आख्यायिका और अन्य कई फुटकर चीजें लिखी है। संजीवचंद्र भी वड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, पर उनमे अपने छोटे भाई की तरह अव्यवसाय का अभाव था। 'जाल प्रताप चाद' नामक पुस्तक की भूमिका लिखते हुए उन्होने लिखा था—"हम लोगो का कोई इतिहास नही है। जिसे हम वंगालियो का इतिहास करके पढ़ते है, वह अंग्रेजो का इतिहास है। वंगभूमि पर अंग्रेजो के कीर्ति-कलाप को वंगालियो की वस्तु करके हम ग्रहण कर रहे हैं। इस भ्रम को दूर करने का समय अभी नहीं आया है। जव वह समय उपस्थित होगा तो कही इतिहास के लिए उपयोगी उपकरण का अभाव न हो इस आशा से एक युग की सामाजिक दो-चार वातों को लिख रखने की चेष्टा हो रही है, इसलिए इस समय के लिए जाली राजा को मैंने उपलक्ष्य वनाया है।"

सजीवचंद्र शक्तिशाली लेखक थे, यहांतक कि यह कहा गया है कि संजीवचंद्र मे रवीद्रनाथ का पूर्वाभास प्राप्त होता है। स्वयं रवीद्रनाथ भी उनके प्रशसक थे, उन्होंने संजीवचंद्र के संवंध मे लिखा था कि वहुत थोड़े-से लोग ऐसे हैं जो छापे के हरफो में मजलिस जमा पाते हैं, संजीवचंद्र उन थोड़े-से लोगों मे है, जो यह सामर्थ्य रखते है।

वंकिमचंद्र के सबसे छोटे भाई **पूर्णचंद्र** भी उपन्यासकार थे। उन्होंने दो उपन्यास लिखे। समसामयिक उपन्यासकारो में कई ऐसे हुए, जो उस युग मे प्रसिद्ध रहे। उदाहरणस्वरूप **दामोदर मुखोपाध्याय** (१८५३-१९०७) ने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे। **देवीप्रसन्न राय चौधुरी** (१८५४-१९२०) ने वहुत-से उपन्यास लिखे। इनके सभी उपन्यास शिक्षामूलक पर डकरस थे।

सुप्रसिद्ध ब्राह्म नेता **शिवनाथ शास्त्री** (१८४७-१९१९) ने भी कई उपन्यास लिखे। उन्होंने कई काव्यो की भी रचना की थी। उनका पहला उपन्यास 'मझली वहू' १८७९ मे प्रकाशित हुआ था और अगले साल ही उसका दूसरा सस्करण निकल गया था। वकिमचंद्र के किसी भी उपन्यास का पहला संस्करण इतनी जल्दी समाप्त नहीं हुआ था। उनका दूसरा उपन्यास 'युगान्तर' १८९५ मे और तीसरा उपन्यास 'नयनतारा' १८९९ मे प्रकाशित हुआ था। रवीद्रनाथ ने इनके उपन्यासो की वहुत प्रशंसा की थी। पर शिवनाथ शास्त्री की सवसे मूल्यवान रचना उनका 'आत्मचरित्र' है। वंगला में वहुत-से लोगो ने आत्मकथा लिखी है, पर शिवनाथ शास्त्री की आत्म-कथा फिर भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि उस समय के समाज का वहुत सुन्दर चित्र उसमें प्राप्त होता है।

स्वर्णकुमारी देवी भी वंगला साहित्य के क्षेत्र मे उपन्यास लिखकर वहुत प्रसिद्ध हो गई हैं। उनका पहला उपन्यास 'दीपनिर्वाण' पृथ्वीराज सयोगिता की कहानी लेकर लिखा गया था। इसके वाद तो उनके वहुत-से उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके उपन्यासो मे 'स्नेहलता' सर्वश्रेष्ठ है। उस समय के समाज मे नये विचारों के कारण जो आलोडन-विलोड़न चल रहा था, उसका चित्र पेश किया गया है।

तारकनाथ विश्वास ने भी वहुत-से उपन्यास और कहानियां लिखी। इनके एक उपन्यास 'लीला' के संवंध मे रवीद्रनाथ ने लिखा था कि इस पुस्तक को पढते-पढते कई गृहस्थियो के चित्र हमारी आखो के सामने आ जाते हैं और इसके पात्र प्रत्येक वंगाली के लिए सुपरिचित हैं।

चंडीचरण सेन (१८४५-१९०६) ने 'टाम काका की कुटिया' का अनुवाद करके ख्याति प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उन्होने 'महाराज नदकुमार' (१८८५) आदि कई उपन्यास लिखे।

श्रीशचंद्र मजुमदार ने चार उपन्यास लिखे। श्रीशचद्र की रचना में सरलता से अपनी वात कहने का गुण वहुत है। इंद्रनाथ वंद्योपाध्याय (१८४४-१९११) ने व्यंगात्मक उपन्यासो की रचना की। इस प्रकार यह विल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि वक्मिचंद्र की स्याति ही स्थायी हो सकी और उनकी ख्याति के सामने उनके समसामयिक उपन्यासकार वहुत कुछ डूव गये, फिर भी वगला साहित्य मे उपन्यास और कहानियो की साधना बड़ी तेजी से हो रही थी और रवीद्र तथा शरतचद्र का पैदा होना कोई आकस्मिक घटना नही है।

रवीन्द्र की प्रतिभा के सवंध मे आलोचना करने के पहले हम इस युग के अन्य साहित्य का थोड़ा-सा परिचय देगे।

देवेंद्रनाथ ठाकुर के साथियो मे श्री राजनारायण वसु (१८२६-१८९९) अपने युग के वहुत अच्छे वक्ता और लेखक थे। उन्होने वहुत-सी धार्मिक पुस्तके लिखी, इसके अलावा उन्होने वंगला भाषा और साहित्य पर भी एक पुस्तक लिखी। उनकी भाषा मे वोल-चाल की भाषा का पुट वहुत अधिक है। उन्होंने 'ग्राम्य उपाख्यान' नामक गाव के सवध मे एक पुस्तक लिखी।

देवेद्रनाथ ठाकुर के सवसे वडे लडके द्विजेंद्रनाथ (१८४०-१९२६) दार्शनिक विषयो के अच्छे लेखक हो गये है। १८७७ मे 'स्वप्न प्रयाण' नाम से जो काव्य प्रकाशित किया था, वह उच्चकोटि का था। उनका पहला दार्शनिक ग्रंथ १८६६ मे प्रकाशित हुआ था।

इसी प्रकार चंद्रशेखर वसु ने भी वहुत-से धार्मिक ग्रथ लिखे। केशवचंद्र सेन (१८३८-८४) का पहले उल्लेख आ चुका है। वह १८७० मे 'सुलभ समाचार' नामक दैनिक पत्र निकाल चुके थे। कई पुस्तकों में उनके व्याख्यान संगृहीत किये गए। केशवचंद्र ने नवविधान व्राह्म-समाज का प्रवर्त्तन किया और १८८० मे उन्होने 'नवविधान' नामक एक पत्रिका निकाली। केशवचंद्र के साथियो मे कई अच्छे लेखक हुए, जिनमें गिरीशचंद्र अरवी और फारसी के विद्वान थे। उन्होंने शेखसादी के गुलिस्तां का अनुवाद किया। कुरान के प्रथम वंगला अनुवादक वही है। इन्होने मुहम्मद की जीवनी और परमहंस रामकृष्ण की जीवनी भी लिखी। त्रैलोक्यनाथ सान्याल ने चिरजीव शर्मा नाम से कई धर्म और नीति संवंधी पुस्तकें, दो उपन्यास और तीन नाटक लिखे।

स्वामी विवेकानंद (१८६२-१९०२) ने वंगला में लिखने के उद्देश्य से कुछ

नहीं लिखा, पर वह बंगला के बहुत अच्छे वक्ता थे और उन्होने जो कुछ थोडा-बहुत बंगला मे लिखा, उसमे उनकी अपनी ओजपूर्ण शैली स्पष्ट हो जाती है। उनके बंगला व्याख्यानो का भी सग्रह प्रकाशित हुआ।

जीवनी-रचना के क्षेत्र मे भी बंगला मे बराबर काम होता रहा। आत्म-चरित भी बहुत-से लिखे गये। जीवनी रचना के क्षेत्र मे श्री **योगेन्द्रनाथ विद्याभूषण** (मृत्यु १९०४) विशेष उल्लेख-योग्य है। उन्होने जान स्टुअर्ट मिल और इटली के देशभक्त मैजिनी और गैरीबाल्डी की जीवनी लिखी। ये पुस्तकें १८८७ के लगभग प्रकाशित हुई। उन दिनो भारतीय देशभक्त इटली के देशभक्तो के उदाहरण से अनुप्रेरित हो रहे थे, उसीका नतीजा था इन जीवनियो का प्रकाशन। ये पुस्तकें बंगाल के क्रातिकारी आदोलन में बहुत काम आई और पाठ्यपुस्तक के रूप मे पढ़ी जाती रही।

सत्यचरण शास्त्री ने भी कुछ महत्वपूर्ण जीवनिया लिखी। डा० सुकुमार सेन के अनुसार अन्य उल्लेख योग्य समसामयिक जीवनीकारो तथा जीवनियों मे ये उल्लेख-योग्य है—**नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय** रचित राजा राममोहन राय का जीवन-चरित (१८८१), **महेन्द्रनाथ राय** रचित अक्षयकुमार दत्त की जीवनी (१८८५), **योगेन्द्रनाथ वसु** रचित माईकेल मधुसूदन दत्त की जीवनी, दूसरा संस्करण (१८९५), **विहारीलाल सरकार** रचित विद्यासागर (१८९५)।

ऐतिहासिक आलोचना के क्षेत्र मे कई लोगो ने इस युग में अच्छा काम किया। **रजनीकांत गुप्त** (१८४९-१९००) ने १८७६ मे सिपाही-विद्रोह के इतिहास का प्रथम खंड प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इन्होने जयदेव, पाणिनि आदि पर भी कई पुस्तकें लिखी। **रामदास सेन** (१८४५-८७) ने ऐतिहासिक रहस्य, भारत रहस्य तथा उमेशचद्र राय ने सिक्किम का इतिहास (१८७५ मे) लिखा। **प्रफुल्लचन्द्र वंद्योपाध्याय** ने (१८४९-१९००) ग्रीक और हिंदू तथा वालमीकि और उस समय के वृत्तात पर पुस्तके लिखी। **चंद्रशेखर मुखोपाध्याय** ने १८७६ मे 'उद्भ्रांत प्रेम' नाम से एक उच्छ्‌वास-पूर्ण शोकगाथा लिखी, जो लगभग ५० वर्ष तक बंगाल मे बहुत जनप्रिय रही। **मीर मुसर्रफ हुसेन** ने 'करवला की कहानी लेकर 'विषाद सिंधु' नाम से एक पुस्तक लिखी।

भ्रमण पर भी अच्छी पुस्तके लिखी गईं। एक काल्पनिक भ्रमण कहानी लिखी गई, जिसका नाम था 'देवताओ का मर्त्य मे आगमन'। इस पुस्तक मे

समसामयिक समाज की हँसी उड़ाई गई थी। आगे चलकर बंगला साहित्य मे भ्रमण-संबधी पुस्तको को साहित्यिक ढग पर लिखने मे जो सफलता प्राप्त हुई, उसका वीज इसी युग मे पड़ चुका था।

यह वताने की आवश्यकता नही है कि उपन्यास के साथ-साथ कहानी-साहित्य की भी वरावर उन्नति होती जा रही थी। पर जिस प्रकार से उपन्यास के क्षेत्र मे वकिमचंद्र, रमेशचंद्र आदि महान् लेखको का उद्‌भव हुआ था, उस प्रकार कहानी-साहित्य मे कोई वड़ा नाम देखने मे नही आता। उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम दशकों मे नगेन्द्रनाथ गुप्त और स्वर्णकुमारी देवी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। यो तो वकिमचंद्र ने भी 'युगलागुरीय', 'राघारानी' और 'इदिरा' तीन रचनाएं प्रस्तुत की थी, जो वडी कहानियो की श्रेणी मे ही आती हैं। संजीवचद्र की एक रचना 'दामिनी' भी कहानी की श्रेणी में आती है। डा० सुकुमार सेन का कहना है कि रवींद्रनाथ के पहले जो कहानिया प्रकाशित हुई थी, उनमे 'दामिनी' ही श्रेष्ठ है।

: १३ :

कवि बिहारीलाल

इस युग के दूसरे प्रतिभावान कवि का नाम विहारीलाल चक्रवर्ती था। "मजे की वात यह है कि कवींद्र रवींद्र के अतिरिक्त और भी वहुत-से सम-सामयिक कवियो के उन्हे अपना काव्यगुरु करके मानने पर भी उनको माइकेल मधुसूदन के मुकावले मे वगाल के वाहर ही कम लोग जानते हैं। ऐसा ही नही, वल्कि वंगाल मे भी वह कम प्रसिद्ध है। फिर भी वगला साहित्य मे विहारीलाल का स्थान माइकेल से कुछ कम नही है, वल्कि वाद को चलकर विहारीलाल की विशेष काव्य-साधना ही वगला साहित्य मे अधिक रग लाई। विहारीलाल की काव्य-प्रेरणा मधुसूदन के मुकावले मे और भी सरल और स्वत स्फूर्त थी, साथ ही वंगाली जाति के भावो के अनुकूल थी। इस दृष्टि से आधुनिक वगला काव्य के इतिहास मे विहारीलाल एक व्यक्ति नही वल्कि युग-प्रवर्तक थे।"[1]

[1] विहारीलाल, श्री मोहितलाल मजुमदार के आधार पर मुख्यतः लिखा गया।

विहारीलाल ने 'सारदामंगल', 'प्रेम प्रवाहिनी', 'वन्धुवियोग', 'निसर्ग संदर्शन', 'वाउलविंशति', 'संगीतशतक' आदि कई एक काव्य-ग्रन्थ लिखे, किंतु आज वंगाली समाज मे इनको पढनेवालो की सख्या वहुत ही कम है। वात यह है विहारीलाल की प्रतिभा मुख्यतः गीति (Lyric) थी। गीत गाते-गाते वह इतना विभोर हो जाते थे कि वह भूल ही जाते थे कि उनके सामने श्रोता हैं। उनकी उड़ान अत्यंत आत्मपरायण उड़ान है। उनके काव्यो मे गम्भीरता और स्वकेन्द्रीयता जितनी हृदयस्पर्शी है, भाव की मूर्ति उतनी स्पष्ट नही है। इस कारण वह साहित्य में एक नवीन रीति के प्रवर्तक होते हुए भी साधारण कविता-प्रेमी पाठक के प्रिय नही हो सके। मधुसूदन के मुकावले में तो वह कम पढ़े ही जाते हैं, किंतु नवीनचंद्र और हेमचंद्र से भी वह कम पढ़े जाते हैं। यह प्रथम दृष्टि में आश्चर्यजनक होते हुए इसका कारण स्पष्ट है, और वह यह कि नवीनचंद्र और हेमचंद्र चाहे कवि रूप मे इनसे कितने ही निकृष्ट रहे हों, किंतु उन्होंने पलासी का युद्ध आदि ऐसा विषय लिया था जो कितना भी विगडता तो उसकी एक हद थी।

विहारीलाल की भाषा एक विशेष भाषा है। समालोचक कवि मोहितलाल के अनुसार उनके भाव शिशु की तरह सरल हैं तो उनकी भाषा भी शिशु की तरह नग्न अकृत्रिम है। विहारीलाल की यह भाषा ही जैसे उनकी क़ाव्य-रचना की विशेष प्रतिभामयी भाषा है। विहारीलाल के काव्य 'सारदामंगल' को पढने से हमे उनकी भाषा की कला पग-पग पर खूब देखने को मिलती है। कविवर कीट्स ने जिस प्रकार के कवि-स्वप्न को

> Upon the night's starred face,
> Huge cloudy symbols of a high romance

वतलाया है, उस प्रकार के रूप-रस की उत्कठा उनमे नही थी। उनके काव्यो मे विचार से वढ़कर भाव, कल्पना से वढकर प्रीति-विभोरता, जो नही है, उसकी उद्भावना से जो है उसीसे आनदलोक सृष्टि की साधना हम अधिक देखते हैं।

विहारीलाल की यह आत्मनिमग्नता कहीं इतनी अधिक हो जाती है कि वह पाठक के उपहास की वस्तु हो जाती है। समझ मे नही आता कि इसमे कवितापन कहां है। अपने वाल्यवन्धु पूर्णचंद्र की मृत्यु पर वह एक कविता लिख गये, जिसमे वह मित्र की इसलिए प्रशंसा करते दिखाई देते हैं कि वह एक दिन

गंगा नहा रहे थे, ऐसे समय मे एक नाव डूब गई। उस नाव का मल्लाह बच गया किंतु उसका कपडा बह गया। वह किनारे पर कम पानी मे आकर थरथर कांपने लगा, किंतु उसे हिम्मत न हुई कि किसीसे कपडा मांगे। पूर्णचंद्र ने उसे अपना कपडा दे दिया और खुद अगोछा पहनकर घर चले आये। इस घटना को कवि ने नमक-मिर्च न मिलाकर ऐसे ही लिख दिया, जैसे मैंने उसका विवरण लिखा। कहना न होगा यह कोई कविता नही है, किंतु इससे वही बात साबित होती है जो मैं पहले लिख आया हू, याने कवि बिहारीलाल को अपने ही भावो की परवा है, श्रोताओ की नही। सौभाग्य से इस तरह की आत्मकेंद्रित कविता उनकी रचना में कम है। कुछ भी हो, बिहारीलाल की कविता इतनी सरल है कि हम सहज ही मे कवि के हृदय की धड़कन को गिन सकते है।

हिमालय को कविवर बिहारीलाल किस प्रकार चित्रित करते है देखने की चीज है। नीचे जो कविता उद्धृत की जायगी उसमे पाठक देखेगे कि हिमालय कोई प्रस्तर स्तूप नही, बल्कि रक्तमासस्पर्शयुक्त एक विराट शरीर है, जिसके हृदय की धड़कन की यह कविता मानो स्वरलिपि है। हम इस कविता में साफ देख सकते है कि अब बगला साहित्य मे रवीन्द्रनाथ जैसी विभूति आने ही वाली है। बिहारीलाल की कविता मानो उस आनेवाली महान् प्रतिभा का पेशखेमा है। हम जरा कान खडे कर सुनें तो हमे रवीन्द्रनाथ के आने की गड़गड़ाहट सुनाई पडेगी।

असीम नीरद नय
ओ-इ गिरि हिमालय
उथुले उठेछे जेनो अनंत जलधि
व्येपे दिक दिगंतर
तरंगिया घोरतर
प्लाविया गगनांगने जागे निरवधि

—यह हिमालय पहाड कोई सीमाहीन बादल नही है, बल्कि जैसे अनंत समुद्र उमडकर खड़ा हो गया है, सब दिशाओ को बड़े जोरों के साथ व्याप्त तथा तरंगित करता हुआ मानो वह आकाशरूपी आंगन को डुबोता हुआ निरवधि रूप से जाग रहा है।

पदे पृथ्वी, शिरे व्योम,
तुच्छ तारा सूर्य, सोम,
नक्षत्र नखाग्रे जेनो गनिवारे पारे
समुखे सारदाम्बरा
छड़िए रयेछे धरा,
कटाक्षे कखनो जेनो हेरिछे ताहारे।

—चरणों पर उसकी वसुन्धरा है, सिर पर आकाश है; सूर्य-चंद्र फिर उसके लिए तुच्छ क्यों न हो, वह तो जैसे नखाग्र से नक्षत्रो को गिन सकता है। सामने सागराम्बरा धरा फैली हुई है, कभी-कभी वह कटाक्ष से उसे देख भर लेता है।

कतशत अभ्युदय
कतई विलय लय
चक्षेर ऊपरे जेनो घटे क्षणेक्षणे
हरहर हरहर
सुरनर थरथर
प्रलय-पिनाक-राव वाजे ना श्रवणे

—सैकडों अभ्युत्थान और पतन उसकी आंखो के सामने हर-हर क्षण होते रहते हैं। हरहर-हरहर, सुरनर थरथर कापते हैं, किंतु प्रलय का पिनाक रव उसे सुनाई भी नही पडता।

झटिका दुरंत मेये
बुके खेला करे धेये
धरित्री ग्रासिया सिंधु लोटे पदतले।
ज्वलंत अनल छवि
ध्वकध्वक ज्वले रवि
किरन-जलन-ज्वाला माला शोभे गले।

—आंधी तो उसकी एक शरारती लड़की भर है, वह दौड़-दौड़कर उसके सीने पर खेलती है, धरित्री सिंधु को ग्रसकर उसके पैर पर लोटती है। जलती हुई महान् आग की तरह सूर्य धकधक जलता है, किरणो की जलती हुई माला से उसका कंठ सुशोभित है।

कालेर कराल हासि
दमके दामिनी राशि
कक्कड़ दंते-दंते भीषण घर्षण
त्रिजगत त्राहि त्राहि
किछुई भ्रूक्षेप नाहि
के योगेन्द्र व्योमकेश योगे निमगन

—काल की कराल हँसी की तरह बिजली कौंध जाती है, दात से दांत पीस-कर काल मानो कड़कड़-कडकड शब्द करता है, तीनो भुवन त्राहि-त्राहि करते हैं, किंतु उसे किसी बात की परवा नहीं, हे योगनिमग्न व्योमकेश, तुम भला कौन हो ?

मानो कवि ने इस हिमालय में भारतवर्ष को ही चित्रित कर दिया है, बाहरी प्रभाव के प्रति उदासीन, मुक्त, उदार, अपने मे आप समाहित ।

: १४ :

प्रमुख प्राक-रवीन्द्र कवि

कवि सुरेंद्रनाथ मजुमदार

सुरेन्द्रनाथ मजुमदार इस युग मे कही-कहीपर बहुत अच्छी कविता लिख गये हैं। मुख्यतः इन्होने अनुवाद ही किये है, किंतु इनकी एक मौलिक कविता में कवि की वैयक्तिक स्वतन्त्रता कितनी उग्र मालूम होती है—

हे कवि-कल्पना माया सत्येर सोनालि छाया
काव्य-इंद्रजाल-भानुमती,
सुखे तुमि यथा इच्छा थाको क्रीड़ावती ।
चढ़िया पुष्पक-रथे
भ्रमो गिया छायापथे
कर इंद्रचाप-विरचन,
किम्बा करो परीसने चंद्रिका भोजन,
आमि ना करिबो देवी तव आवाहन ।

—हे कवि कल्पना रूपी माया, सत्य की सुनहरी छाया, काव्य-रूपी इंद्रजाल

की भानुमती, क्रीड़ाशीले, तुम्हे जहां भी रहना हो सुख से रहो। पुष्पक विमान पर चढकर चाहे छायापथ में भ्रमण करो और इंद्रधनुष बनाओ या परियो के साथ जाकर चादनी का भोजन करो; किंतु देवी, मैं तुम्हारा आवाहन नही करूंगा—

विधातार ए संसारे यारे ना तुषिते पारे—
जे कविर महती कामना,
से कवि कोरिबे देवी तव उपासना।
तोमार मुकुर परे
हेरे से हरषभरे
छाया तार काया नाही जार—
ततो लोकातीत नय वासना आमार
लक्ष्य मम सामान्य ए सत्येर संसार।

—विधाता का बनाया हुआ यह संसार जिसे तुष्ट नही कर सकता, जिस कवि की कामना इससे महान् है, वही, देवी, तुम्हारी उपासना करेगा। वह तुम्हारे दर्पण में आनंद के साथ उस चीज की छाया देखकर खुश होता है, जिसका शरीर ही नहीं है? मेरी वासना इस प्रकार लोकातीत नही है, मेरा तो लक्ष्य मामूली यह सत्य का संसार है।

ऊपर जो कविता उद्धृत की गई उसको हम पाश्चात्य कवियों का अनुकरण कहकर उडा नही दे सकते, क्योंकि उन्नीसवी सदी में पाश्चात्य कवि भी बहुत अंश मे चांदनी भोजन करते थे। आजकल के उस भारतीय साहित्य के सबध मे, जो आधुनिक दीखते हुए भी आधुनिक नही है, ऊपर उद्धृत की हुई कविता एक अच्छी समालोचना है। यह भी देखने की बात है कि सुरेन्द्रनाथ ने अपनी कविता को बंदो के रूप मे लिखा है।

हरेक युग की कविता मे नारी की पूजा एक प्रधान चीज रही है। कविता की उत्पत्ति के फ्रायडीय सिद्धान्त को यह बात प्रतिपादित करती है। बंगला के प्राचीन साहित्य मे राधा, यशोदा, कौशल्या के रूप मे नारी की पूजा बहुत हुई है, किंतु उर्वशी के रूप मे नारी की पूजा इसी युग की विशेषता है। हम रवीन्द्र-साहित्य की आलोचना के अवसर पर इस विषय पर आयेंगे, किंतु 'उर्वशी' लिखे जाने के पहले उर्वशी भाव से नारी-पूजा की एक बानगी हमे इन्ही सुरेंद्रनाथ मजुमदार की 'महिला' कविता में मिलती है—

वर्णिते ना चाइ ह्रद नदी सरोवर
सिंधु शैल वन उपवन,
निर्मल निर्झर, मरु वालुर सागर,
शीत-ग्रीष्म-वसंत वर्तन ।
हृदये जेगेछे तान,
पुलके आकुल प्राण
गावो गीत खुलि हृदि-द्वार—
महीयसी महिमा मोहिनी महिलार ।

—'मैं झील, नदी, तालाब, सिंधु, पहाड़, वन-उपवन, निर्मल झरना, वालू के सागर मरुभूमि या शीत, ग्रीष्म या वसन्त ऋतु के परावर्तन का वर्णन नही करना चाहता । मेरे तो हृदय मे तान जगी है, प्राण पुलकित हो रहा है, इसलिए मैं हृदय का द्वार खोलकर मोहिनी महिला की महीयसी महिमा गाऊंगा ।

आगे मूल न देकर वाकी कविता का अनुवाद ही दिया जाता है—

—'वह मन की सुषमा का सविलास विग्रह है, आत्मा के आनन्द की प्रतिमा है, कविता के ध्यान का जैसे साक्षात् आकार है, माया की मुग्धमुखी मूर्ति है, हृदय के जितने काम्य हैं, उन सवका संग्रह है । भला मैं रमणी के सम्वन्ध मे आये हुए अपने विचारों को कैसे समझाऊं ?' वह इस संसाररूपी फणी का मंत्र है, महौषधि है ।

इस कविता की कुछ पंक्तियां यों हैं—

एलोकेशे के एलो रूपसी
कोन वनफूल, कोन, काननेर शशी

—वालो को लटकाकर कौन यह रूपसी आई है ? यह कौन-सा वनफूल है, किस कानन का चन्दा है ?

इस युग मे इतने कवि हुए हैं कि उनकी एक-एक पंक्ति भी दी जाय तो एक वडी भारी पुस्तक हो जाय । इसलिए केवल कुछ ही कविताएं देना संभव है । शिवनाथ शास्त्री की ख्याति मुख्यतः एक सुधारक के रूप में है, फिर भी उन्होंने कुछ कविताए लिखी हैं । उनकी 'गभीर निशीये' नामक कविता मे रहस्यवाद का एक अस्पष्ट रूप मिलेगा ।

कवि देवेन्द्रनाथ सेन

कवि देवेन्द्रनाथ सेन तथा अक्षयकुमार वड़ाल रवीन्द्रनाथ के समसामयिक हैं अर्थात् थे, किंतु फिर भी कई दृष्टियो मे उनकी कविता रवीन्द्र-युग के पहले की कविताओं के साथ अध्ययन योग्य है। इसलिए हम इस दौर मे ही उनकी कविता का नमूना देकर इस अध्याय को समाप्त करेंगे। देवेन्द्रनाथ क्या हैं, यह उन्हींके अपने मुह से सुनिये—

चिरदिन चिरदिन रूपेर पूजारी आमि
रूपेर पूजारी
सारासन्ध्या सारानिशि रूपवृन्दावने वसि
हिन्दोलाय दोले नारी आनंदे नेहारि
अधरे रंगेर हास विद्युतेर परकाश
केशेर तरंगे नाचे नागेर कुमारी
वासन्ती ओढ़ना साजे प्रकृति राधिका नाचे
चरणे घुंगुर वाजे आनंदे झंकारि
नगना दोलना कोले मगना राधिका दोले
कविचित्ते कल्पनार अलका उधारि
आमि से अमृत विप पान करि अहर्निश
संसारेर व्रजवने विपिनविहारी।

—हमेशा से, हमेशा से, मैं रूप का पुजारी रहा हू, रूप का पुजारी। सारी संध्या और सारी रात रूप-वृन्दावन के हिंडोरे मे झूलने का मजा लेती रहती है। मैं इसको आनद के साथ देखता रहता हूं। अधरो पर रंगीली हँसी है, मानों विद्युत् का प्रकाश हुआ है, वालो की लहरो मे मानो नागकुमारी नाच रही है। ओढना वासन्ती रग का है, प्रकृति-रूपी राधा नाच रही है, कविचित्त मे कल्पना का उद्रेक होता है। इस अमृत-विप को मैं दिन-रात पीता रहता हूं, इस प्रकार मैं ससार के व्रजवन मे विपिनविहारी हूं।

देवेन्द्रनाथ सेन की रचनाए इस अमिट रूप-पिपासा से ओत-प्रोत है। 'लखनऊ का शरीफा' नामक कविता लीजिये। मामूली फलो को लेकर कवि-कल्पना किस प्रकार अवीर-गुलाव की पिचकारी भरती हुई अठखेनिया करती चलती है—

"मैं अनार नही चाहता, जिसका रग अभिमान से निष्ठुर व्रज-सुन्दरियो के होठों की लालिमा से मिलता है। मैं सेव भी नही चाहता, जो विरह-विधुरा जानकी के मुख-रुचि की पाण्डुरता लिये हुए है। जरा-से रस से भरा हुआ अंगूर, जो नई वहू के लज्जा से दिये हुए चुम्बन की तरह है, वह भी मैं नही चाहता। मैं गन्ने का स्वाद भी नही चाहता जो प्रौढ़-दम्पतियो के प्रगाढ प्रेमालाप की तरह कठिन मे मधुर है। मुझे तो वस वह ऊंची पैदाइश का शरीफा दो, जो लखनऊ के नवावो के उद्यान मे रस से लवरेज लटकता रहता है, किसी नवाव-जादी ने आकर छू भर दिया और फट पड़ा। अहा, यह मृत्यु भी कैसी विचित्र है, किसी रसिका की रसना के ऊपर मरकर रह जाना।"

'आखिर मिलन' नामक कविता लीजिये—

आंखिर मिलन ओ जे—आखिर मिलन।
लोके ना वुझिलो किछु लोके ना जानिलो किछु
दम्पतिर हलो तवु शत आलापन
हलो मन-जानाजानि हलो मन टानटानि
आशाय चिकन हासि मनेर रोदन
विजयार कोलाकुलि आंधारे श्यामार वुलि
प्रेमेर विरह-क्षेते चन्दन लेपन
ओई आंखिर मिलन।

—यह तो आखो का मिलना है आंखो का मिलना, न लोगो ने कुछ जाना, न लोगो ने कुछ कहा, फिर भी पति और पत्नी में सैकड़ो वाते हो गईं। एक ने दूसरे के मन को जान लिया, एक ने दूसरे को खीच लिया, आशा की चिकनी हँसी हो गई, या अभिमान का रोदन हुआ। दशहरे का मिलना हो गया, अंधेरे मे जैसे श्यामा वोल गई, प्रेम और विरह के घाव पर चंदन का लेप हो गया। वात यह है, यह आंखो का मिलना था।"

कवि अक्षयकुमार वड़ाल

अव हम अक्षयकुमार वडाल की 'आह्वान' नामक एक कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते है। इस कविता मे प्रकृति के साथ कवि का कितना निकट संवंध है, फिर उस सवंध को किस प्रकार दार्शनिकता मे अनुवाद

किया गया। आधुनिक कविता केवल उपमा, उत्प्रेक्षा की अनवरत घनघटा नही है। यदि उसमे दार्शनिकता नहीं है, जीवन की सैकड़ो दुर्दांत पहेलियो पर एक झलक रोशनी नही है, जीवन का स्पंदन नही है तो वह कविता ही नही है। कविता बडी है, इसलिए हम केवल उसका अनुवाद ही पाठको के सामने प्रस्तुत करेंगे—

"देखो प्रिया, इस तरु-लता-पुष्प से भरी हुई तथा गिरि-नदी-सागर से समन्वित पृथ्वी को, यह नग्न देह से तथा मुक्त प्राण से आकाश की ओर ताक रही है, न इसमें कोई लज्जा है, न कोई छलना ही। फिर देखो उस महाकाश को, जो मेघों की राशि के साथ रोशनी तथा अंधकार लेकर पृथ्वी के हृदय पर पड़ा है, न उसे घृणा है, न अहंकार। ऊपर तो महाशून्य है और पैरो के नीचे भूमि है, बीच में तुम और मैं हू। नेह है, भूख भी है, हृदय है और हम सुधा की तलाश कर रहे है। होना तो मृत्यु है, लेकिन हम अमरता की चाह करते हैं। दु.ख है, किंतु उससे बचत का उपाय भ्राति है; सुख है किंतु उसमे श्रांति आ जाती है; त्याग है तो संग्रह भी है। जीवन क्या है, आंधी मे सागर की तरह आमरण उठना-गिरना। मैं पूछता हू क्या तुम इसको निभा सकोगी? मेरे हाथो मे हाथ रखकर क्या तुम मुझे समझ रही हो? क्या तुम मेरे मन-प्राण सबकी थाह पा रही हो। यह न तो मिट्टी ही है, न शून्य ही है; पाप भी नही है, पुण्य भी नही है, यह तो आत्मा से आत्मा को अनुभव करना है।

"क्या तुम समझ रही हो कि इसमे कितना आनंद है? जन्म-मृत्यु, स्वर्ग-मर्त्य के द्वारा मैं तुम्हारा किस प्रकार आह्वान करता हू। चित्र मे, शिल्प में, गान मे, मैं तुम्हारा ही ध्यान करता रहता हू। देखती नही हो, हरेक पाषाण पर तुम्हारी रेखा है, तुम्हारे प्रणय का लेखा है, मरणशील जड में तुम्हारी अमर महिमा है।

"प्रेम का सुधापात्र लेकर आओ मेरी देवी, आओ मेरी दासी, आओ मेरी सखी।"

: १५ :

रवीन्द्र-काव्य

कवीन्द्र रवीद्रनाथ बंगला साहित्य के एक व्यक्तित्व नही, वल्कि एक युग है। वह अपनी प्रतिभा की विपुलता, विविवता तथा भास्वरता के द्वारा एक शताब्दी की दो-तिहाई से बंगला साहित्य के आकाश मे जाज्वल्यमान रहे। उनकी प्रचण्ड दीप्ति के सामने पहले के साहित्यिक तथा कविगण टिमटिमाते-बुझते मालूम होते है, समसामयिकगणो की तो हालत जुगनुओं की तरह हो रही है। कभी मालूम होता है, इस अनंत आकाश मे केवल रवीन्द्रनाथ ही है, कभी मालूम होता है साथ मे वे भी है। कवीन्द्र रवीन्द्र केवल बंगला के कवि ही नही, नाटककार, उपन्यासकार, दार्शनिक, चित्रकार, समालोचक, राष्ट्रीय लेखक, भाषा-तात्विक, वैयाकरणिक, अभिनेता सभी है। कलामय अभिव्यक्ति का शायद ही कोई विभाग वचा हो जिसमे उन्होने सफलता के साथ हाथ न लगाया हो। उनकी प्रतिभा जिस दिशा मे भी गई, उसी दिशा मे उसने नवीन पथ काटकर फूलो की फसल खिलाकर रख दी। कहने को कहा जाता है विहारीलाल उनके काव्यगुरु थे। वात यह है कि इस अभागे देश मे कान फूकनेवाला न हो तो कोई सिद्ध नही होता। वह स्वय भी इस वात को प्रतिभा के ही योग्य उदारता के साथ मानते है, किंतु सच वात तो यह है कि एक छत्ते मे कहा-कहां का शहद आकर एक सामंजस्यपूर्ण मिठास मे परिणत हो गया है, यह मधुमक्खी स्वय भी नही कह सकती।

फिर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का काम केवल दूसरे फूलो से शहद लाकर सामजस्यपूर्ण रूप से एक छत्ते मे इकट्ठा कर देना ही नही था, वगला-काव्य-साहित्य मे यदि इस कार्य को किसी वड़े कवि ने किया है तो वह माइकेल है, न कि रवीन्द्रनाथ। माइकेल ने लिखा है, "मैं ऐसा मधुचक्र (मधुमक्खी का छत्ता) वनाऊंगा, जिसपर वगवासी गौरव करेंगे।" उन्होने सचमुच एक छत्ता वनाया। स्मरण रहे इस काव्य-मधुचक्र का निर्माण कोई मामूली काम न था। अंग्रेज कवि मिल्टन ने भी ऐसा ही किया था। पैरेडाइज लौस्ट (Paradise Lost)

मिल्टन की सबसे बड़ी तथा सुदर साहित्यिक कृति है। १७२७ मे प्रसिद्ध फ्रेंच समालोचक वालटेयर ने ही पहले-पहल वतलाया कि जिओवानी वेतिस्सा एन्द्रीनी (Giovanni Battista Andreini) के 'एदोमो' (Adomo) नामक पौराणिक नाटक को (१८३८-३९) देखकर ही मिल्टन ने पेरेडाइज लौस्ट (Paradise Lost) महाकाव्य की परिकल्पना की। विलियम लौडर (William Lauder) नामक एक लेखक ने तो खुल्लमखुल्ला 'इन्क्वायरी इन टू दी ओरिजन आफ पेरेडाइज लौस्ट (Inquiry Into the Origin of Paradise Lost) मे मिल्टन को चोरी का दोषी वतलाकर सनसनी पैदा कर दी। एक उच्च कवि जूस्ट वान डन वोन्डल (Joost Van Den Vondel) की एक रचना 'ल्यूसीफर' (Lucifer) से भी इस मिल्टनीय महाकाव्य का संबंध वतलाया गया। यह तो केवल दो-एक वाते हुई, इसी प्रकार इस महाकाव्य के सबंध मे सैकडो वाते खोजनेवालो ने खोजी। फिर भी अग्रेजी साहित्य मे मिल्टन एक महाकवि ही माने गये, क्योकि उन्होने अगर कही से कुछ लिया तो उसको इतना परिवर्तित कर दिया कि उसकी आत्मा तक वदल गई। यह साहित्य का एक वहुत ही टेढा प्रश्न है कि दूसरो के भाव कहातक अपनाये जा सकते है। इसपर स्वय मिल्टन का ही मत सुन लिया जाय। उन्होंने लिखा है—

"Such kind of borrowing as this if it be not bettered by the borrower, among good authors is accounted plagiary. It is not hard for any man who hath a Bible in his hands to borrow good words and holy sayings in abundance, but to make them his own work of grace only from above."

—इस प्रकार का भाव-ग्रहण, जिसमे ग्रहण के वाद भाव सुन्दरतर नही हो जाते, अच्छे साहित्यिको की दृष्टि मे चोरी कहलाती है। किसी भी व्यक्ति के लिए यह आसान है कि हाथ मे वाइवल लेकर सुभाषित या पवित्र कहावते अधिक-से-अधिक ले डाले, किन्तु उनको अपनी वना लेना केवल ईश्वर-कृपा से ही सम्भव है।

भावग्रहण करके उसे पचाना और सम्पूर्ण रूप से उसे अपना रक्त वनाकर उसे अपनी धमनियो तथा नसो मे प्रवाहित कर देना सशक्तता सूचित करता है, न कि किसी प्रकार की कमजोरी। केवल साहित्यकार ही नही, वैज्ञानिकों ने भी अपने पूर्ववर्तियो से इसी प्रकार ग्रहण किया है।

माइकेल के सामने मिल्टन से कही व्यापक तथा विविध साहित्य खुले हुए थे। संस्कृत-साहित्य का काव्यभाग किसी भी समृद्ध भाषा से पीछे नही था, माइकेल के सामने वह सब साहित्य सुलभ था, जो मिल्टन के सामने था, इसके अलावा संस्कृत का विराट् काव्य-साहित्य भी था। याद रहे, गेटे संस्कृत की शकुंतला पर सबसे ज्यादा मुग्ध हुए थे, यद्यपि उनके सामने पूरा विश्व-साहित्य था।

रवीन्द्रनाथ माइकेल नही थे, फिर रवीन्द्रनाथ को यदि कहा जाय कि वह प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य के समन्वयकर्ता है तो यह भी गलती होगी। यह बात जरूर है कि प्राच्य और पाश्चात्य मे जो कुछ भी उत्कृष्ट है वह रवीन्द्रनाथ मे आकर एकत्र हुआ, किन्तु प्राच्य-पाश्चात्य का यह मिलन बहुत-से और व्यक्तियो में हुआ, किन्तु वह रवीन्द्रनाथ तो क्या, नीम-रवीन्द्रनाथ तक न हो पाये। बगला-साहित्य मे ही बंकिमचन्द्र को ही लीजिये, बंकिमचन्द्र बहुत बड़े साहित्यिक थे। रवीन्द्रनाथ के पहले बगला-साहित्य के नेता, पुरोधा, ऋत्विक वही थे। उनकी प्रतिभा से ही बगला साहित्य को आभिजात्य की मर्यादा प्राप्त हुई थी, किन्तु फिर भी वह रवीन्द्रनाथ नही थे। रवीन्द्रनाथ केवल बगला-साहित्य के ही एक युग के प्रवर्तक तथा पुरोधा है, यह बात नही, विश्व-साहित्य मे उनका दान एक अभिनव प्रकार का है। हमारे हिन्दी-साहित्य मे रवीन्द्रनाथ के प्रभाव का परिमाण कम नही है। ऐसे ही सभी भारतीय साहित्य मे एक नये युग का प्रवर्तन रवीन्द्रनाथ से हुआ। केवल यही नही, यूरोपीय साहित्य मे रवीन्द्रनाथ का प्रभाव बहुत-से कवियों मे स्पष्ट है, इसको बहुत-से यूरोपीय समालोचकों ने भी माना है।

इस स्थान पर हम विशेषकर कवि रवीन्द्रनाथ से ही सम्बन्ध रखते है, किन्तु यह पहले ही बतलाया गया है कि वह एक युगांतरकारी गद्यकार भी है। मजे की बात यह है कि यूरोप मे रवीन्द्रनाथ की ख्याति मुख्यतः एक रहस्यवादी कवि के रूप मे है, किन्तु उनकी अधिकाश कविताए और कुछ भी हो, रहस्यवादी नही है। 'कथा ओ काहिनी', 'वलाका' आदि उनकी अनेक सर्वोत्कृष्ट रचनाओ का रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नही। वे रचनाएं तो मध्याह्न-सूर्य की तरह स्पष्ट है। उनमे कोई रहस्य नही। गद्य में तो रवीन्द्रनाथ शायद ही कही रहस्यवादी के रूप मे आते है। 'अचलायतन', 'गोरा', 'घरे बाइरे' किसीकी भी न

तो बनावट और न उद्देश्य ही रहस्यवादी है। वल्कि जिस जमाने मे ये कृतियां पहले प्रकाशित की गई, उस समय कुछ लोगो ने यही शिकायत की कि इनमे प्रचार-कार्य बहुत ज्यादा है। समग्र रवीन्द्रनाथ को विश्लेपण करने पर देखा जायगा कि सब बाते कहने के बाद नेति-नेति कहते-कहते वह कलाकार भर रह जाते हैं।

"रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा मुख्यतः गीतधर्मी है। यह बगला काव्य-प्रतिभा की विशेपता वताई गई है, किन्तु उसके मूल में कल्पना की जो शैली है, वह भारतीय साहित्य तथा काव्य-पन्था के अनुरूप न होने पर भी भारतीय साधना के आदर्श से अनुप्राणित है। रवीन्द्रनाथ की तरह विशुद्ध भारतीय मानस-प्रकृति वकिमचद्र की भी नहीं है, वल्कि उस दृष्टि से देखा जाय तो वंकिमचंद्र भारत से कहीं बढकर यूरोप के मानसपुत्र हैं। रवीन्द्र-काव्यो में जो वात दिखाई पड़ती है उसमें भारतीय तत्वचिन्ता की प्रेरणा का एक वड़ा भाग है। भारतीय भाव-साधना की जो विशेपता रही है वह यह है कि उसने हमेशा समस्त जगत् को एक रस-चेतना मे अपने अंदर कर लिया है, वह हमेशा भाव को लेकर तृप्त रही है। रूप की अरूप साधना ही इस प्रतिभा की विशेपता थी।...रूप मे भाव को प्रत्यक्ष करना या रूप की भापा मे उसे प्रकाश करना कवि का काम हो सकता है, यह इस भावुकता-सर्वस्व जाति ने कभी सोचा भी नही था।"[1]

ऊपर की विश्लेपण-पद्धति को यदि हम सच माने तो कवित्व की दो मुख्य धाराएं होती हैं, एक रूप की भाव-साधना, दूसरे भाव की रूप-साधना। मैं समझता हूं, मोहितलाल ने ऐसा लिखकर कविता के साथ अन्याय किया है, क्योकि भाव और रूप के अलावा भी कवि का मन एक तीसरी चीज है, जिसको हम भूल नहीं सकते। श्रेणी-विभाग के खब्त मे हमे यह नही भूल जाना चाहिए कि प्रत्येक कवि का हृदय भिन्न होता है। हा, हम चाहे तो कवि-हृदयो को भी श्रेणियों मे विभक्त कर सकते हे, किन्तु फिर भी एक-एक कवि स्वयं ही एक-एक श्रेणी है। मैं पहले ही लिख चुका हूं कि 'कथा ओ काहिनी', 'वलाका', 'गीताजलि' मे हम रवीन्द्र की कवि-प्रतिभा का विभिन्न रूप देखते है। हा, हम

---

[1] आधुनिक बंगला-साहित्य, पृष्ठ १७१

चाहे तो इन सब विशेष कवि-प्रतिभा को एक श्रेणी में ले जा सकते है, किन्तु उस हालत मे हमारी श्रेणी बहुत व्यापक श्रेणी होगी। शायद हमें कवि कहकर ही सतोष करना पडे। रवीन्द्रनाथ की एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता 'उर्वशी' है, किंतु इस कविता मे विशुद्ध कविता ही है। रवीन्द्रनाथ को अंग्रेजी 'गीतांजलि' पर नोबुल पुरस्कार मिला, इसीपर वह रहस्यवादी कहलाये, किंतु मैं इस बात को गभीरता के साथ चुनौती देता हू कि वह केवल सौन्दर्यवादी कवि है। रवीन्द्रनाथ के गीतो का अक्सर झुकाव इसी ओर है, किंतु गीतो को छोड़ दिया जाय तो भी उनकी काव्य-रचना विराट् है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी रहस्यवादी रचनाओ को ही विश्व-साहित्य के दरबार मे पहले-पहल अंग्रेजी अनुवाद मे पेश किया, यह कोई आकस्मिक बात नही थी। मालूम होता है कि वह जानते थे कि यह एक नई धारा है जिसकी यूरोप के विद्वानो मे कद्र होगी, इसलिए उन्होने खास करके इसी चीज को विश्व के सामने प्रस्तुत किया। किन्तु इससे यह निचोड़, निकालना कि रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही है, गलत है। इसके अलावा रवीन्द्र ने रहस्यवाद का जो रूप पेश किया है, वह बिल्कुल नवीन है और कला के जगत् में वह उतना ही नया है, जितना विज्ञान-जगत् मे रेडियम है।

फिर रवीन्द्रनाथ जहा रहस्यवादी हैं वहां भी वह निरे रहस्यवादी इस अर्थ मे नही हैं कि रूप से भाव मे चले जाकर रह जाते हैं। इस माने में तो बिहारीलाल उनसे अधिक रहस्यवादी जान पड़ेंगे, क्योंकि वह रूप से भाव मे गये और वही जाकर बैठ रहे। इसके विपरीत हम रवीन्द्रनाथ को 'भाव से रूप में तथा रूप से भाव में अनवरत आवागमन' करते देखते है। रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद की यही विशेषता मालूम देती है। रवीन्द्रनाथ की यह भाव-साधना ऐसी है कि उसमे भारतीय अध्यात्मवाद को एक नवीन भोगवाद को समर्थन देने के लिए विवश किया गया है। रवीन्द्र-साहित्य मे मनुष्य-जीवन को एक महिमा प्राप्त हुई, जो प्राचीन साहित्य मे कही नही थी। हमारे प्राचीन साहित्य मे देवताओ के ज़रिये से मानव को देखने की प्रथा थी, स्वर्ग के देवताओं की नर-लीला ही एक शब्द मे सारे प्राचीन साहित्य का विषय है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के साहित्य में हम मनुष्य के माध्यम से देवता को देखते है।

रवीन्द्र-प्रतिभा की एक वाक्य मे परिभाषा करने की चेष्टा करते हुए कवि मोहितलाल मजुमदार ने लिखा है, "रवीन्द्रनाथ की कल्पना-शक्ति के मूल मे

अंतर और वाहर, भाव और वस्तु, विचार और अनुभूति की एक सामंजस्यमूलक गीतिप्रवणता है। इसीसे उनके मन की मुक्ति है। इस मुक्ति के आनंद में उनकी कल्पना सभी विरोध तथा सभी संस्कारो को पार कर एक ऐसी रसभूति में अधिष्ठान करती है, जहा जीवन का सब असामजस्य तथा वास्तविकता की सव विपमताएं कवि के प्राण मे भावेक-परिणाम रागिणी मे समाहित होती है।" मुझे फिर कहना पडा, नेति। रवीन्द्रनाथ एक नाम होने पर भी इन नाम के अदर वीस विभिन्न कवि मौजूद है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी काव्य-लक्ष्मी को जो 'जगतेर माझे कतो विचित्र तुमि हे, तुमि विचित्र रूपिणी' कहकर वंदना की है, असल मे यह अक्षरश सत्य है। सचमुच कवि रवीन्द्रनाथ विचित्र है, और पाठकों के प्राणो मे विचित्र रूपो से आते हैं। हम आगे उनके कुछ रूपो पर इस अध्याय मे रोशनी डालेंगे।

वंगला भापा को रवीन्द्र ने जो कुछ दिया है उसकी तुलना नही है। उनकी प्रतिभा के वरद स्पर्श से वंगला भाषा को जो सगीत और नमनीयता प्राप्त हुई, वह अतुलनीय है। वाद मे वंगला को शायद और रवीन्द्रनाथ के समान प्रतिभाशाली पैदा करने का गौरव प्राप्त हो, किंतु वंगला भापा को रवीन्द्रनाथ जिस प्रकार वदल गये, उस वदलने-वनाने का गौरव फिर किसीको नही मिलेगा। आज वगला मे रवीन्द्रनाथ के पैदा होने का फल यह हुआ है कि इस भाषा में वैज्ञानिक भी लिखता है तो उसकी भापा मे कविता का पुट होता है।

भापा की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इस प्रकार सर्वव्यापी होने पर भी, रवीन्द्र-धारा के वहुत ही कम सफल अनुयायी वगला भापा मे पैदा हुए हैं। इसके वहुत-से कारण वताये गए हैं, किंतु मैं समझता हूं कि इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि रवीन्द्रनाथ ने स्वयं ही अपनी शैली की सारी संभावनाओ को अपनी सुदीर्घ साहित्यिक आयु मे खत्म कर डाला। दूसरा कारण यह है कि सारे रवीन्द्र-साहित्य का मूल रवीन्द्रनाथ के विपुल व्यक्तित्व मे था। उसका चारों तरफ के समाज से उतना ही सवंध था जितना एक तार से झूलते हुए गमले में रोपे हुए पेड का जमीन के साथ होता है। महर्षि देवेन्द्रनाथ के पुत्र रवीन्द्रनाथ मे प्राच्य और पाश्चात्य की सवसे अच्छी वातें थी। रवीन्द्रनाथ लडकपन से ही स्कूल से फरार रहे, किंतु उन्होने इंग्लैंड मे जाकर अंग्रेजी का अध्ययन किया, देश मे भारतीय साहित्य का अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व जरूर चारों

तरफ के भारतीय समाज की ही उपज है, किंतु यदि जन-साधारण की दृष्टि से देखा जाय तो उससे उनका ऊपर बताये गए ढब में कंद पौधे की तरह कोई सीधा संबंध नही है। हां, एक बात मे रवीन्द्रनाथ का सबंध जनता से बहुत करीब है, वह यह कि उनकी सांगीतिक आत्मा बिल्कुल बंगाल की जनता की सांगीतिक आत्मा के साथ अभिन्न है। जर्मन कवि गेटे की तरह जनता के सगीत से रवीन्द्रनाथ ने अनुप्रेरणा ली है, यह एक कारण है कि रवीन्द्रनाथ के काव्य मे एक मादक आकर्षण है, जिससे बचना मुश्किल है।

यह सबकुछ कह चुकने पर भी रवीन्द्रनाथ का गद्य तथा पद्य मध्यम श्रेणी का साहित्य हे। कहा जाता है, हमारे देश मे केवल इसी श्रेणी का साहित्य हो सकता था, क्योंकि जिसको जनता कहते है, उसका अस्तित्व इतना निम्नकोटि का है, करीब-करीब पाशविक है कि वह उच्च साहित्य का विषय ही नही हो सकता। ऐसा जो लोग कहते हैं, वे कहते हैं। जिन लोगो में न अभिसार है, न विरह की तड़प, न रिझाने की वृत्ति है, न प्रेमभिक्षा है, बस एक तरह से जबर्दस्ती काम-पिपासा शात करना भर है, उनमें प्रेम की कविता क्या हो सकती है?

यह एक बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है। मौलिक कारणो पर बिना गये इनपर कुछ फैसला नहीं हो सकता, फिर भी साहित्यिक ढंग पर ही मैं एक बात कहना चाहता हूं। वह यह कि कवीन्द्र ने ताजमहल पर एक सुन्दर कविता लिखी है। इसमे इस ऐतिहासिक इमारत को एक विरही के प्रेम-अर्घ्य के रूप मे न मालूम कितने तरीको से देखा, समझा और दिखलाया गया है। यदि कोई मान भी ले कि यह एक सम्राट् का अपनी प्रियतमा के प्रति प्रेम-अर्घ्य है, या उनके आंसुओ का प्रस्तरी-भूत रूप है; इत्यादि, फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि एक गरीब स्त्री जो अपने स्वर्गगत पति की मिट्टी की कब्र पर जाकर रोज़ शाम को बिलानागा एक छोटा-सा दीया जला आती है, और जाकर चार आंसू रो आती है, जिनसे सींचे जाकर एक गुच्छा दूब हरी बनी रहती है। उसका वह छोटा-सा मिट्टी का दीया, जो शायद उस स्त्री के पीठ फेरते ही बुझ जायगा, या वह घास का गुच्छा किस भाति उस ताजमहल से निकृष्ट है? क्या प्रेम के राज्य मे इस सिक्के का दाम उस सिक्के से कम है? क्या प्रेम के राज्य मे भी रुपयो से चीजे छोटी-बडी होती हैं? इसपर यह कहा जा सकता है कि मिट्टी का दीया कला की वस्तु

नही, किंतु ताजमहल है। लेकिन इससे साफ हो जायगा कि ताजमहल की भावुकता-पूर्ण व्याख्या (जो कवीन्द्र की 'ताजमहल' नामक कविता का विषय है) से ताज-महल के वडप्पन का कोई सबध नही है। इस व्याख्या का खोखलापन इस बात से और भी जाहिर हो जाता है कि मुमताज के अलावा शाहजहां की और भी प्रियाए थी। इस बात के मालूम होने के बाद ताजमहलप्रेम के स्मारक के बजाय शायद गर्व की मीनार जचे।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे शायद रवीन्द्रनाथ के साथ कुछ अन्याय हो, इसलिए यह कह देना आवश्यक है कि दुनिया के ९० फीसदी साहित्य के विरुद्ध यह समालोचना की जा सकती है। जमाना वदल रहा है। भविष्य के कवियो की वीणाएं दूसरे सुर मे वजेगी, इसमे सन्देह नही, किंतु वगला-साहित्य मे कुछ भी हो, उसके आदर्शो मे कितनी ही क्राति हो, फिर भी भापा के रूप मे रवीन्द्रनाथ वगला भापा को जो सौंदर्य, नमनीयता और रूप दे गये, उसके ऋण से उऋण कम-से-कम कोई वंगला-भापी नही हो सकता।

इस अध्याय मे हम पहले भी कह चुके है और फिर भी कहते है कि रवीन्द्रनाथ केवल एक सौन्दर्यद्रष्टा कलाकार थे, जैसा कि यूरोप मे लोग कम समझते है और भारतवर्ष मे भी इस सम्वन्ध मे भ्रम है। मैंने यह भी वतलाया है कि इस भ्रम की उत्पत्ति अंग्रेजी गीताजलि से हुई। अग्रेजी गीताजलि को पढ़कर लोगो ने कहा रवीन्द्रनाथ केवल अध्यात्मवादी कवि है, लोग इस भूल को वार-वार दुहराते गये, वस यह एक सत्य मान लिया गया। रवीन्द्रनाथ ने जो और हजारो कविताए लिखी थीं, जिनसे अध्यात्मवाद से कोई सवध नही था, जो केवल सौंदर्य की एक-एक लडियां थी, उनको लोग भूल गये और रवीन्द्रनाथ एक अर्द्धधार्मिक कवि समझ लिये गए! मुझे आश्चर्य है कि रवीन्द्र-काव्य के वगाली समालोचको तक ने इस अजीव वात को कम लोगो मे आविष्कार किया और वे इस भूल के प्रवाह मे वहते चले गये। अंग्रेजी मे ही golden boat (सोनार तरी) नाम से रवीन्द्रनाथ की कविताओ का एक अनुवाद निकला। इसमे शायद दो-चार कविताये आध्यात्मिक ढंग की हो, किंतु फिर भी रवीन्द्रनाथ पूरे नही समझे गए। दो-एक उदाहरण लिये जाय, पाठक स्वय ही अपनी राय कायम कर ले।

एक नक्षत्र की आत्महत्या

एक नक्षत्र आकाश से पागल की तरह समुद्र के काले पानी में कूद पड़ा। करोड़ों दूसरे नक्षत्रों ने इस आत्महत्या को भीत तथा चकित होकर देखा। देखा कि किस भांति प्रकाश का एक परमाणु, जो उनके साथ था, बात-की-बात मे अंधकार मे विलुप्त हो गया। यह जाकर समुद्र के चट्टानी गर्भ तक पहुंच गया, जहां सैकड़ो नक्षत्र जिनका प्रकाश लुप्त हो चुका, बिखरे पड़े हुए थे।

आखिर इस आत्महत्या की मर्म-कथा क्या थी? केवल मैं ही जानता हूं कि उसकी इस रौनक़ में कौन-सी बात उसे खाये जा रही थी।

यह अनवरत हँसी की यंत्रणा थी। एक जलता हुआ कोयले का टुकड़ा अपने कालेपन को छिपाने के लिए हंसता है। जितना ही वह हँसता है उतना ही वह जलता है। उसी तरह यह नक्षत्र हँसा और उज्ज्वल हो गया। फिर जब जलने की यंत्रणा उससे और बर्दाश्त नहीं हुई तो वह प्रकाश के जगत् से समुद्र के ठंडे काले पानी में कूद पड़ा।

करोड़ों उज्ज्वल नक्षत्रों ने इस पतित नक्षत्र की ओर देखा और वह घृणा से हँस पड़े।

उन लोगों ने कहा—"भला हमें क्या हानि है! आकाश तो उसी तरह उज्ज्वल बना है।"

यदि कोई तुला हुआ ही हो तो इस कविता का भी रहस्यवादी अर्थ हो सकता है, किन्तु जैसी यह है वह बिना व्याख्या के ही हमारी समझ में आती है। इसकी किसी आध्यात्मिक या अतीन्द्रिय व्याख्या की जरूरत नहीं।

एक दूसरी कविता लीजिये—

प्रेतात्मा

जब वृद्ध मरने लगा तो सारा देश रोया-पीटा, सिर धुना और कहा—"प्रभो, तुम्हारे बगर हमारा काम कैसे चलेगा?"

वृद्ध मन-ही-मन यह सोचकर परेशान हो रहा था कि यदि मैं मर गया तो इनको राहेरास्त पर कौन कायम रखेगा। हाय!

देवताओं ने जाति की प्रार्थना सुन ली और यह हुक्म दिया कि वृद्ध मरने पर प्रेत होकर देश में रहेगा। मनुष्य तो मर जाते हैं, किन्तु प्रेत अमर होते हैं।

जाति की जान-में-जान आई।

बात यह है कि जब दृष्टि भविष्य पर निबद्ध होती है तभी परेशानी होती है, जब आंखें केवल भूतकाल पर रहती हैं तो परेशानियां खत्म हो जाती है। फिर तो सारी जिम्मेदारियों को भूतकाल के सिर मढ़ दिया जाता है और भूतकाल एक प्रेत के रूप में जीता है।

फिर भी कुछ लोगों ने हर बात पर भूतकाल से अनुप्रेरणा लेने की बजाय सोचना चाहा। प्रेत ने उनके कान पकड़कर खींचे, बात यह है कि उसकी कंकाल-लय उंगलियों से कोई बच तो सकता ही नहीं था।

आंखो को तथा मन को बन्द कर सारा देश प्रेत के नेतृत्व मे चलने लगा। बूढ़ों तथा विद्वानों ने कहा—इसी प्रकार चलना ही पृथ्वी की पुरानी परिपाटी के अनुसार है। जीवन की उषा के समय दृष्टिशक्तिहीन सरीसृप भी इसी तरह चलते थे, पेड़-पौधे अब भी ऐसा करते है, इसीमे उनकी बुद्धिमानी है।

प्रेताविष्ट जाति ने बड़े-बूढ़ो की यह बात जो सुनी तो उनमे आनंद की एक लहर दौड़ गई कि उनके बाप-दादे ऐसा ही करते थे और आदिम पृथ्वी के आदिम सरीसृप तक ऐसा ही करते थे।

देश के चारो ओर कारागार की तरह एक चहारदीवारी बन गई। हां, ये दीवारें अदृश्य थीं, इसलिए कोई भी जानता नही था कि इनको कैसे पार किया जाता है या इनसे कैसे भागा जा सकता है।

कैदी जाति प्रेत के नेतृत्व में गुलामी करती रही। कड़े परिश्रम का नतीजा यह हुआ कि विद्रोह का जोश जाता रहा। वह डरपोक हो गई। फलस्वरूप इस प्रेत के राष्ट्र में चाहे स्वास्थ्य, अन्न, वस्त्र की कमी हो, किन्तु शांति की कमी नही रही।

ऐसे ही दिन बीतते गये। जाति सन्तोष में रही, मानो वह प्रेत के गाड़े हुए इस्पात के खूंटे में बंधा हुआ एक भेड़ का बच्चा हो।

किंतु दिक्कतें पैदा होने लगी। पृथ्वी की किसी और जाति पर प्रेत का राज्य नहीं था, इसलिए दूसरे देशों में उन्नति का रथ जल्दी-जल्दी आगे ही बढ़ता गया। ऐसी जातियां थी, जिन्होंने प्रेत की प्यास बुझाने के लिए एक भी बूंद रक्त नही दिया था, इसलिए उनकी शक्ति का क्षय होने के कारण वे बिल्कुल जिन्दा थी।

बूढ़ो ने भूतकाल की अपनी पोथियो तथा पत्राओं को देखा और एक स्वर से कहा—दोप न तो हमारा है, न तो हमारे शासक प्रेत का ही है, बल्कि समस्याओं का है। भला इन समस्याओ का क्या काम था कि ये होतीं ?

जाति ने जब बूढ़ों की इन बारीक बातों को सुना तो उसे तसल्ली हुई।

किंतु दोष चाहे किसी का हो, समस्याओ की वृद्धि को कौन रोक सकता था ? कुछ दिनो के अंदर समुद्र पर से टिड्डियों की तरह विदेशियों के झुंड आने लगे और फसलों से भरे खेतो को चाट डालने लगे। ये विदेशी व्यावहारिक बुद्धि के व्यक्ति थे, इनमें काम करने की शक्ति थी तथा दूरदर्शिता थी। प्रेताविष्ट होने के कारण जाति ने या तो इनकी अवज्ञा की थी, या इनसे दूर रही, जिससे कि कहीं धर्म-नाश न हो जाय। तब बूढ़ों ने फिर किताब खोली, और कहा—वे ही सौभाग्यवान हैं, जो दुनिया के रगड़ों-झगड़ों से दूर रहते है।

लोगों ने सुना, और उनके हृदय की तसल्ली हुई।

किंतु फिर भी वह प्रश्न जो लोगों को परेशान कर रहा था, हल नहीं हुआ—"फिर इन उजड़े हुए खेतों से लगान कैसे दिया जाय ?"

कब्रिस्तान से हहराती हुई एक हवा आई, जैसे किसी प्रेत की हँसी हो। उसने कहा—अपनी इज्जत से दो, हृदय के रक्त से दो, अपनी आत्मा से दो।

जब प्रश्न आते हैं तो उनकी झड़ी-सी लग जाती है।

इसलिए एक दूसरा प्रश्न उठा—क्या प्रेत का राज्य चिरस्थायी है ?

दादे और दादियां धक से रह गईं, कहा—हमने ऐसा प्रश्न कभी सात जन्म में भी नहीं सुना था। भला यह भी कभी हो सकता है कि यह राज्य न रहे।

प्रेत के कर्मचारियों ने व्यंग की हँसी हँसकर कहा—कोशिश करके देखो कि कभी ये अदृश्य दीवारें टूट भी सकती हैं।

सच बात तो यह है कि भूतकाल न तो मरा ही था न जिंदा था, बल्कि यह प्रेत रूप में था। कभी न तो इसने देश में कोई उथल-पुथल ही मचाई, और न वह देश को छोड़कर चला ही गया।

एक या दो आदमी, जो दिन में मुंह इसलिए नहीं खोलते थे कि कहीं राजद्रोह न हो जाय, उन्होने रात को प्रेत से कहा—प्रभो, क्या अभी तुम्हारा जाने का समय नहीं हुआ ?

प्रेत हँसा और बोला—अरे सरल, हम कैसे तुझे छोड़कर जा सकते

हैं, जब तू हमसे जाने को नहीं कहता ?

उन लोगों ने कहा—प्रभो, हममें से बहुतेरे तुम्हारे जाने के नाम से घबड़ाते हैं।

प्रेत फिर हँसा।—"तुम्हारे भय के स्तम्भ पर ही मैं राज्य कर रहा हूं।" उसने कहा।

यदि कोई कहे कि इस कविता मे कुछ अस्पष्टता है तो हम नही मानेंगे। यह तो बूढे धर्मपीड़ित भारतवर्ष का एक चित्र है, इसका उद्देश्य स्पष्ट है। कवि के हृदय मे भारतीयों के रूढ़िवाद से चोट लगी है, यह कविता उसीका स्फुरण मात्र है। फिर भी इस कविता मे उद्देश्य ही सबकुछ नही है। जिस कलामय तरीके से यह कहा गया है, वही उसे कविता बनाता है। हम इसी प्रकार की कवीन्द्र की सैकड़ो कविता दिखा सकते है, जहा केवल सौन्दर्यान्वेषण है।

रवीन्द्रनाथ की बहुत-सी कविताए ऐसी हैं, जिन्हे हम काव्यमय कहानी कह सकते है, इनमे किसी एक भाव को लेकर अत्यंत कलामय चुभती हुई भाषा में एक कहानी कही गई है, पाठक के हृदय में एक टीस या आनंद की लहर छोड़ जाती है। यह कहा जा सकता है कि इन कहानीमूलक कविताओ मे कवि अपनी कला के शिखर पर नही पहुचे, किंतु यह गलत है। आश्चर्य तो बल्कि इस बात से होता है कि दैनिक छोटी घटनाओं को लेकर कवि कैसे कला के उत्तुंग सौध का निर्माण करते हैं।

डाक्तर जा बले बलुक नाको
राखो राखो खुले राखो
शिओरेर ओई जानला दुटो, गाये लागुक हावा।
ओषुध? आमार फुरिये गेछे आयुष खावा।
तितो कड़ा कतो ओषुध खेलाम ए जीवने,
दिने दिने क्षणे क्षणे।
बेंचे थाका, सेई जेनो एक रोग;
कतो रकम कविराजी, कतोई मुष्टियोग
इत्यादि[1]

---

[1] पूरी कविता न देकर आगे हम केवल उसका अनुवाद दे रहे हैं। पाठक इस कविता के छद को देखें।

"डाक्टर चाहे जो कुछ भी कहे, रहने दो, सिरहाने के उन दो जंगलो को खुले रहने दो, जरा वदन मे हवा लगने दो। दवा ? दवा पीना मेरा खत्म हो चुका है। जिन्दगी में मैंने कितनी ही दवा खाई, रोज खाई, क्षण-क्षण खाई। वैद्य की दवा खाई, फुटकर दवा खाई, किंतु क्या फायदा ? जरा इधर-से-उधर हुआ नही कि फिर वही। यह अच्छा यह खराव, जो जो कुछ कहता था सवकी वातो को मानती हुई, घूघट काढ़कर मैंने तुम्हारे घर मे वाईस साल काट दिये। तभी तो घर मे और घर के वाहर सभी मुझे लक्ष्मी कहते है, अच्छी वतलाते है। इस घर मे मैं नौ साल की एक लडकी आई थी, फिर इस परिवार की गली से होकर तमाम लोगो की इच्छा का वोझ उठाती हुई मैं अपने रास्ते के अंत में पहुची।

"सुख-दु:ख की वात जरा सोचू, इतना समय नही था। यह जीवन अच्छा है, या बुरा, या और कुछ, कुछ आगा-पीछा सोचू इतना मौका कव मिला ! एक इकरस क्लांत धुन मे काम का चक्का घूमता रहा। वाईस वर्ष तक मैं एक ही चक्के मे वधी रही, घुमनी मे अंधी वनी हुई। मुझे मालूम ही नही हुआ मैं क्या हूं। मुझे यह भी मालूम नही हुआ कि यह पृथ्वी भी कोई चीज है और उसका कोई अर्थ भी है। मैंने यह कभी नही सुना कि मनुष्य की कोई वाणी है, जो महा-काल की वीणा मे झंकृत हो उठती है। मैं सिर्फ यही जानती थी कि पकाने के वाद खाना है, और खाने के वाद पकाना है। वाईस साल तक मैं एक ही चक्के मे वंधो रही। अव मालूम होता है कि वह चक्का वद होनेवाला है। तो होने न दो। अव दवा की क्या जरूरत ?

"वाईस वसत आये थे। गध से विह्वल दक्षिण वायु ने जल और स्थल मे एक उत्तेजना पैदा की थी। उसने चिल्लाकर कहा होगा—खोलो, किवाड़ खोलो—किंतु मैं भला कव जान पाती थी कि वह कव आई और कव सिर टकराकर चली गई ! शायद वह धीरे-से आकर मेरे मन को छू देती थी, शायद उससे घर के काम मे कुछ गलती हो जाती थी, हृदय मे जैसे कोई पिछले जन्म की व्यथा छू जाती थी, अकारण ही जैसे किसीके पैर की आहट सुनकर विह्वल फागुन मे मन उचट जाता था। तुम शाम को दफ्तर से लौटते थे, फिर कही मुहल्ले मे शतरज खेलने जाते थे। जाने दो उन वातो को ! हाय, आज यह सव क्षणिक व्याकुलता की वाते क्यो याद आ रही है ?

'आज पहली बार वाईस वर्ष के वाद वसंत इस घर में आया है। जंगले से आकाश की ओर ताकते हुए मन आनद से सिहर-सिहर उठता है। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मैं नारी हू, महीयसी हूं, मेरे ही सुर मे निद्रा-हीन चंद्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना रूपी वीणा को बांधा है। यदि मैं न होती तो सांध्य नक्षत्र का निकलना व्यर्थ होता, तथा उद्यान मे फूलो का खिलना अर्थहीन होता।

'बाईस वर्ष तक मैं तुम्हारे इस घर मे कैदिन थी। फिर भी उसके लिए दुःख नही था। बात यह है कि सुधबुधहीनता में दिन बीत जाते थे, यदि जीती तो और भी बीत जाते। जहांपर जो भी हमारे रिश्तेदार थे वे मुझे लक्ष्मी कहते थे, मानो इस जीवन मे ऐसी कहलाना ही मेरी परम सार्थकता थी। घर के कोने में रहना, और वहीं से लोगो की इस किस्म की तारीफे सुनना। आज न मालूम कब मेरे बंधन की वह रस्सी कट गई। आज वहांपर, जहां जन्म तथा मृत्यु एक तटहीन मुहाने मे जाकर मिल गये है, मैं देखती हूं कि रसोईखाने की दीवारें जरा से बुलबुले की तरह विलीन होगई है। इतने दिनो में, मालूम होता है, पहले-पहल विवाह की वशी विश्व-आकाश मे वज रही है। तुच्छ बाईस साल आज घर के कोने के धूल में पड़े रहे। मृत्यु की सुहागरात मे आज जो मुझे बुला रहा है वह मेरे द्वार मे प्रार्थी वनकर आया है, वह केवल मेरा प्रभु नही है, इसलिए वह मेरी अवहेलना नही करेगा। मुझमें जो सुधा-रस है, वह आज उसे मांग रहा है। ग्रहताराओ की सभा मे वह निर्निमेष नेत्रो से मेरे मुंह की ओर टकटकी लगाये खड़ा है। यह भुवन मधुर है, हे मेरे अनंत भिखारी, मेरे मरण, व्यर्थ वाईस वर्षों के काल के पारावार से मुझे पार कर दो।"[1]

इस कविता मे कुछ भी अस्पष्टता नही है। इसमें नारी, विशेषकर भारतीय नारी की अत्यत मर्मभेदी कहानी है। नारी की दयनीय पराधीन दशा का इसमे चित्र है। सच है, इसमे नारी को आधुनिका की तरह विद्रोह की तलवार झनझनाते नही सुनते, परंतु उसे एक भाग्यवादी (Fatalist) की तरह अपने अंत का आवाहन करती हुई पाते है, किंतु क्या यही हमारे यहा की नारी का सच्चा चित्र नहीं है ? 'उर्वशी' तथा अन्य ऐसी कविताओं मे कवीन्द्र ने नारी को कल्पना के रंगीन चश्मों से देखा है, किंतु बंगाली मध्यवित्त श्रेणी की नारी का जो चित्र 'मुक्ति'

[1] पहली वार यह कविता सबुजपत्र (वैशाख १३२५) मे छपी।

कविता में दिखलाया गया है वह वास्तविक है।

रवीन्द्र-समालोचना मे उनकी 'उर्वशी' की आलोचना एक मुख्य वस्तु है। कवि मोहितलाल ने इस कविता की विस्तृत आलोचना की है, हम पहले उसे उद्धृत करेंगे, फिर अपना वक्तव्य देंगे। वह लिखते हैं—

"रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' नामक कविता भाषा, छंद तथा चित्र-रचना के इंद्र-जाल की दृष्टि से कितनी भी मनोहर हो, उसमे कवि अपनी मूल कल्पना से हट गया है। उर्वशी का जो चित्र इसमे प्रकट हुआ है, उसमे सौंदर्य देवी को कामना की देवी के रूप मे देखने मे किसीको आपत्ति नही हो सकती, वल्कि उसका यही रूप यहांपर रंग लाता है, किंतु वात तो यह है कि कवि ने उर्वशी को आदर्श सौंदर्य की आदि प्रतिमा रूप मे कल्पना कर ऐसे चित्र तथा विशेषणों का प्रयोग किया है कि उनसे विरोध की उत्पत्ति हुई है। कवि ने इस कविता में कामना को जो रूप दिया है, वह पाठक को मुग्ध करता है, किंतु इस कामना से ही उन्होंने सौंदर्य का जो आदर्श खडा किया है, जरा सोचकर देखा जाय तो वह इस कल्पना का विरोधी मालूम होगा। इसलिए सौंदर्यतत्व की दृष्टि से मैं इस कविता का जरा विश्लेषण कर दिखाना चाहता हूं।

कवि कहते हैं—

आदिम वसंतप्राते उठेछिलो मंथितो सागरे,
डान हाते सुधापात्र विषभांड लये वाम करे।

'उर्वशी आदिम वसंत के प्रात काल मे सागर को मंथित कर उठी थी, उसके दाहिने हाथ मे अमृत का पात्र और वाये हाथ मे विषभांड था।' अच्छी वात है, किंतु जहांपर विषभांड की भावना थी वहा विशुद्ध सौंदर्यानुभूति की वात नही आ सकती, काम या प्रेम की ही वात वडी हो उठती है। सुन्दर वस्तु से हमेशा आनद ही मिलता है (A thing of beauty is a joy for ever), विशुद्ध सौंदर्य-प्रेम जहां है, वहां विष भी अमृत हो उठता है। उर्वशी का रूप जिस कामना को उद्रेक करता है, उसमे

मुनिगंण ध्यान भाङि देय पदे तपस्यार फल
तोमार कटाक्षघाते त्रिभुवन यौवन चंचल
अकस्मात पुरुषेर वक्षोमाझे चित्त आत्महारा,
नाचे रक्त धारा।

—मुनियो का ध्यान भंग हो जाता है, वह अपनी तपस्या का फल तुम्हारे चरणों मे सौंपते हैं, तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चंचल हो जाता है, अकस्मात पुरुष के हृदय मे चित्त अपनेको खो बैठता है, उसके रक्त की धारा नाच उठती है।

कवि किस सौंदर्य की वंदना कर रहे हैं ? कवि ने जिसका उद्‌बोधन—

नहो माता, नहो कन्या नहो वधू

—'माता नही हो, कन्या नही हो, वधू नही हो'—कहकर किया है, वह, चाहे उषा के उदय की तरह 'अनवगुंठिता' और 'अकुंठिता' हो, किंतु उसके कटाक्ष के आघात से यदि त्रिभुवन यौवन-चचल हो उठे तो भी माता, कन्या या वधू न होना उसके लिए गौरव की वस्तु नही हो सकती, वह मोहिनी है तथा समाधि के लिए विघ्नस्वरूपा स्वर्गवेश्या मात्र है, इसलिए उसका सर्वांग निखिल के नयन के आघात से रोयेगा, यह अधिकतर सत्य है। इस प्रकार सौंदर्य का उदय केवल आदियुग मे ही नही, हर युग मे मानवचित्त मे होता रहता है। यह सौंदर्य स्वर्ग का उदयाचल नही है, मर्त्य का उदयाचल और अस्ताचल उभयाचलवासी है। इसके लिए जो क्रन्दन है वह आदियुग से आजतक निरवच्छिन्न रूप से होता जा रहा है। इस कविता मे परस्पर-विरोधी कल्पना का और भी प्रमाण यह है कि जिसे कवि ने बालिका के रूप मे अबेरे सागर के नीचे अकलंक हास्यमुख मे प्रवाल के पलंग में सोते देखा है और जिसको यौवन में अपने कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन को यौवन-चंचल करते देखा है उसीको कवि पूछते हैं—

वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि
कबे तुमि फुटिले उर्वशी ?

—वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकसित होकर, हे उर्वशी, तू कब खिली ?

प्रश्न तो यह है रवीन्द्रनाथ की तरह कवि की कल्पना मे ऐसी गड़बड़ी क्यो आ गई ? इसका एकमात्र उत्तर यह है कि यूरोपीय काव्य के अत्यधिक प्रभाव के कारण कवि अपने कवि-धर्म को भूल गया है, इसलिए कल्पना मे सामंजस्य भी जाता रहा। यह उर्वशी न तो लक्ष्मी है, न वेद-पुराण की उर्वशी ही है, न रवीन्द्रनाथ के अपने मन की ही कोई सृष्टि है। यह उर्वशी काम-जननी एफ्रोडाइट का नया यूरोपीय रोमांटिक संस्करण है—प्रेम की माता (Mother of love) साथ ही

संघर्ष की माता (Mother of strife)। यूरोपीय काव्य में सौदर्य के साथ कामना तथा वेदना की अपूर्व उत्कंठा ने मिलकर साहित्य को मनुष्य-जीवन की वास्तविकतम अनुभूति की अभिव्यक्ति में परिणत किया है, जिसके मर्मस्थल से 'हमारे सबसे मधुर गीत वे है, जो सबसे वेदनापूर्ण भावना को व्यक्त करते हैं' (Our sweetest songs are those that tell of saddest thought) कवि की यह कातर उक्ति निकलती हैं। रवीन्द्रनाथ यहां सौंदर्य के उसी आदर्श से आकृष्ट हैं, किंतु इस प्रकार होने पर भी रूप की यह पार्थिवता तथा इंद्रिय-सर्वस्वता को उन्होंने तहेदिल से ग्रहण नहीं किया है। इसलिए उनकी उर्वशी 'नन्दनवासिनी' तथा सुरसभा की नर्तकी होने पर भी वह उसे

'स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे उषसी'

—स्वर्ग के उदयाचल मे तुम मूर्तिमती उषसी हो—यह कहकर ऋषि के ऋकमंत्र से उसे वंदना करते नहीं हिचकते। फिर उसीके नृत्य के सम्बन्ध मे कहते हैं—

छंदे छंदे नाचि उठे सिंधु माझे तरंगर दल
शस्यशीर्षे शिहरिया कांपि उठे धरार अंचल

—'उसके छन्द मे समुद्र में लहरें नाच उठती है तथा शस्य के सिर पर पृथ्वी का आंचल कांप उठता है।' जो ऐसी कामना-लेशहीन प्राकृतिक सौंदर्य की महिमा मे महिमामयी हैं, जिसके 'स्तनहार से दिगन्त मे नक्षत्र बिखर पड़ते हैं', उन्हींके 'कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चंचल हो जाता हैं' और 'पुरुष के वक्ष में चित्त आत्महारा होता है और रक्त की धारा नाचने लगती है।' उर्वशी की कल्पना में यह परस्पर विरोधी-भाव ने कविता में रस के पूर्ण परिपाक होने मे बाधा पहुंचाई है। कामना की जो दिशा इसमे स्पष्ट हुई है उसे पूर्ण रूप से प्रकट नही किया गया, उर्वशी के बाये हाथ में कवि ने जो विषभांड दिया है उसमे अनन्त-यौवना उर्वशी का वह कटाक्ष का आघात और

जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आंका तवो चरण-शोणिमा

—'जगत की अश्रुधारा से तुम्हारे तनु की तनिमा धुली है और तुम्हारे पगचिह्न त्रिलोक के हृदय के रक्त से अंकित हैं' तथा 'मुक्तवेणी विवसना' आदि कहने से कवि के मन में जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही इस कविता का प्रधान

रस है। वह कामना और कामना की विषजर्जर क्रन्दन-उत्तेजना करने में ही यहां मधुरतम गीत की सार्थकता है। जिस अंग्रेजी कविता का प्रभाव इस कविता पर है, मुझे ऐसा विश्वास है कि वह स्विनवर्न की 'एटलान्टा इन केलीडन' है। उसके सुविख्यात 'कोरस' (Chorus) से कुछ उद्धृत करने पर ही पाठक समझ जायेंगे कि मैंने इस प्रभाव की बात को क्यो कहा है, और यह भी समझेंगे के स्विनवर्न की इस कविता में रस कितना गाढ और उज्ज्वल हो गया है, इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ की कल्पना (चूकि वह रक्तमास का विक्षोभ तथा काम की प्रधानता स्वीकार नही करती) इंद्रियार्थ को अतींद्रिय भावविलास मे कितनी ग्रस्त होकर रह गई है।

इस कविता को मैंने संक्षेप मे उद्धृत किया। रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' पर इस कविता का प्रभाव है या नही, यह प्रश्न इस क्षेत्र मे अप्रासंगिक है। रवीन्द्रनाथ ने अनुकरण और स्वीयकरण (अपना कर लेने) मे जो भेद बताया है वह इस समय याद दिलाना चाहता हूं। रवीन्द्रनाथ की कल्पना में स्विनवर्न की ऐफ्रोडाइट ने बहुत-कुछ आवेग पहुंचाया है इसका यथेष्ट प्रमाण उद्धृत अंशों से मिलेगा। स्विनवर्न की ऐफ्रोडाइट का सौंदर्य जैसे—

An evil blossom.. blood red and bitter of fruit...And the seed of it laughter and tears (अशुभ यह पुष्प...रक्त-सा लोहित, फल कडवा, उसका बीज हास्य और अश्रु) ठीक इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की उर्वशी भी—

'''उठेछिलो मंथितो सागरे,
डान हाते सुधापात्र, विषभांड लये वाम करे'[1]

स्विनवर्न की ऐफ्रोडाट ऐसे ही

Sprung of the sea without root
Sprung without graft from the years

—समुद्र से विना जड़ के उद्भुत महाकाल से विना कलम के उत्पन्न उसी तरह कवीन्द्र उर्वशी को प्रश्न कर रहे है—

---

[1] सागर को मथकर दाहिने हाथ में सुधापात्र और बायें हाथ नें विषभाड लेकर उठी थी।

वृंतहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि —
कबे तुमि उठिले उर्वशी ?[१]

हा, स्विनबर्न की ऐफ्रोडाइट उर्वशी की तरह नर्तकी नही है, फिर भी उर्वशी के नृत्य के छन्द मे जैसे समुद्र की लहरे तथा शस्य शीर्ष मे धरा का आचल तरंगित हो उठता है, किंतु ऐफ्रोडाइट के सौदर्य की व्याप्ति तथा विकास इसी तरह का है—

In the uttermost ends of the sea
The lights of thine eyelids and hair

—समुद्र के दूरतम किनारे तुम्हारे पलको और केशो की ज्योति। यहां ऐफ्रोडाइट से उर्वशी मे कवि-कल्पना अधिक स्फूर्ति पा सकी, किंतु

The lights of the bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air ?

—वक्षस्थल का प्रकाश सूर्य के रथचक्रो और वातावरण के उडते अंगारो के बीच मानो दमक रहा है।

तव स्तनहार हते विगंतेर खसि पड़े तारा[२]

ने रवीन्द्र की उर्वशी के सौंदर्य को स्निग्धतर कर दिया है, वायु की जलती शिखाओ के बीच से तारे छिटक पडते है, सैकड़ो गुना सुभावसमृद्ध हुआ है, फिर—

Wilt thou turn thee not yet nor have pity
But abide with despair and desire

—क्या तू अब भी नही बदलेगी और दया न करेगी, बल्कि निराशा साथ ही वासना का केन्द्र बनी रहेगी और—

जगतेर अश्रु धारे धौत तवो तनुर तनिमा
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आंका तव चरण-शोणिमा

---

१ हे उर्वशी, तू वृंतहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकसित होकर कब उठी ?
२ तेरे स्तनहार से दिगत के नक्षत्र छिटक पडते है।

आदि की विचार-शैली भिन्न होने पर भी, या कहीं-कहीं जैसे

And the waves of the sea as she came
Clove, and the foam at her feet
Fawning

—और जब वह आई तो समुद्र की लहरें फट गई और फेन उसके पैरों को दुलारने लगे।

तरंगित महासिंधु मंत्रशांत भुजंगेर मतो
पड़ेछिलो पदप्रांते, उच्छ्वसितो फणा लक्ष शत
करि अवनत।[1]

एकदम समांतराल होने पर भी, दोनो मे जो प्रभेद है, उससे 'उर्वशी' कविता दुर्वल हो गई है, कल्पना की जहा समता है वही पाठक मुग्ध होता है। दोनो के सौंदर्य का मूल कारण कामना है। इस कामना को ही रवीन्द्रनाथ ने एक स्निग्ध अतीद्रियता से मडित करने की चेष्टा की, किंतु वे असफल रहे, इसके विपरीत केंद्रीय भाव ही दो हिस्सों मे वट जाने के कारण रसाभास हुआ है।

सौंदर्य कल्पना की वह दिशा (जिसने मनुष्य की कामना को प्रदीप्त कर साहित्य के एक वड़े भाग को उज्ज्वल किया है) इसमे प्रकट हुई है।"

मोहितलाल की उर्वशी समालोचना को मैं उद्धृत कर चुका, किंतु और भी थोड़ा उद्धृत करने की आवश्यकता है, जिससे उनकी पूरी वात पाठको के सामने आ जाय। वे कहते हैं—

"रवीन्द्रनाथ के काव्य मे ही सौंदर्य का एक दूसरा आदर्श प्रकट है। मैं सक्षेप मे उसका उल्लेख करूगा, आलोचना जिससे वढ न जाय मै उसको उद्धृत नही करूगा, केवल दिशा भर वता दूगा। 'वलाका' की 'दुइ नारी' शीर्षक कविता मे रवीन्द्रनाथ ने उर्वशी और लक्ष्मी दोनो के रूप का वर्णन किया है, फिर लक्ष्मी के सौंदर्य को ही तरजीह देकर उसी पर मुग्ध हुए है। 'चित्रागदा' काव्य मे चित्रागदा का स्वर्गीय रूप-लावण्य देखकर अर्जुन के चित्त मे जो चमत्कार पैदा हुआ था वह यों है—

---

[1] तरंगित महासिंधु मंत्रशात भुजग की तरह पद्प्रात में लोट रहा था, उसने अपने लाखों उच्छ्वसित फण-फणों को अवनत कर लिया था।

केनो जानि श्रकस्मात
तोमारे हेरिया बुझिते पेरेछि आमि
कि आनन्दकिरणेते प्रथम प्रत्यूषे
अन्धकार महार्णवे सृष्टि-शतदल
दिग्विदिके उठेछिलो उन्मेषितो हये
एक मुहूर्तेर माझे...
...चारिदिक हते
देवेर अंगुलि जेनो देखाए दितेछे
मोरे, ओई तव आलोक आलोक माझे
कीर्तिक्लिष्ट जीवनेर पूर्ण निर्वापण।

या अन्यत्र

भाविलाम
कत युद्ध, कत हिंसा, कत आडम्बर
पुरुषेर पौरुष-गौरव, वीरत्वेर
नित्य कीर्तितृषा, शांत हये लुटाइया
पड़े भूमे, ओई पूर्ण सौंदर्येर काछे
पशुराज सिंह यथा सिंहवाहिनीर
भुवन-वांछित अरुण चरणतले।

—'न मालूम क्यों तुमको देखकर अकस्मात मैंने जाना है कि प्रथम प्रभात में से अन्धकार महासमुद्र में एक किरण से सृष्टि का शतदल दिशाओं में एक मुहूर्त में उन्मेषित हो उठा था...चारों तरफ से देवता की उंगलियों ने मानो मुझे दिखला दिया कि तुम्हारे इस अलौकिक आलोक में कीर्तिक्लिष्ट जीवन का पूर्ण निर्वापण है।....मैंने सोचा, तुम्हारे उस पूर्ण सौंदर्य के सामने कितने युद्ध, कितनी हिंसाएं, पुरुष का पौरुष-गौरव, वीरता की नित नई कीर्ति की प्यास शान्त होकर चरणों में लोटने लगती है, जैसे पशुराज सिंह सिंहवाहिनी दुर्गा के भुवन-वांछित अरुण चरणों में लोटता है।'

मोहितलाल की राय में रवीन्द्रनाथ में सौंदर्य का यह दूसरा आदर्श है, उनके अनुसार यहां केवल कामना नहीं, पुरुष का पौरुष स्तम्भित हो जाता है, जिसमें जीवन्मुक्ति होती है। वह कहते हैं, "यहां किसी कर्म-प्रवृत्ति हृदय-वृत्ति का अवसर

नहीं है, हम जिसको जीवन कहते है, वह द्वंद्व और विक्षोभ शान्त हो जाता है, क्षुद्र चेतना जैसे एक वृहत्तर चेतना मे लुप्त हो जाती है, इसीका नाम जीवनका पूर्ण निर्वापण है। इस सौदर्य-प्रीति का नाम ही कलात्मक यतिवाद के रूप मे सौंदर्यवाद ज्ञात होता है।"

मैं मोहितलाल के अपने वाक्यो तथा उदाहरणो से ही दिखलाऊंगा कि उनकी अंग्रेजी काव्यमर्मज्ञता ने उनको पथभ्रष्ट कर दिया है, और वह 'उर्वशी' को ठीक नही समझ पाये। मैं पहले यह देखना चाहूगा कि क्या रवीन्द्रनाथ की उर्वशी और चित्रागदा मे कोई आदर्शगत भेद है, या उनमे उतना ही प्रभेद है, जितना दो यात्रियो में आदर्शगत या मौलिक भेद न होते हुए भी होना चाहिए। चित्रांगदा के सौदर्य में मोहितलाल जीवन का पूर्ण निर्वापण देखते हैं, किंतु मैं तो केवल एक प्रकार के जीवन (जिसमे वीरत्व की नित नई कीर्ति की प्यास वगैरह थी) का ही निर्वापण देखता हूं, और एक दूसरे प्रकार के शायद हृदय के अधिकतर तड़पनयुक्त जीवन का सूत्रपात देखता हूं। यदि किसी नारी के रूप को देखकर अर्जुन की तरह पुरुषसिंह अपने पौरुष को भूल जाता है, अपने जीवन के अबतक के तरीकों पर लात मारकर उस सुन्दरी रूपसी के चरणो मे लोटने को उद्यत हो जाता है तो इसे जीवन का पूर्ण निर्वापण कैसे कहेंगे ? मैं तो इसमे कामनामय सौंदर्य को ही देखता हू। मोहितलाल जिसको सौंदर्यवाद या कलात्मक यतिवाद कहकर चीख उठते हैं, मैं तो उसमे अत्यंत कामनामय सौदर्यानुभूति ही देखता हू, किन्तु इसमे मैं मोहितलाल को दोष नही देता, कामना लेशहीन सौंदर्यानुभूति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असम्भव चीज है। इसलिए यदि 'उर्वशी' में रवीन्द्रनाथ कथित कल्पना से विचलित हो गये है तो यह प्रकट करता है कि दार्शनिकता के आवेश में कवि अपने कवि-धर्म को भूलते-भूलते भी नहीं भूलते हैं। यदि मोहितलाल की बात मान ली जाय तो यही प्रमाणित होगा कि सौभाग्य से कविवर अपने अन्तर की पुकार पर ही चलते है, सौदर्य-विज्ञान की पुस्तको पर नही। मोहितलाल ने स्वयं ही आगे चलकर माना है, 'इसमें (सौदर्यवाद) वास्तविक जीवन और जगत् के प्रति उदासीनता होती है, अतएव इसमें सृष्टि का पूर्ण सत्य नही है, यह भी सूक्ष्मतर इंद्रियविलास या अतीद्रिय भावविलास है।'

इससे स्पष्ट है कि कविता का यह दूसरा आदर्श अवास्तविक है, इससे जीवन का कोई सम्बन्ध नही है। यह अच्छा ही हुआ कि कविता के इस प्राण-

हीन संगमरमर निर्मित आदर्श को न अपनाकर रवीन्द्रनाथ ने तड़पनयुक्त सजीव आदर्श को अपनाया। इसी आदर्श की प्राणरसपुष्टता के कारण ही 'उर्वशी' कविता नारी पर एक श्रेष्ठ कविता है। मोहितलाल ने यह जो कहा है, 'माता नही हो, कन्या नही हो, वधू नहीं हो' के साथ 'तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चचल हो जाता है' इसका सामंजस्य नही है, मेरी राय में यह पूर्णत. गलत है। 'उर्वशी' कोई गणित का सवाल नही है, वह एक जीती-जागती, तड़पती-फडकती चीज है, फिर वह कवि-कल्पना मे कभी ऐसी, कभी वैसी मालूम होगी, इसमे आश्चर्य क्या है। जिसको हम प्यार करते है उस नारी के सम्बन्ध मे ऐसे भाव का आना-जाना आश्चर्यजनक नही है। कभी तो उसके कटाक्ष पर सारी पृथ्वी घूमती हुई मालूम होती है, कभी वह इतनी दूर की वस्तु मालूम होती है कि वह न तो माता, न कन्या, न वधू मालूम होती है। क्या यह बात कोई ऐसी अनहोनी है कि समालोचक मोहितलाल को मालूम नही थी ?

मोहितलाल ने कीट्स की प्रसिद्ध पंक्ति को लेकर यह दिखाया है कि 'दाहिने हाथ मे सुधापात्र तथा बाये हाथ मे विषभाड, हाय इसमे विषभांड का उल्लेख विशुद्ध सौंदर्यानुभूति मे बाधक है। कोई भी व्यक्ति विद्वान्‌समालोचक से सहमत नही हो सकता। मैं तो समझता हू कि इस विषभाड की मौजूदगी ही सुधापात्र को और भी सुधामय बना देती है, यही प्रकृति का नियम है। मृत्यु के कारण ही जीवन मधुर है, विरह के भय के कारण ही मिलन प्रिय है, इसके कितने ही उदाहरण हैं; फिर यदि स्वर्ग रूपसी चिरयौवना उर्वशी के एक हाथ के सुधापात्र को मधुरतर बनाने के लिए कवि ने दूसरे हाथ मे विषभाड की कल्पना की है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? फिर यह केवल कल्पना ही नही है। क्या रूप और कामना की देवी, वह चाहे जिसके लिए जो नाम रखती हो, एक हाथ मे अपने प्रेमिक के लिए *'अमी' और दूसरे में 'हलाहल' नही रखती ? एक हिन्दी कवि ने,* जो शायद स्विनबर्न के परदादा के परदादा के परदादा से भी आगे थे, प्रिया के नयनो को अमृत, हलाहल और मद से भरा देखा है। मुझे डर है, विद्वान् समालोचक कीट्स की उस बात को ठीक-ठीक नही समझे। क्या रवीन्द्रनाथ की उर्वशी कही पर आनन्द की चिरंतन धारा नही है या आनंद एक आत्मगत चीज है, इसलिए प्रेमिक तथा पुजारी की आंखों में क्या आनन्द होगा, यह साधारण नियम से

वताया नही जा सकता। सिसक-सिसककर विस्मल होकर मरने मे ही यदि किसीको आनन्द मिले तो ?

उर्वशी पर एक और वात, कहकर हम खत्म करेंगे। मोहितलाल ने कहा है कि कवि ने जिसको अन्धकार सागर के नीचे प्रवाल के पलग पर अकलंक हास्यमुख से सोते देखा है तथा यौवन मे जिसके कटाक्ष से त्रिभुवन को यौवन-चंचल होते देखा है उसीको नित्यपूर्ण और स्वयप्रकाश सौंदर्य के प्रतीक रूप मे कल्पना करते हुए जो प्रश्न करते है 'वृंतहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकसित होकर, हे उर्वशी, तू कव खिली ?' इससे कल्पना मे गड़वड़ी आ गई है। मै नम्रतापूर्वक कहना चाहता हूं कि समालोचक फिर गलत समझे है। यह याद रहे कि नित्यपूर्ण और स्वयप्रकाश शब्द समालोचक के हैं, फिर कवि जो प्रश्न पूछते है कव खिली, न कि कव पैदा हुई। कवि ने उसको कली की अवस्था मे देखा, फिर खिली अवस्था मे देखा, किन्तु प्रश्न यह है कि वह कव खिली। मैं समझता हू कि यह प्रासगिक प्रश्न है। सृष्टि में इसी रहस्य को समझाने के लिए वैज्ञानिकों ने सर्पनशील विकासवाद (Emergent Evolution) आदि कितने ही सिद्धान्त वनाये है।

अव रहा यह कि स्विनवर्न की कविता से रवीन्द्रनाथ को कहातक मसाला मिला, यह हमने पाठकों के सम्मुख रख दिया, किंतु जो कुछ भी पेश किया उसी-से मालूम होता है कि उन्होंने कुछ नही लिया। विशेपकर जहा वतलाया गया है कि

And the waves of the sea as she came

और जव वह आई तो समुद्र की लहरे इत्यादि का एकदम अनुवाद है, वहा तो हमे मालूम होता है।

···मन्त्रशान्त भुजंगेर मतो
··फणा लक्ष शत
करि अवनत,

से कवीन्द्र का कथित अनुवाद उत्कृष्ट, गहराईयुक्त इतना सुन्दर है कि कथित मूल वडा दुर्वल मालूम देता है।

अव हम सरसरी तौर पर रवीन्द्रकाव्य पर दो-चार वाते और कहेगे। रवीन्द्रनाथ को लोग चाहे रहस्यवादी समझे और कहे, किंतु उन्होंने मानो साफ-साफ चडीदासी वाणी को ही (जिससे वढ़कर कोई संक्षिप्त कविवाणी हो नही सकती) वार-वार कहा है—

सवार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई

—'सबसे बढकर सत्य मनुष्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं है।' बार-बार रवीन्द्रीय वीणा से यह वाणी झंकृत हुई है। रवीन्द्रनाथ की एक प्रसिद्ध कविता है, 'स्वर्ग से विदाई'। इसमें मनुष्य ने स्वर्ग से कहा है—

थाको स्वर्ग हास्यमुखे, करो सुधापान
देवगण ? स्वर्ग तोमादेरि सुखस्थान
मोरा परवासी। मर्त्यभूमि स्वर्ग नहे
से जे मातृभूमि—ताइ तार चक्षे वहे
अश्रु जलधारा...

—'हे स्वर्ग, तुम प्रसन्न बने रहो, हे देवताओ, सुधापान करो। स्वर्ग तुम लोगो के सुख का स्थान है, हम तो यहां अपनेको प्रवासी पाते हैं। मर्त्यभूमि स्वर्ग तो नही है, किंतु मातृभूमि है, तभी तो उसकी आखो में अश्रुजल की धारा वहती है।'

ऐसी स्वर्गविमुखता होते हुए भी रवीन्द्रनाथ का मनुष्य यहा लौटकर एक स्वर्गीय स्वप्न में ही विभोर रहता है, जीवन की कठिन वास्तविकताओ से उसका जैसे कोई सम्बन्ध नही। वह यहां भी कामना करता है 'यदि धरातल मे दीनतम घर मे मेरी प्रेयसी जन्म ले, किसी नदी के किनारे गाव मे एक पीपल के पेड़ के नीचे, वह बालिका फिर अपने वक्ष मे मेरे लिए सुधा का भंडार संचित कर रक्खेगी' इसी तरह की और बातें हैं। इसीसे रवीन्द्र-साहित्य आधुनिक होने पर भी सच्चे मानो मे पूर्ण क्रांतिकारी नहीं है, फिर भी रवीन्द्रनाथ अछूतो के दु.ख से विक्षुब्ध मालूम होते हैं, वे राष्ट्र से कहते हैं, छुआछूत दूर करो, 'नही तो अपमान में उनको सबके समान होना पडेगा, उन्हे दूर रखकर तुमने मनुष्य के हृदय के देवता की अवहेलना की है।' 'लकड़हारा जहा लकड़ी चीरता है, किसान जहां हल जोतता है वहापर रवीन्द्रनाथ के भगवान् भी हैं; किंतु इतनी सहानुभूति का ऐश्वर्य होने पर भी कवीन्द्र कभी भी इन दु.खो की तह मे, जो एकदेशीय तथा वर्गीय समाज-व्यवस्था है, नही पहुच पाते।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के संपादन मे 'बंगला-काव्य परिचय' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इसमें कवीन्द्र ने अपनी १७ कविताएं दी हैं, किंतु इनमे से एक भी कविता किसी वाद को पुष्ट नही करती। इसी से यह निष्कर्ष तो नही

निकलना चाहिए कि वे अपनी उन कविताओ से जो, रहस्यवादी (Mystic) हैं, अपनी दूसरी कविताओ को अच्छी तरह समझते हैं, किंतु इससे यह अर्थ तो निकाला ही जा सकता है कि अपनी कविताओ मे कवित्व की दृष्टि से वह अपनी आव्यत्मिक कविताओ को विशेष महत्व देने के लिए तैयार नही हैं। सौभाग्य से वंगला-साहित्य में 'गीतांजलि' ही रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ दान नही है। मोहितलाल ने लिखा है और मैं इससे सहमत हूं कि रवीन्द्रनाथ की विशेपता यह है कि उन्होने प्राच्य भाव-साधना और प्रतीच्य रूप-साधना का सुदर समन्वय किया हैं। इसी कारण प्राच्य के रहस्यवाद ने उनके हाथो मे एक नया ही रूप धारण किया है। 'गीताजलि' की कविताए रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा का उच्चतम स्फुरण नही है।

कुछ भी हो, यूरोप मे गीताजलि की कविताओं की ही धूम रही। रवीन्द्र-प्रतिभा मे चूकि प्राच्य भाव-परायणता का और रूप-व्याकुलता का समन्वय है, इसलिए दोनो प्रकार के पाठको को उनकी कविता मे अभिनवत्व मिलता है।

मैं पहले ही कह चुका हू कि रवीन्द्रनाथ को किसी वाद के विशेपण में लाकर यह कहने की चेष्टा करना कि इसी वाद के वादी हैं, गलत होगा। पाश्चात्य में टामस मान की तरह व्यक्ति है, जो कई वार काया पलट कर दूसरे ही कलाकार हो चुके है, उन्होने जैसे एक ही जीवन मे कई जन्म पाये, किंतु रवीन्द्रनाथ इसके विपरीत एक दूसरे ही तरह के व्यक्ति हैं। वह एक साथ कई जीवन जीते हैं। यदि सन् और तारीख से देखा जाय तो इस वात की सत्यता मालूम होगी। एक ही समय मे वह कई तरह की कविता लिखते है। कही तो वह विल्कुल फ्राइड-वादी है, कही रहस्यवादी, कही भावुक हैं, कही विचार का नूपुर छमछम वज रहा है। यह एक न्यारी ही दुनिया हैं।

हिंदी-जगत मे रवीन्द्रनाथ को लोग मुख्यत. अंग्रेजी के जरिये से जानते हैं, इसलिए वह हिंदी-जगत मे केवल विशेप ढग के कवि माने जाते हैं। वात यह है कि लोग अंग्रेजी 'गीताजलि' को ही पढते है, जिसके कारण उन्हे नोवुल पुरस्कार मिला। दूसरी वहुत-सी पुस्तको को वह पढने का कष्ट नही उठाते। यदि वह 'गीताजलि' के अतिरिक्त 'सोनार तरी', 'वलाका' आदि पढे तो उनकी यह धारणा जाती रहे।

अंत मे हम रवीन्द्रनाथ की 'एवार फिराओ मोरे' (अव मुझे लौटाओ)

कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। यह कविता एक नई ही वाणी को लेकर शंखनाद कर रही है, जिसमें वह कहीं-कहीं आधुनिकों से आधुनिक मालूम होते हैं। दो-तिहाई शताब्दी तक साहित्यिक क्षितिज में बराबर रहने पर भी रवीन्द्रनाथ अपनी नवीनता को कायम रख सके, इसका कारण यह है कि उनका ग्रहणशील मन हमेशा नये युग को अपनाता रहा। किसी साहित्यकार के लिए सबसे मुश्किल होता है भाषा-रीति में परिवर्तन, किंतु वह इसमें भी पिछड़े नहीं रहे। उन्होंने बुढ़ापे में बंगला की साधु भाषा को छोड़कर आम बोलचाल की भाषा अपनाई। केवल यही नहीं कि उन्होंने उसको इस्तेमाल किया, बल्कि उन्होंने उसका पक्ष लेकर बड़े जोरों की वकालत की। कई समालोचकों को इस बात पर बड़ा आश्चर्य है, क्योंकि उनकी पहले की सारी रचना साधु भाषा में है और 'रवीन्द्रनाथ का रवीन्द्रनाथत्व उसी भाषा में है।' पहले ही मैं कह चुका हूं कि रवीन्द्रनाथ मुख्यतः भद्रलोक श्रेणी के कवि हैं, संभव है जब आम लोगों का साहित्य हो तो उसमें रवीन्द्रनाथ का स्थान यह न रहे, किंतु बंगला भाषा को जो सौष्ठव तथा नमनीयता उन्होंने दी है, वह रवीन्द्र-विरोधी कवि तथा साहित्यिक के लिए भी अनुकरणीय होगी। बंगला भाषा का कोई भी लेखक इस ऋण से उऋण नहीं हो सकता। 'एवार फिराओ मोरे' कविता का भावार्थ इस प्रकार है—

"इस संसार में जब सभी हर समय सैकड़ों काम में लगे हुए हैं, उस समय हे कवि, तूने दोपहर की धूप में एक पेड़ के नीचे बैठकर दूर जंगलों की गंध बहाकर लानेवाली हवा में केवल बांसुरी ही बजाई। अरे, आज तो तू उठ, कहीं आग जो लगी है। सुन, किसीका शंख विश्ववासी को जगाने के लिए बज रहा है। कहीं से रोने की आवाज से सारा आकाश गूंज उठा है। किसी अंधकार कारागार में बंधन से टूटती कोई अनाथिनी सहायता मांग रही है। दुर्बल की छाती पर चढ़कर मोटा-ताजा अपमान लाखों मुंह से रक्त पी रहा है। स्वार्थ से उद्यत अविचार वेदना का परिहास कर रहा है।

"वे, जो लाखों मौन होकर सिर नीचा किये हुए खड़े हैं, उनके कुम्हलाये हुए चेहरे पर सैकड़ों सदियों की वेदना की करुण कहानी है। जितना ही उनके सिर पर बोझ बढ़ता जाता है, वे उसको उठाकर चलते रहते हैं जबतक जान रहती है, फिर मर जाने पर उसको अपने बच्चों के लिए छोड़ जाते हैं, न तो भाग्य को इसके लिए कोसते हैं, न ईश्वर की ही निंदा करते हैं, यहांतक कि

मनुष्य को भी दोष नहीं देते, अभिमान नहीं जानते, केवल बस दो दाने अन्न खोटकर किसी तरह कष्टक्लिष्ट प्राण कायम रख सकते हैं। जब उस अन्न को भी कोई छीनना चाहता है तथा गर्व से अंध-निष्ठुर अत्याचार से उसके हृदय पर चोट पहुंचाता है तो वह यह भी नहीं जानते कि किसके द्वार पर न्याय-विचार की आशा से खड़े हों, दरिद्र के भगवान् को बस एक बार पुकारकर वह चुपचाप मर जाता है।

"इन सब म्लान तथा मूढ़ मुखों में भाषा देनी पड़ेगी, इन श्रांत शुष्क भग्नहृदयों में आशा प्रतिध्वनित करनी पड़ेगी, पुकारकर इन्हें कहना पड़ेगा—

"'अरे एक बार सिर उठाकर खड़े तो हो जाओ। फिर देखोगे कि जिनके डर से तुम डर रहे हो, वह तुमसे भी डरपोक हैं। जभी तुम जाग उठोगे, वह भाग खड़ा हो जायगा। जभी तुम उसके सामने खड़े हो गये तभी वह रास्ते के कुत्ते की तरह भय तथा संकोच से विलीन हो जायगा। ईश्वर उसपर विमुख हैं, उसका कोई सहायक नहीं, बस मुंह से वह बड़ी-बड़ी बातें छांटता है। वह मात्र, यह मन-ही-मन अपनी हीनता को जानता है।'

"कवि, यदि तुममें प्राण हैं तो उठो, उसे साथ लेकर चलो और उसका आज दान करो। इस संसार मे बड़े ही दुःख हैं, बड़ी व्यथाएं हैं, बड़ी ग़रीबी है। हाय, यह तो बड़ा शून्य है, बडा छोटा है, बड़ा अंधकार है। अन्न चाहिए, प्राण चाहिए, रोशनी चाहिए, खुली हवा चाहिए, शक्ति चाहिए, स्वास्थ्य चाहिए, आनंद से उज्ज्वल आयु चाहिए और साहस से विस्तृत हृदय चाहिए। हे कवि, इस दीनता में एक बार स्वर्ग से विश्वास तो ले जाओ।

"हे मेरी रंगीन रंगमयी कल्पने, अब मुझे लौटाकर फिर संसार के किनारे ले चलो, अब मुझे, हवा मे, लहरों-लहरों में तथा मोहिनी माया में न भटकाओ। निर्जन विशाव घने अंतरवाली निकुंज-छाया मे मुझे बैठाकर न रक्खो। दिन जाता है, संध्या हो आती है, उदास हवा मे वन सांस लेकर रो पड़ता है। ऐसे समय में मै निकल पड़ा जनता के बीच। जब मै जगत् में आया था तो न मालूम किस माता ने मुझे यह बच्चों वाली बसुरी दी थी। उसीको बजाते-बजाते मै अपने सुर में ही इतना मुग्ध हो गया कि मैं संसार-सीमा के बाहर चला-सा गया। दिन चले गये, रातें चली गईं। उस बांसुरी से मैंने सुर जरूर सीखा है, किंतु यदि मैं उस सुर की सहायता से इस गीतशून्य अवसादपुर को

ध्वनित कर सकूं, यदि मृत्युंजयी आशा के संगीत से कर्महीन जीवन के एक कोने को यदि एक मुहूर्त के लिए ही तरंगित कर सकूं, दुःख यदि उसकी भाषा पा ले, अंतर की गहरी प्यास यदि स्वर्ग के अमृत के लिए जग उठे तभी मेरा गान धन्य होगा, तभी सैकड़ों असंतोषों को महागीत में निर्माण प्राप्त होगा।

"कहो आज क्या गाओगे, क्या सुनाओगे ? कहो अपना दुःख झूठा है, अपना छोटा सुख भी, जो व्यक्तिस्वार्थमग्न होकर बड़े जगत् से दूर है, उसने कभी जीना नहीं सीखा। विश्वजीवन की महान् लहरों पर नाचते-नाचते हमें निर्भर होकर दौड़ना पड़ेगा, सत्य को ध्रुवतारा बनाकर तथा मृत्यु से न डरकर। दो दिन के आंसू सिर पर गिरेंगे, उसीमे हम उसके अभिसार में चलेंगे जिसको मैंने जन्म-जन्म के लिए जीवनसर्वस्व-धन सौंप दिया। वह कौन है ? नहीं मालूम, फिर भी मालूम है, उसीके लिए रात के अंधेरे में यात्री मनुष्य युग से युगांतर की ओर आंधी तथा वज्रपात में जा रहा है, अपने अंदर के दीये को सावधानी से पकड़कर सिर्फ मालूम है। जिसने कानों से उसकी पुकार सुनी है वह निडर होकर संकट के भंवर में कूद पड़ा है, उसने दुनिया पर लात मार दी है तथा अत्याचारों को सीना खोलकर ग्रहण किया है। मृत्यु के गर्जन को उसने संगीत की तरह सुना है। अग्नि ने उसको जलाया है, शूल ने उसको छेदा है, कुठार ने उसे छिन्न किया है, उसने अपनी सब प्रिय वस्तुओं को ईंधन बनाकर बिना कातरता के ही होमाग्नि जलाई है। हृत्पिंड रूपी रक्तपद्म को उसने छिन्न कर चढ़ा दिया है और अंतिम बार सभक्ति पूजा की है और फिर भी मरकर अपनेको कृतार्थ समझा है।

"मैंने सुना है, उसीके लिए राजकुमार ने फटी कथड़ी पहन ली था और विषय-विरक्त रास्ते का फकीर हो गया था। मैंने सुना है, उसी लक्ष्य के लिए महाप्राण पल-पल में जला है, उसके चरणों में कुशांकुर घुस गये हैं, उसपर मूढ़ विज्ञपुरुषों ने अविश्वास किया है, प्रियजनों ने उसकी हंसी उड़ाई है, फिर भी उसने नीरव करुण नेत्रों से सभीको क्षमा कर दिया है, उसके अंदर वह अनुपम सुंदर लक्ष्य मौजूद था। उसीके लिए मानी ने मान तज दिया, धनी ने धन सौंपा, वीर ने प्राण दे दिये है।"...

मैंने विशेषकर इस कविता को इसलिए उद्धृत किया कि इसमे कवि की कई तरह की कविताओं के नमूने एक साथ मिल जाते हैं। इसमे एक देखने की बात

है कि कवि अपने को संबोधित कर एक क्रांतिकारी की तरह शुरू करते हैं, किंतु एक भाववादी कवि के नाते वह जल्दी ही निर्दिष्ट चीजों को छोड़कर अनिर्दिष्ट या सूक्ष्म मे कूद पड़ते हैं। हमे नई कविता के दौर में भी रवीन्द्रनाथ पर बात करने का मौका मिलेगा।

: १६ :

कथाकार रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ कवि रूप मे श्रेष्ठतर थे या कथाकार के रूप मे, इस प्रश्न का हां या ना में उत्तर देने की कोई विशेष आवश्यकता नही मालूम होती। इतना ही कहना यथेष्ट है कि व्याकरण और भाषा-तत्व से लेकर जिस विषय पर भी उन्होने लिखा, उसमे वे सर्वोपरि हो गये।

उनकी गद्य-रचना पहले-पहल 'ज्ञानांकुर ओ प्रतिविम्ब' नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। उस समय उनकी उम्र पद्रह वर्ष की थी। इस निबंध मे वे समालोचक के रूप मे सामने आये। उन्होने ताजे प्रकाशित तीन काव्यों की आलोचना की थी। इसके बाद ६६ वर्ष तक वे बराबर अविरल गति से लिखते रहे। बंगला भाषा को उन्होने क्या दान दिया, इसका अनुमान इस उद्धरण से हो सकता है—"रवीन्द्रनाथ ने बंगला भाषा की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य इतनी अधिक बढा दी कि यह कहा जा सकता है कि किसी एक लेखक ने अकेले किसी भाषा की अभिव्यक्ति, सामर्थ्य इतनी नही बढाई। रवीन्द्र गद्य-रीति का यह मौलिक गुण है कि वे केवल बुद्धि को उद्बुद्ध करके निवृत्त नही होते, बल्कि मन के गहन अन्त पुर में प्रविष्ट होकर चित्त की गंभीरतम अनुभूति को जाग्रत कर देते हैं। इसी कारण रवीन्द्रनाथ की गद्य शैली मे वाक्यालकार के बीच मे उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक, श्लेष और विरोधाभास का प्रयोग सबसे अधिक है। इनमे भी उत्प्रेक्षा की ही प्रधानता है। रवीन्द्रनाथ के गद्य में आदि से अंत तक उत्प्रेक्षा-प्रधान उक्तियों का बोलबाला है।"[1]

---

[1] बंगला साहित्ये गद्य, पृष्ठ १५७

रवीन्द्रनाथ की गद्य रचनाओ को तीन युग मे बाटा गया है—(१) ज्ञानाकुर भारती युग याने पंद्रह साल से बाईस साल की उम्र तक, (२) हितवादी-साधना-भारती-बगदर्शन-प्रवासी युग याने बाईस साल से इक्यावन की उम्र तक, (३) सबुज पत्र युग याने इसके बाद का युग। उनकी गद्य-शैली बराबर विकसित होती रही। पहला युग तो साधना का युग था, दूसरा युग अष्टसिद्धियों और नवनिधियो का युग कहा जा सकता है और तीसरे युग में उन्होने युग की ढाल को देखते हुए एकदम से बोलचाल की भाषा अपनाली। उनकी प्रथम गद्य-रचना मे ही उनके अध्ययन की विशालता, राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय इतिहास की जानकारी, साथ ही काव्य और सगीत के संबध मे गहरा ज्ञान सूचित होता है।

उस लेख से कुछ वाक्य लीजिये—

"इसी गीतिकाव्य से फ्रासीसी राज्य-क्रांति को प्रोत्साहन मिला, गीति-काव्य के ही कारण चैतन्य के धर्म ने बगाल मे जड़ पकड ली और इसी गीति-काव्य के कारण बगालियो के निर्जीव हृदय मे जीवन का कुछ-कुछ संचार हो रहा है।

"शेक्सपियर दूसरो के हृदय का चित्रण करके दृश्य काव्य मे असाधारण हो गये हैं, पर अपने हृदय के चित्रण मे असमर्थ होने के कारण वे गीति-काव्य मे बहुत बड़े नही हो सके। इसी प्रकार कविवर बायरन अपने हृदय के चित्रण मे असाधारण है, पर दूसरो के हृदय के चित्रण में अक्षम है। गीति-काव्य अकृत्रिम है, क्योकि वह हमारे अपने हृदय-कानन का पुष्प है और महाकाव्य शिल्प है, क्योकि वह दूसरे के हृदय का अनुकरण मात्र है। इसी कारण हम लोग वाल्मीकि, व्यास, होमर, वर्जिल आदि प्राचीन कवियो की तरह महाकाव्य नही लिख सकेंगे, क्योकि प्राचीनकाल मे लोग सभ्यता के आच्छादन मे हृदय को गुप्त रखना नहीं जानते थे, इस कारण कवियों के लिए यह सभव था कि दूसरे के हृदयो को प्रत्यक्ष कर उन अनावृत हृदयो को सहज मे ही चित्रित कर सके।"

यह रचना पंद्रह वर्ष के बालक रवीन्द्र की है। इसके बाद कुछ दिनो मे 'भारती' पत्रिका प्रकाशित हुई, और उसमे वे माइकेल के 'मेघनाद-वध' के आलोचक के रूप में सामने आये। 'भारती' की तृतीय सख्या से रवीन्द्रनाथ का 'करुणा' नाम से एक उपन्यास चलने लगा। इसके बाद 'भारती' के तीसरे साल मे धारावाहिक रूप से यूरोप प्रवासी के पत्र प्रकाशित हुए, जो १८८१ में पुस्तकाकार निकले।

अब हम कालानुक्रम से रवीन्द्र-रचना का परिचय देने की वजाय पहले उनके उपन्यासो का फिर उनके नाटको का संक्षिप्त परिचय देगे। कहानियो पर भी प्रकाश डालेगे। इस प्रकार जो कुछ कहा जायगा, उसमे हम कालानुक्रम का ख्याल रखेगे।

'वहु ठाकुरानीर हाट' और 'राजर्षि' नामक उपन्यास उनके वीस से चौवीस वर्ष के वीच की रचनाएं हैं। अभी वकिमचद वंगला साहित्य के गगन मे वहुत जोर से चमक रहे थे, ये दोनों उपन्यास उन्हीकी छत्रछाया मे लिखे गये। जिस समय उन्होने ये उपन्यास लिखे, उस समय वहिर्जगत के साथ उनका परिचय वहुत कम था, क्योकि उनका लालन-पालन ही इस प्रकार मे हुआ था कि वे सवसे दूर अलग-थलग पले। अपनी जीवन-स्मृति मे उन्होने इस वात पर लिखा है, "न तो तव विद्या थी, और न जीवन की अभिज्ञता थी, इसलिए गद्य-पद्य जो कुछ भी लिखा, उसमे असली वस्तु से भावुकता कही अधिक थी। इसी कारण इन दोनो उपन्यासो के कथानक उलझनों से वर्जित, सरल, अजटिल हैं। कहीपर अंतर्द्वंद्व का झगडा नही है। ये दोनो पुस्तके ऐतिहासिक उपन्यास के आदर्श पर रचित हैं। श्री निहाररंजन राय कहते हैं—"दोनो उपन्यासो में विचित्रता और कोलाहल है जरूर, पर रंगभूमि की छाया की तरह अस्पष्ट हैं। इनमे इतिहास का अर्थहीन आश्रय लिया गया है, उपन्यास की घटनाओ और चरित्रो मे इतिहास के जीवन और उद्दीपना के सचारित होने का कही कोई प्रमाण नही है।"

इन दो उपन्यासो मे फिर भी वाद के कवीन्द्र रवीन्द्र की विशेपता आ जाती है। कोलाहल की पृष्ठभूमि मे शांति और आनंद के अस्तित्व से उपन्यासकार परिचित हैं और वह उसकी टोह मे रहते हैं। एक वात और। यद्यपि उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास लिखा, फिर भी इनमे कई पात्र ऐसे आते है, जो उनके इर्द-गिर्द मौजूद थे और उन्होंने उन्हे इतिहास की पोशाक पहनाकर पाठको के सामने प्रस्तुत भर कर दिया।

इसके वाद उन्होने 'चोखेर वालि' (आख की किरकिरी) और 'नौका डूवी' उपन्यास लिखे। 'आख की किरकिरी' के संबंध मे यहातक कहा गया है कि "यदि किसी साहित्य मे एक उपन्यास ने उपन्यास के प्रचलित धर्म और प्रकृति

को बदलकर एकदम नये युग की सूचना करके नई बुनियाद डाली हो तो वह यही पुस्तक है।"

स्मरण रहे कि पद्रह साल बाद यह उपन्यास लिखा गया था। डा० निहाररराय के अनुसार यह समाज-जीवन पर आश्रित पहला मनोविश्लेषणमूलक समस्यानिष्ठ उपन्यास था। "इसके पहले बंगला साहित्य के उपन्यास प्रधानत. घटना-निर्भर थे। घटना का सुंदर यथातथ्य समावेश ही उपन्यास की विशेषता थी। कवीन्द्र के पहले दो उपन्यास इसी आदर्श के अनुसार थे, पर 'आख की किरकिरी' बिल्कुल इसके विपरीत थी। इसका कथा-भाग बहुत संक्षिप्त है, पर इसके चार चरित्रो के मनोविश्लेषण की धारा बहुत दीर्घ है। घटना का क्रम केवल मानसिक विकास का सहायक मात्र है। सारी कहानी एक सांस मे कह डाली जा सकती है, पर वह तो आख्यान मात्र है। उसमे वास्तविक अनुभूति नही है। वास्तविक अनुभूति का सचार तो तब होता है, जब हम विनोदिनी और आशा, महेंद्र और बिहारी के चित्त की गहराइयो मे पैठकर उनकी चिंताओ तथा भावो की भीतरी क्रिया प्राप्त करते हैं। तभी हमे उनके प्रकाश्य कार्यो का वास्तविक अर्थ मालूम होता है। इस प्रकार का विश्लेषण, मनुष्य के विचित्र कर्म और विचार के कार्य कारण सबध को प्रकाश मे लाने का इस प्रकार का प्रयास तथा वस्तु के अतर्निहित धर्म के संबंध में जिज्ञासा पहले-पहल 'आख की किरकिरी' उपन्यास से ही प्रवर्तित हुई।"[1]

'नौका डूबी' उक्त उपन्यास के दो साल बाद प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास रोमांटिक ढंग का है। कई लोगो ने इसी कारण इसे पहले की रचना समझने की भूल की है। कहा गया है कि 'नौका डूबी' 'बंग दर्शन' मासिक पत्र की माग को पूरा करने के लिए लिखा गया था। इसमे आकस्मिक घटनाओ की प्रधानता है। 'रमेश और कमला का जटिल सबंध एक आकस्मिक विपर्यय पर निर्भर है। कमला और नलिनाक्ष का पुनर्मिलन भी इसी प्रकार से पूर्णतः दैवी घटनाओं पर निर्भर है। जिस भूल के कारण रमेश और कमला का जटिल सबध दिन पर दिन जटिलतर होता जा रहा था, वह इतना दीर्घ विलबित है कि वह जरा अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है। इस भूल को तोड़ना और सारी जटिलताओ

[1] रवीन्द्र साहित्येर भूमिका।

का अत करना कुछ ऐसा कठिन और असंभव नही था। इसके अतिरिक्त हेम नलिनी के साथ विवाह के पहले रमेश ने कमला के रहस्य के उदघाटन मे किसी प्रकार की इच्छा या चेष्टा नही दिखाई, इसका कोई युक्तिसगत कारण ढूंढने पर नही मिलता। इतनी बाधाओ को पार करने के बाद ही उपन्यास के सूक्ष्म विश्लेषण और वस्तुनिष्ठा की बात प्रकट होती है।"

इन उपन्यासो के बाद रवीन्द्रनाथ ने 'गोरा' उपन्यास की रचना की। उस समय के अंग्रेजी शिक्षित समाज मे जिस प्रकार के विचारो की उथल-पुथल और आलोडन-विलोडन चल रहा था, उसका सम्यक् प्रतिफलन इस उपन्यास मे मिलता है। अवश्य इसमें रोटी-दाल और शोषक-शोषित की समस्याओ का कही पता नही है, पर सुदर विचारो और आदर्शो के संघात का बहुत चित्र इसमे उपस्थित किया गया है। केवल यही नही, इसमे प्रगतिशील विस्तृततर विचारो की ही अंत तक विजय कराई गई है। गोरा एक ऐसा युवक है, जिसके माता-पिता यूरोपीय थे। १८५७ के विद्रोह के समय यह अनाथ शिशु एक बगाली सज्जन के हाथ लगा और उन्होंने उसे एक सनातन हिंदू बच्चे की तरह पाला। यह लडका बहुत ही मेधावी निकला और कट्टर सनातनधर्मी बना, यहातक कि वह कट्टरता की धुन मे बहुत-कुछ अजीब बाते करता है। उसके पालक पिता इन बातो को देखते हैं और स्वयं कट्टर होते हुए भी यह नही चाहते कि वह कट्टर रहे। अत तक सारी बाते खुलती है और उपन्यास का अत बिल्कुल दूसरे ही ढंग से होता है।

कई लोगो ने यह कहा है कि 'गोरा' मे रवीन्द्रनाथ ने ब्राह्म धर्म की विजय दिखलाई है, पर यह बात सही नही है। लेखक ने कट्टर ब्राह्म समाजी और सनातनधर्मी का चित्र खीचा है। इनमे कट्टर ब्राह्म समाजी का चित्र ही अधिक हास्योत्पादक है। इसी प्रकार और भी अन्य बाते इस दोषारोपण के विरुद्ध कही जा सकती है। प्रगतिशील विचारो की जो विजय इस उपन्यास मे दिखाई गई है, वह एक तरह से युक्तिवाद और बुद्धिवाद के सामने पुराने समाज का ढह जाना ही है। उसमे एक कट्टरता को दूसरी कट्टरता से बढकर दिखाने का प्रयास कहीपर नही है। श्री राय तो 'गोरा' की यहांतक प्रशसा करते हैं कि 'जिस सुवृहत भाव-कल्पना के बीच 'गोरा' की दृष्टि है, उसका प्रसार बंगला उपन्यास मे आजतक देखने मे नही आया। बंगाली मध्यवित्त समाज की सकीर्ण और अल्पचेतन जीवनधारा को अवलम्बन बनाकर 'गोरा' ने बगला साहित्य मे जिस

प्रवाह का संचार किया था, उसमें नया गतिवेग अब भी दीख नही पडा। 'गोरा' ने बंगला उपन्यास मे जीवन का जो समग्र रूप पेश किया था, उस समग्रता की दृष्टि के आगे चलकर बंगला उपन्यास में दूसरी बार दर्शन नही हुए।'

श्री राय के इन मतव्यो से सहमत होना संभव नही है। इसमे संदेह नही कि गोरा का उपजीव्य एक ऐसा विषय था, जो शताब्दियो मे सामने आता है। वह है हमारे सैकड़ों वर्ष पुराने समाज-शरीर का सामना पाश्चात्य ये आये हुए नये विचारो से होना। यह एक बहुत बड़ा विषय था और इसमे सदेह नही कि बंगाल की जमीन पर विचारों के संघर्ष को दिखाते हुए भी रवीन्द्रनाथ ने उस महान् विषय के साथ पूरा न्याय किया। पर हमारे सामने और भी बहुत-से विषय ऐसे हैं, जो इसीकी तरह महत्वपूर्ण हैं। उदाहरणस्वरूप पाश्चात्य विचारो के बुद्धिवाद ही नही, उनके विज्ञान और विज्ञान से प्राप्त सुख-सुविधाओ इत्यादि को अपनाते हुए भी उनके साम्राज्यवाद तथा शोषण-नीति का विरोध और उनसे छुटकारा प्राप्त करना, हमारे यहा की मेहनतकश जनता को उनके शोषकों से मुक्त करना, इत्यादि। बाद के उपन्यासकारों ने इन विषयो को लेकर लिखा। हम उसके ब्यौरे में नही जायगे कि तुलनात्मक रूप से वह कैसे रहे, पर मैंने यह बताया है कि एक श्रेष्ठ कृति की प्रशंसा करने का अर्थ यह हर्गिज़ नही है कि हम यह कह दे कि उसके बाद कोई उस रचना का अतिक्रम नही करेगा।

यहां एक बात और बता दें कि 'गोरा' जितना अच्छा उपन्यास है, उस दृष्टि से उसका उतना प्रचार नही है। इसका कारण यह है कि उसमें जो समस्याएं उठाई गई हैं तथा विचारों का जो संघर्ष चित्रित है, वह आज दिलचस्प नहीं हो सकता, क्योकि उन विषयो को छेड़ते ही पहले के युग मे जिस वाद-विवाद के वातावरण की सृष्टि होती थी, वह अब नही होती। उन विषयों पर वह जोश-खरोश नही आ सकता और इसी कारण ऐतिहासिक रूप से भले ही यह दिल-चस्प हो, स्वयं वे विचार अब बहुत-कुछ पालतू बन चुके हैं। पर मैं शायद 'गोरा' के अंदर चलनेवाले विचार-संघर्षो पर अधिक जोर दे रहा हूं। कलाकृति के नाते उसमें जो चरित्र-चित्रण है, सुंदर वाक्य और विचार हैं, सूक्ष्म अतिसूक्ष्म मनोविश्लेषण है, व्यक्ति का विकास और परिवर्तन है, वह तो कही नही जा सकता। विचार की सामयिकतावाली धार भले ही कुछ मुथड़ी हो गई हो, पर कला की धार तो उसी प्रकार तेज बनी हुई है। इसके अलावा 'गोरा' हमारे

इतिहास का एक अध्याय है, पर साथ ही वह भारतीय उपन्यास साहित्य मे एक युगांतर उपस्थित करनेवाली कलाकृति है।

'गोरा' के पांच वर्ष वाद 'चतुरंग' और छ. वर्ष वाद 'घरे वाइरे' याने 'घर और दाहर' की रचना हुई। अध्यापक राय का कहना है कि 'गोरा' के पहले जो उपन्यास रचे गये थे, उनमे तथ्य और घटना-विन्यास का क्रम इस तरह से सजाया गया है और उपन्यास के चरित्र-विकास के स्तर इस तरह से ग्रथित हुए है कि पाठक के मन मे विभिन्न विच्छिन्न घटनाएं और चरित्र समग्र रूप से सामने आते हे, आशिक या खंडित वर्णन के जरिये से जीवन का समग्र रूप प्रतिफलित होता है। श्री राय कहते है—"उपन्यास का वृहत्तर ऐक्य जीवन के खंड-खड अंशो को एकत्र गूथकर एक परिपूर्ण रूप प्रदान करता है। 'आख की किरकिरी' या 'गोरा' या वंकिम के जिस किसी सार्थक उपन्यास से इस वात का दृष्टांत अत्यत आसानी से दिया जा सकता है। उपन्यास की इस समग्रता का धर्म, वृहत्तर ऐक्य का धर्म 'गोरा' के वाद से उपन्यासो मे अनुपस्थित है। दूसरी वात यह है कि 'गोरा' और 'गोरा' के वाद वंगला उपन्यासो मे चरित्र का विकास, विस्तृत घटना और मनोविश्लेपण के जरिये चेतना और वुद्धि के सामने पेश होता है। इस पर्व के उपन्यासो मे ये दोनों वाते अत्यंत सक्षिप्त है, तथ्य का सन्निवेश विरल है और जो कुछ भी है, वह असम्पूर्ण है।"

दूसरे शव्दो मे उनका कहना यह है कि यह उपन्यास वुद्धि-प्रधान है और उसका रस और रहस्य मुख्यतः वुद्धिगम्य है। भापा मे भी संक्षिप्तता की ओर याने थोडे मे वहुत कहने की प्रवृत्ति है। यह विकास का एक स्तर था।

'चतुरंग' के चार अंश अलग-अलग कहानियो के रूप मे प्रकाशित हुए, पर दूसरी कहानी प्रकाशित होते ही यह समझ में आ गया कि कहानिया विल्कुल अलग नही हैं। डा० श्री कुमार के अनुसार यह कोई उच्चकोटि का उपन्यास नही है, पर कुछ लोगो के अनुसार यह उनकी श्रेष्ठ रचना है। इसमें सदेह नही कि 'चतुरंग' वहुत मामूली पाठकों के समय काटने के लिए नही लिखा गया है। अंत मे सवकुछ कह लेने के वाद श्री निहार रजन भी इस राय पर पहुंचते है कि 'चतुरंग' कोई महान् उपन्यास नही है। "इसमे वस्तु-भूमि की गहराई है, पर फैलाव नही है। मानव-ससार की विचित्र वहुमुखी तरंग लीला के साथ इसका योग नही है। इसका जीवन-दर्शन खंडित है, पर जीवन की समग्रता का

इस उपन्यास में स्पर्श नही है। पर 'चतुरग' सुदर और सार्थक साहित्य-दृष्टि है। इसकी वुद्धि की दीप्ति, रहस्यमय संकेत, सूत्र के रूप थोड़े में वर्णन, ज्ञान-गर्भ इगितपूर्ण विवृति, इसकी सूक्ष्म मनोविश्लेषण की धारा और सवसे वढ-कर इसकी कवि-कल्पना के ऐश्वर्य ने इसे जो विशिष्ट और अभिनव साहित्यिक मूल्य प्रदान किया है, इसकी कुछ तुलना 'शेषेर कविता' के अतिरिक्त वंगला साहित्य में और कही नहीं प्राप्त है।"[1]

'घर और वाहर' उपन्यास पहले धारावाहिक रूप से 'सवुज' पत्र में प्रकाशित हुआ। जव यह उपन्यास अभी निकल ही रहा था, तभी इसपर वहुत झगडा खड़ा हो गया। इस उपन्यास मे स्वदेशी आदोलन को केन्द्र वनाकर कथानक प्रस्तुत किया गया है, पर इसके नायक सदीप को स्वदेशी आदोलन का प्रतिनिधि मानना गलत होगा। उसे ऐसा माना गया है, तभी सारे झगड़े खडे हुए हैं। प्रत्येक आंदोलन मे भले-वुरे सव तरह के लोग होते है और संदीप इस आंदोलन के एक अंश का प्रतिनिधित्व करता है। वह वोलने मे वडा तेज है, पर स्वार्थी है। आश्चर्य की वात यह है कि स्वय रवीन्द्रनाथ स्वदेशी आंदोलन के अन्यतम नेता थे, उनके व्याख्यानो और कविताओ से स्वदेशी आंदोलन तथा उसके वाद के क्रांतिकारी आदोलन को वड़ा वल मिला, पर उन्होने उसके कृष्ण-पक्ष को ही अपनी कला के लिए क्यो चुना? इतना कह लेने के वाद भी यह मानना पड़ता है कि यह एक वहुत ही शक्तिशाली उपन्यास है।

'घर और वाहर' की रचना के लगभग वारह वर्ष वाद कवीन्द्र ने 'तीन पुरुष' नाम से एक उपन्यास लिखना शुरू किया, पर वाद को इसका नाम 'योगायोग' रख दिया। इसके वाद रवीन्द्रनाथ ने 'शेषेर कविता' नामक उपन्यास लिखा। पहले ही वताया जा चुका है कि यह उपन्यास काव्यधर्मी है। यह एक आश्चर्य की वात है कि 'गोरा' और 'घर और वाहर' मे रवीन्द्रनाथ ने उस युग को अपने सामने रखकर चरित्र चुना था, पर इन उपन्यासो मे किसी विशेष युग को या किसी विशेष टाइप को चित्रित करने की सीमाएं नहीं है। 'शेषेर कविता' मनोविज्ञान-प्रधान है, यह कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी, पर साथ ही इसकी प्रत्येक पंक्ति में काव्यमय वर्णन की प्रधानता है।

---

[1] रवीन्द्र साहित्येर भूमिका, पृ० ३३५

रवीन्द्रनाथ ने और भी कई उपन्यास लिखे, पर उनकी पृथक् आलोचना की गुंजाइश यहापर नही है।

नाटक के क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ ने पहले एक गीतिनाट्य लिखा, जिसका नाम "वाल्मीकि प्रतिभा' है। रवीन्द्रनाथ वाद को वरावर जव भी इसके सम्बन्ध मे उल्लेख करते थे, वे कुछ सकुचाते थे, पर यह रचना उतनी निम्नकोटि की नही है, जितनी वह समझते थे। इन दिनो कविवर की उम्र १८-२० के लगभग थी और संगीत की चर्चा वडे ज़ोरो के साथ चल रही थी। उसी काल में 'काल मृगया', 'प्रकृतिर प्रतिशोध' तथा 'मायार खेला' की रचनाएं हुईं। इनमें से 'प्रकृतिर प्रतिशोध' मे कविवर सगीत से हटकर नाटक की ओर वढते हुए दृष्टिगोचर होते है। 'वाल्मीकि प्रतिभा' और 'काल मृगया' मे कविवर ने पौराणिक कथा को ही आधार रखा था, पर 'प्रकृतिर प्रतिशोध' की कहानी स्वरचित है। कहानी इस प्रकार है कि एक संन्यासी ने समस्त इद्रियो पर विजय प्राप्त करने के लिए एक निर्जन गुफा मे रहना शुरू किया। वाद को इस संन्यासी ने एक असहाय वालिका के प्रति दयार्द्र होकर उसे अपने आश्रम में आश्रय देना चाहा। सन्यासी उसे अपनी कन्या के रूप मे उसे वैराग्य का उपदेश देते हैं, पर वह यह सवकुछ नही समझती और संसार मे लौटना चाहती है। इस प्रकार दो आदर्शो का सग्राम होता है। अन्त मे सन्यासी को एक दिन कहना पडा कि आज से मैं संन्यासी नही हू, इत्यादि-इत्यादि। यह कविवर का पहला महत्वपूर्ण नाटक है।

'मायार खेला' नामक नाटक मे कोई खास विषय नही लिया गया। वस कई एक तरुण गाना गाते जाते है और उसीके अन्दर से उनका परिचय सामने आता जाता है।

इस युग के वाद उन्होने एक के वाद एक 'राजा ओ रानी', 'विसर्जन' और 'मालिनी' लिखे। प्रथम नाटक एक ऐतिहासिक घटना को छूकर चलता है। यों कहा जाय कि यह ऐतिहासिक घटना भी मनगढंत है तो वह सत्य के अधिक निकट होगा।

नाटकीय दृष्टि से 'विसर्जन' मे अपेक्षाकृत नाटकीय द्वंद्व अधिक है। वाद को जो 'मालिनी' नाटक लिखा गया, उसमे और इसमे वड़ी समता है। दोनो नाटकों मे रूढिवाद के विरुद्ध कथानक प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ तो सनातन

रूढिवादी धर्म है और दूसरी तरफ मानव-धर्म का प्रतीक एक विशाल व्यापक धर्म या सिद्धात है। 'विसर्जन' का रघुपति और 'मालिनी' का क्षेमंकर और 'विसर्जन' का जयसिह और 'मालिनी' का सुप्रिय करीब-करीब एक ही हैं। श्री राय के अनुसार इनकी भावना और गति भाषा और प्रकाश के बीच मे पृथकता बहुत कम है। 'मालिनी' के कथानक मे एक राजकन्या का द्वंद्व दिखलाया गया है, जिसने बौद्ध अर्हत काश्यप से ससार-त्याग का पाठ प्राप्त किया है और वह उसी मार्ग मे चलना चाहती है, पर सनातन धर्म के अनुयायी इसका विरोध करते हैं। इसीपर समस्या खड़ी हो जाती है। सनातन धर्म के नेता क्षेमंकर हैं। इसमे और भी जटिलता इस प्रकार उत्पन्न हो जाती है कि क्षेमंकर का मित्र सुप्रिय यद्यपि अपने मित्र के साथ है, फिर भी वह यह नही चाहता कि राजकन्या को निर्वासन का दंड दिया जाय। इसपर सुप्रिय और क्षेमंकर मे वाद-विवाद होता है और अंततोगत्वा सुप्रिय यह कहता है—"तुम्हारा स्वर्गधाम झूठा है और तुम्हारे देवता भी झूठे हैं। इस ससार मे व्यर्थ ही इतने दिन मैंने भ्रमण किया, कभी किसी शास्त्र से तृप्ति नही प्राप्त हुई, आज मैंने अपना धर्म पा लिया, जो हृदय के बहुत ही निकट है।"

रानी बराबर राजकन्या को समझाती है, पर राजा समझाते हुए भी कुछ तरह देते जाते हैं। उधर क्षेमंकर बाहर से सेना मंगाकर इस राज्य में सनातन धर्म को पुन. प्रतिष्ठित करने का षड्यंत्र करता है। सुप्रिय इस बात को खोल देता है। क्षेमकर पकड़ा जाता है और उसे प्राणदड देना निश्चित होता है, मालिनी ने उसके लिए क्षमा-याचना की। इस प्रकार से नाटक मे कई रोमांचकारी घटनाएं आती है। इसके साथ ही आदर्शों के संघर्ष और कवितामय वर्णन के कारण यह नाटक बहुत ही सुन्दर ढग से विवर्तित होता है। अवश्य यह एक कवि की कल्पना है, पर इस कल्पना मे बड़ी उदात्तता है। यह नाटक बार-बार अभिनीत भी हुआ है।

इसके बाद रवीन्द्रनाथ ने 'गांधारीर आवेदन', 'सती', 'नरकवास', 'लक्ष्मीर परीक्षा' और 'कर्ण-कुंती-संवाद' लिखे। इन नाटको मे भी मानव-धर्म की महिमा बार-बार गाई जाती है। 'लक्ष्मीर परीक्षा' नामक नाटक में हास्य का स्रोत भी फल्गू की तरह भीतर-भीतर चलता जाता है। ये नाटक मुख्यतः पढने के लिए ही लिखे गये थे। इस प्रकार के नाटकों के प्रवर्तक भी रवीन्द्रनाथ

ही थे। यह मानना पड़ेगा कि इन नाटको मे कविता के साथ-साथ नाटकीयता प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। 'गांधारीर आवेदन' नामक नाटक मे गाधीजी के प्रतीक धृतराष्ट्र के चरित्र में एक तरफ मानव-धर्म के प्रति आकर्षण तथा दूसरी तरफ पुत्र-स्नेह का द्वंद्व चलता है। गाधारी मे यह द्वंद्व प्रत्यक्ष रूप से ऐसी प्रवृत्ति अपना चुका है कि स्नेह मे तो वह पुत्रों के साथ है, पर उसका मन धर्म के साथ है। क्या यह हृदय और मस्तिष्क का द्वंद्व है या यह हृदय के एक अंश के साथ हृदय के दूसरे अश का द्वद्व है? वात यह है कि यदि मस्तिप्क और हृदय का द्वद्व होता, तो उसमें वह गहराई नही आती, जो इसमे दिखाई पड रही है। गाधारी मे इस द्वद्व का अंत इस रूप मे होता है कि वह पुत्रो को चाहते हुए भी आशीर्वाद पाडवो को ही देती है, पर धृतराष्ट्र मे यह द्वद्व अत तक सुलझता नही है।

'सती' नाटक मे भी इसी प्रकार धर्म और पितृ-स्नेह का द्वद्व दिखलाया गया है।

'कर्ण-कुन्ती संवाद' मे द्वंद्व तो स्वाभाविक ही है, क्योकि कुन्ती का चरित्र ही ऐसा है। कर्ण वीर धर्म का प्रतीक है। कुन्ती जो उससे जाकर मिलती है, उसमें पांडवो की विजय-कामना थी, पर साथ ही इस स्वार्थ मे भी त्याग का बहुत गहरा पुट था, क्योंकि कर्ण उसका पुत्र है और शायद सबसे अधिक वीर पुत्र। फिर द्वंद्व क्यो न होता?

'नरकवास' की कहानी भी पौराणिक है। इन नाटक-नाटिकाओ के बाद रवीन्द्रनाथ ने 'व्यंग कौतुक हास्य कौतुक', 'गोडाय-गलद', 'शेप रक्षा', 'वैकुठेर खाता', 'चिरकुमार सभा', 'तासेर देश' नाटक लिखे। प्रथम पुस्तक मे दो छोटी-छोटी नाटिकाएं है। उन्होने भूमिका मे लिखा कि समस्या नाट्य (Charade) के ढंग पर ये नाटिकाए लिखी गई। इन दो नाटिकाओ मे शिक्षित समाज पर व्यग किया गया था। 'हास्य कौतुक' की नाटिकाओ मे भी विपय यही है। स्मरण रहे कि अबतक जिन नाटक तथा नाटिकाओं का उल्लेख किया गया है, वे सब पद्य मे रचित थे। रवीन्द्रनाथ का पहला गद्य नाटक 'गोड़ाय गलद' याने जड मे ही गलत था, बं० सन् १२९९ (लगभग १८८६) मे प्रकाशित हुआ। यह प्रहसन के रूप मे था, पर इसमे पाच अक थे। इसे कॉमेडी की श्रेणी मे रक्खा गया है। पात्र और पात्रियो की वातचीत बहुत पैनी, हास्य से मधुर और उज्ज्वल है, पर

अभिनय की दृष्टि से यह उतना अच्छा नही था। बातचीत कुछ कम रहती तो अच्छा रहता। कविवर का ध्यान इस ओर गया होगा, इसलिए ३७ साल बाद इसका एक संशोधित रूप 'शेष रक्षा' नाम से प्रकाशित हुआ। 'शेष रक्षा' अभिनय की दृष्टि से बहुत ही सुदर, संयत रचना हो गई। हास्य रस भी पहले से सुसंस्कृत हो गया और बातचीत भी सक्षिप्त हुई।

'बैकुठेर खाता' भी एक प्रहसन था। पर यह केवल प्रहसन नही था, क्योकि इसमे हास्य रस के अलावा करुण रस भी है। बैकुठ को हास्य का पात्र बनाया गया है, साथ ही उसके प्रति बडी तगडी सहानुभूति भी है।

'चिरकुमार सभा' पहले-पहल ब० सन् १३०७-१३०८ मे (लगभग १८९३) पहले-पहल प्रकाशित हुआ था, पर बं० सन् १३३२ (१८९७ ई०) में कविवर ने उपन्यास को बदलकर एक नाटक की रचना की और उसका नाम 'चिरकुमार सभा' रक्खा गया। स्मरण रहे कि 'चिरकुमार सभा' उपन्यास उस समय लिखा गया था, जिस समय स्वामी विवेकानद का बगाल मे बड़ा जोर था और चिरकुमार संन्यासियो की धूम मची हुई थी। रवीन्द्रनाथ को यह आदर्श नही रुचा, इसलिए उन्होंने इस पुस्तक की रचना की। पहले से ही रवीन्द्रनाथ इस आदर्श के विरोधी थे, यह 'प्रकृतिर प्रतिशोध' नामक प्रथम युग के एक नाटक मे ही स्पष्ट हो चुका था। 'चिरकुमार सभा' के युग मे ही उन्होंने एक कविता मे भी यह लिखा था—'वैराग्य साधन से मुक्ति, सो वह हमारे लिए नही है।' अत तक रवीन्द्रनाथ इसी आदर्श पर डटे रहे। 'चिरकुमार सभा' प्रहसन बार-बार रगमच पर आया। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि यद्यपि यह एक समसामयिक विषय को लेकर लिखा गया है, पर इसका व्यग कही भी उन लोगो की भद्दी हँसी नही उडाता, जो सन्यास धर्म को अपनाकर चल रहे हैं, बल्कि इसका इंगित यही है कि यह धर्म हरेक के लिए नही है।

इसके बाद 'तासेर देश' प्रकाशित हुआ। इन नाटक मे व्यंग्य की प्रधानता है और नौकरशाही तथा रूढिवाद पर फब्तिया कसी गई हैं। सब एक विशेष ढंग से बोलते, उठते, बैठते हैं। कोई दुडी, तिडी, छक्का, पंजा है, तो कोई गुलाम, बादशाह, बेगम। पर ऐसे देश मे भी अत तक दो व्यक्ति आते हैं और वह अपने साथ मुक्ति का गीत और साथ ही नियमो के प्रति विद्रोह ले आते हैं। कहना न होगा कि कवि ने इस प्रकार से रूढिवाद के विरुद्ध चोट पहले भी की

थी और वे आगे भी वरावर करते रहे। 'अचलायतन' नामक नाटक मे भी उन्होंने वाद को इसी प्रकार से समाज की रूढियों के विरुद्ध झंडा बुलंद किया था।

'तासेर देश' के वाद 'शारदोत्सव' प्रकाशित हुआ। यह एक तरह से ऋतु का आवाहन करते हुए प्रकृति के सौंदर्य से ओत-प्रोत है। जो छोटा-सा कथानक है, उसमे कुल इतना कहने का प्रयास किया गया है कि आनंद को उपभोग करने के लिए मनुष्य को त्याग करना पडता है याने त्याग आनंद का एक दूसरा रूप है, वह रूप जिसके विना मनुष्य न तो आनंद का अधिकारी होता है और न वह उसे उपभोग कर सकता है। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने अपने एक लेख में इसका स्पष्टीकरण किया है कि वे इस नाटक मे क्या कहना चाहते थे। उनके शब्द ये हैं—"आत्मा का प्रकाश आनंदमय है। इसी कारण जो व्यक्ति दुःख या मृत्यु को स्वीकार कर सकता है, भय अथवा आलस्य अथवा सशय मे इस दुःख के मार्ग से वचकर नही चलता, संसार में वही आनंद प्राप्त करता है। वाकी लोग आनंद से वचित रह जाते हैं।" रहा यह कि कहांतक कथानक के जरिये से यह विचार सामने आया है, इसमे थोडा-सा संदेह है, क्योंकि उपनंद अपने को शरत् के उत्सव से इस कारण अलग रखता है और दुःख की साधना करता है कि वह अपने प्रभु का कर्ज अदा कर सके। क्या इस कथानक से यह वू नही आती कि सामत धर्म का निर्वाह करना चाहिए? वाद को यह 'शारदोत्सव' नाटक 'ऋण शोध' नाम से फिर से लिखा गया था।

'प्रायश्चित्त' नाटक व० सन् १३१६ (१८०२ ई०) मे प्रकाशित हुआ और यह 'वहुठाकुरानीर हाट' नामक उपन्यास से प्रस्तुत किया गया था, पर मूल उपन्यास से वहुत-सी वातो मे भिन्नता है। धनजय वैरागी जो 'प्रायश्चित्त' का एक मुख्य पात्र है, मूल उपन्यास मे नही है। इस चरित्र के सवध मे वताया गया है कि यही चरित्र 'मुक्ति धारा', 'फाल्गुणी', 'अचलायतन' आदि आधे दर्जन नाटको मे विभिन्न नाम से आता है। वह वैरागी, आत्म-विस्मृत, चिर-नवीन, निर्भय, सत्यवादी, अत्याचार-अविचार का चिरशत्रु है। श्री निहारराय तो यहातक कहते है कि यह पात्र मानो नाटक का सदा उन्मुक्त चौडा-सा झरोखा है, जिसके अंदर की सारी वेदना, अटकी हुई दूपित वायु निकल जाती है और वाहर से स्वच्छ, सहज, सुनिर्मल आलोक की दीप्ति भीतर पैठती है।

वाद को 'प्रायश्चित्त' कुछ परिवर्तित होकर 'परित्राण' नाम से प्रकाशित हुआ। रवीन्द्र-साहित्य मे यह विशेष द्रष्टव्य है कि कविवर ने पहले की लिखी हुई कई रचनाओ को वाद मे नये रूप मे प्रस्तुत किया। 'शारदोत्सव' के 'ऋण शोध' नाम से प्रकाशित होने की वात तो हम पहले ही वता चुके है। 'अचलायतन' भी वाद मे परिवर्तित रूप से 'गुरु' नाम से प्रकाशित हुआ। 'राजा ओ रानी' का रूपांतर 'तपती' नाम से प्रकाशित हुआ। 'राजा' नाटक 'अरूप रतन' नाम से परिवर्तित रूप में प्रकाशित हुआ।

'राजा', 'अचलायतन' और 'डाकघर' ये तीनों नाटक 'गीताजलि' और 'गीति माल्य' के वीच मे लिखे गये थे। इसी कारण इनमें अतिमानवता या अति प्राकृतिक शक्तियों के सकेत के संवंध मे वहुत अधिक उल्लेख मिलेंगे। 'रूपरतन' नाटक की भूमिका लिखते हुए कविवर ने यह अति स्पष्ट कर दिया है कि जहां वस्तु आंख से देखी जा सकती है, हाथ से छुई जा सकती है, भंडार मे सचित हो सकती है, जहा धन, जन, ख्याति है, वुद्धि का अभिमान है, वुद्धि के जोर से वाहर ही जीवन की सार्थकता प्राप्त करते की चेष्टा है, सचाई उससे परे की चीज है। कहना न होगा कि यह सारी वात नाटक का स्पष्टीकरण न करते हुए उसे ले जाकर और भी धुवलके मे डाल देती है।

'अचलायतन' नाटक उसी प्रकार से एक ऐतिहासिक नाटक वन चुका है, जैसे वकिमचद्र का 'आनदमठ'। शिक्षित याने अंग्रेजी शिक्षित वंगाली समाज के लिए यह एक जलती हुई मशाल के रूप मे हो गया। जो कुछ भी शास्त्र, आचार, नियम, विधान, मत्र, तत्र, वर्ण और जाति का अभिमान हमारी प्रगति के मार्ग को रोककर खडा है, वही 'अचलायतन' है और उसीके विरुद्ध यह नाटक मानो विद्रोह के लिए मनुष्य को ललकारता है, भले ही उस 'अचलायतन' के पीछे शताब्दियो की छाप हो। इस नाटक मे कथित छोटी जातियो याने अंत्यजों को उठाने की वात भी आती है। अचलायतन की दीवार ढह गई और विद्रोह की जय हुई। नई निष्ठा और नई श्रद्धा का सूत्रपात हुआ। रवीन्द्रनाथ ने इस-नाटक की व्याख्या करते हुए अपने ढग से कहा है—"मैं तो ऐसा समझता हूं कि यूरोप मे जो लडाई (१६१४-१८) शुरू हुई है, वह इस कारण हुई है कि गुरु-जी पधारे हैं। उन्हे परम पुरातन वन की दीवार, मन की दीवार, अहकार की दीवार तोड़नी पड रही है। उनकी अगवानी के लिए कोई प्रस्तुत नही था, पर वे

समारोह के साथ आयेंगे, चाहे वे जव भी आवें। इसके लिए तैयारी बहुत दिनो से चल रही थी।"

रवीन्द्रनाथ ने यह व्याख्या नाटक-रचना के बहुत दिनो वाद लिखी। ऊपर जो शब्द दिये गए है, उनका स्पष्ट अर्थ समझना तो मुश्किल है, पर क्या उनका इगित १९१७ की रूसी समाजवादी राज्य-क्राति से था? वात यह है कि कई वार अनुप्रेरित अवस्था में साहित्य-सृजक ऐसी वाते कह जाता है, जिसका पूरा अर्थ वह भी नही समझता। घटनाएं ही उनका अर्थ स्पष्ट करती हैं।

'डाकघर' एक रहस्यमय काव्यधर्मी नाटक है। यह नाटक शातिनिकेतन मे तीन दिन के अदर लिखा गया था। इसका प्रथम अभिनय जोड़ासाको वाले मकान मे हुआ था और दर्शको मे महात्मा गावी, मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, लाजपतराय और खापर्डे आदि नेता थे। यह नाटक रहस्य और सकेत इस प्रकार से ओत-प्रोत है कि इसकी सामाजिक व्याख्या करना कठिन है। शायद इसी कारण प्रभातकुमार मुखोपाध्याय ने इस नाटक की व्याख्या रचयिता की जीवनी से करनी चाही है। वात यह है कि वचपन मे उनका जीवन भी वड़ा अवरुद्ध था और वे सैकड़ों विधि-निषेधो के अंदर पले थे। वह थे तो रुद्ध गृह के वासी, पर प्रत्येक घटना उनके मन मे तरंगमाला की सृष्टि करती थी। वे सवकुछ देखते थे, मन भीतर-ही-भीतर रोता था और मिलन सभव नही होता था।

'डाकघर' के चार वर्ष बाद 'फाल्गुणी' की रचना हुई। 'शारदोत्सव' की तरह यह भी ऋतु को लेकर लिखा गया है। स्मरण रहे कि इस वीच कविवर यूरोप की यात्रा कर आये थे। इसमे भी आनंद और यौवन की वही व्याख्या की गई है, जो इससे पहले की पुस्तको मे दृष्टिगोचर होती है। स्वयं कविवर ने 'फाल्गुणी' की व्याख्या करते हुए कहा है—"जीवन को सत्य करके जानने के लिए मृत्यु के वीच से उसका परिचय चाहिए। जो मनुष्य डरकर मृत्यु से वचकर जीवन से लिपटा हुआ है, जीवन पर उसकी यथार्थ श्रद्धा नही है, इसी कारण उसने जीवन को नही प्राप्त किया है। इसी कारण वह जीवन के मध्य मे रहकर भी प्रतिदिन मृत्यु की विभीषिका से मरता है।"

इन्ही दिनों कविवर ने 'वलाका' नामक सग्रह की कविताए लिखी थी, जिनमे इसी प्रकार के स्वस्थ और ओजस्वी विचार प्रस्तुत किये गए थे। 'वलाका' वहुत

दिनो तक क्रियाशील क्रांतिकारियो की पाठ्य-पुस्तक के रूप मे काम आता रहा, पर इस कारण उसका साहित्यिक मूल्य कुछ कम नही है। 'फाल्गुणी' के पहले कवि ने 'वैराग्य साधन' नाम से एक छोटी-सी नाटिका लिखी थी, जो एक तरह से 'फाल्गुणी' की भूमिका या व्याख्या थी। इन दिनो कविवर की उम्र ५४ हो चुकी थी, पर उन्होने स्वय 'फाल्गुणी' मे वाउल का अभिनय किया। कहते हैं, यह अभिनय वहुत ही सुदर हुआ था। इसमे संदेह नही कि 'फाल्गुणी' ने कविवर के साहित्य मे एक और मजवूत कड़ी की सृष्टि करने के साथ ही रूढिवाद के विरुद्ध हमला वोला।

'फाल्गुणी' के सात वर्ष वाद 'मुक्तधारा' नामक नाटक लिखा गया। 'मुक्तधारा' मे कुछ और ही राग अलापा गया है। एक आलोचक का कहना है कि जिस समय वे 'फाल्गुणी' लिख रहे थे, उस समय महायुद्ध (१९१४-१८) जारी था। उन्होने उसमे शक्ति और यौवन का प्राचुर्य देखा था और उन्हे यह आशा थी कि रात्रि की तपस्या से दिन की रोशनी सामने आयेगी, मृत्यु से अमृत प्राप्त होगा, इत्यादि। इस वीच महायुद्ध का अत हुआ था, पर कवियो और मनीपियो का स्वप्न सत्य नही हुआ था, वल्कि पूजीवाद ने अपनी जकड़ और भी कड़ी करनी चाही थी। वे इस वीच एक वार विश्व-भ्रमण भी कर आये थे। इसी वीच जलियावाला वाग हत्याकाण्ड हुआ था। उन्होने सर की उपाधि त्याग दी थी, गाधीजी का असहयोग-आदोलन इस वीच आकर जा भी चुका था और सत्याग्रह का युग शुरू हो गया था।

इन्ही परिस्थितियो से गुजरकर जव वह सुदीर्घ भ्रमण से देश मे लौटे तो उन्होने ६ महीने के अदर 'मुक्तधारा' और दो साल के अन्दर 'रक्त करवी' की रचना की। 'मुक्तधारा' पर केवल वाहरी घटनाओ की ही छाया है, ऐसा मानना असम्भव है। इसमे जहा यान्त्रिकता या यत्र-सभ्यता के प्रति क्रोध है, वहां शासक-जाति की दुष्टता और पराधीन जाति के दु ख का भी चित्रण है। यान्त्रिकता के प्रति कविवर का जो विद्वेप है, वह कुछ-कुछ गांधीवादी वल्कि गाधीजी के पहले भी इस प्रकार के मत रखनेवालो के ढर्रे पर चलता है, मानो यत्र का ही दोप है, जवकि दोप उस समाज-व्यवस्था का है, जिसमे यत्र एक वर्ग-विशेप के शोपण का साधन वन जाता है। इसी कारण 'मुक्तधारा' मे अभिजित यत्र को तोड़ डालता है, पर यत्र को जिन लोगों ने शोपण के लिए प्रयुक्त किया, उनके

विरुद्ध कुछ नही करता । फिर भी 'मुक्तधारा' नाटक के रूप मे सफल है ।

'रक्त करवी' भी करीब-करीब उन्ही विचारो को लेकर चलता है, जो 'मुक्तधारा' का उपजीव्य है। पहले 'रक्त करवी' शिलाग पर रचित हुआ था और इसका नाम 'यक्षपुरी' रखा गया था । इसकी कहानी इतनी-सी है कि कुछ लोग लोभ तथा अन्य कारणो से अपने ही बनाये हुए जेलखानो मे बद है और जेलखाने के सीखचो से बाहर जीवन की प्रतीक स्वरूपा नंदिनी उन्हे बुला रही है । वह जेलखाना ही यक्षपुरी है । यक्षपुरी के राजा ने नंदिनी को उसी प्रकार से पाना चाहा, जिस प्रकार से वे स्वर्ण तथा धन-सम्पत्ति प्राप्त करते है, पर प्रेम और सौदर्य को ऐसे थोड़े ही पाया जाता है । 'रक्त करवी' गीतधर्मी है, साथ ही उसमें रोमांस का वातावरण है ।

'रक्त करवी' की रचना के बाद कविवर ने कुछ पुरानी कहानियो और नाटको को नये रूप मे पेश किया । 'कर्मफल' नामक कहानी का नाट्य रूप 'शोध बोध' हुआ और 'शेषेर रात्रि' कहानी का नाट्य रूप 'गृह-प्रवेश' हुआ । नाटक रूप मे 'शोध बोध' अधिक सफल रहा । इसके बाद उन्होंने जिन रचनाओ को नये रूप में रक्खा, उनका पहले ही किसी-न-किसी रूप में उल्लेख आ चुका है ।

वं० सन् १३२० के (लगभग १९१६ ई०) 'प्रवासी' मे कविवर का एक नाटक 'रथयात्रा' नाम से प्रकाशित हुआ था, इसीका परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप 'रथेर रशि (रथ की रस्सी) हुआ। इसे श्री निहार रंजन ने आधुनिक लोकतान्त्रिक भारतीय गण मन का घोषणापत्र बतलाया है । भारतीय समाज-व्यवस्था का रथ चल नही पाता, पुरोहित का मंत्र, क्षत्रिय का शौर्य, पूजीपति की पूजी याने शास्त्र, शस्त्र, सब उसे चलाने मे असफल रहे। इतने मे बाढ के पानी की तरह शूद्रो का दल आया, जो अपनी एकता के बल से उसे चलाने मे समर्थ हुआ, पर रथ पुरानी लीक पर न चल-कर नये प्रशस्त मार्ग मे चल पडा। शूद्र शक्ति की जय हुई। इतने मे आये कवि । लोगो ने उनसे पूछा कि यह क्या हुआ ? तब कवि ने बताया—"उनका सिर बहुत ऊंचा था, महाकाल के रथ की चूड़ा पर ही उनकी दृष्टि निबद्ध थी, नीचे की तरफ उनकी आख देखती ही नही थी, इसीलिए उन्होने रथ की रस्सी की अवज्ञा की । मनुष्य के साथ मनुष्य को जो बधन बांधता है, उसे उन्होने नही माना, इस कारण पूजा धूल मे गिरी और भक्ति मिट्टी मे ही पड़ी रही । रथ की रस्सी बाहर पड़ी रहती है । वह रहती है मनुष्य और मनुष्य में बंधी हुई, देह से देह

और प्राण से प्राण में युक्त। वही अपराध जमा हो गया और बंधन दुर्बल हो गया। सब लोग मिलकर कहो कि जो इतने दिनों तक मरे हुए थे, वे जी उठे और जो इतने दिनो तक तुच्छ थे, वे एक बार सिर उठाकर खडे हो।"[1]

इस प्रकार यह नाटक पुरोहितवाद, पूंजीवाद तथा इस प्रकार के सब शोषक वादो के विरुद्ध जन-विद्रोह की आवाज को बुलन्द करता है।

इसके बाद 'कविवर दीक्षा' में भी त्याग की महिमा गाई गई है। इसके बाद जो नाटक तथा नाटिकाए लिखी गई, उनमे गीति और नृत्य नाट्यों की ही प्रधानता है। ऐसे नाटको मे 'नटीर पूजा', 'नृत्य नाट्य', 'चित्रांगदा', 'शाप मोचन' विशेष उल्लेखनीय है। इनमे से 'नटीर पूजा' ही इधर के सब नाटको मे अधिक सफल माना गया है। इन नाटको मे कथानक का विकास भी सुन्दर ढंग से होता है। रानी लोकेश्वरी के मन मे जो द्वन्द्व है, उसीका चार अकों मे जिस प्रकार विकास दिखलाया जाता है, वही इस नाटक की सफलता के लिए काफी उपकरण होता, पर इसमे और भी तत्त्व है।

इस प्रकार से हमने रवीन्द्रनाथ के नाटको का जो थोड़ा-सा वर्णन दिया है, उससे उनके नाटको ने बंगला के साहित्य ही नही, सांस्कृतिक जीवन मे भी कैसी महान् क्रांति उपस्थित की, इसका पूरा अनुमान नही किया जा सकता।

अब हम बहुत ही संक्षेप मे कहानियो के क्षेत्र मे उनके योगदान का उल्लेख करेंगे। सच तो यह है कि रवीन्द्रनाथ से ही बंगला साहित्य मे कहानी की प्रतिष्ठा हुई। इस संबंध मे कुछ आंकडे इस प्रकार है। हम इस प्रसंग को 'रवीन्द्र साहित्येर भूमिका' से उद्धृत करते हैं—"उनकी अधिकाश कहानिया मोटे तौर पर ब० सन् १२९८ से १३१० के बीच रचित हुई। अवश्य इसके बाद भी कई प्रसिद्ध कहानियाँ १३१४ से १३२५ के अंदर लिखी गई थी, पर उनकी अधिकाश कहानियो का मूल धर्म १२८९ से १३१० तक की रचनाओ मे प्राप्त होगा। 'पोस्ट-मास्टर' कहानी १२८९ में लिखी गई थी।" इन दिनों कविवर ने जमीदारी पर देख-रेख का भार लिया था और वह दिनभर पूर्व बंगाल की नदी में नाव पर ही काटते थे। इन्ही दिनो उन्हे गांव के जीवन से घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने का मौका मिला। १८९४ के २७ जून को उन्होंने शिलाईदह से एक पत्र में लिखा

[1] रवीन्द्र साहित्येर भूमिका—पृ० १६४

था—"आजकल ऐसा मालूम होता है कि यदि मैं कुछ भी न कर कहानियां लिखू तो उससे मुझे कुछ-कुछ मानसिक सुख प्राप्त हो और यदि मैं इसमे सफल रहू तो दस-बीस पाठकों को भी सुखी कर सकू। कहानी लिखने का एक सुख यह है कि जिनकी बात मैं लिखूंगा, वह हमारे दिन और रात के खाली समय को एकदम भर देंगे, मेरे अकेले मन के साथी होंगे, वर्षा के समय मेरे बन्द कमरे की संकीर्णता दूर करेंगे और धूप के समय पद्मा तट के उज्ज्वल दृश्य के बीच मेरी आख के सामने घूमते रहेंगे। इसीलिए आज सवेरे मैंने गिरिबाला नाम से एक उज्ज्वल श्याम रंग की एक छोटी अभिमानी लड़की को अपने कल्पना राज्य में अवतरित किया है।"

इस अवसर पर 'मेघ ओ रौद्र' कहानी लिखी गई। इसी प्रकार श्री राय ने दिखलाया है कि दो साल पहले याने २९ जून सन् १८९२ मे शाहजादपुर की कोठी में गांव के पोस्टमास्टर साहब आये थे। इस तरह 'पोस्टमास्टर' कहानी लिखी गई। हम यहांपर उनकी कहानियों की विस्तृत आलोचना नही कर सकते, पर इतना बता दे कि कई लोग यह समझते हैं कि उन्होने कहानियां उसी प्रकार एक-एक शब्द जोड़कर लिखी, जैसे कविता लिखी जाती है, इस कारण वह कला की दृष्टि से किसी भी अंश मे निकृष्ट नही हैं। यदि वर्ग की दृष्टि से विचार किया जाय, तो रवीन्द्रनाथ स्वयं अभिजात वर्ग में पैदा हुए थे, उसीमे वह पले और बडे हुए, पर वह साहित्य के क्षेत्र मे मध्यवित्त समाज के ही प्रतिनिधि हैं। एक बात और है, वह यह कि कहानी-रचना के आदि पर्व मे वह मानो केवल वैयक्तिक जीवन को केंद्र बनाकर चलते हैं।

रवींद्र-साहित्य की भूमिका का यह उद्धरण देखिये—"लेखक ने सबकुछ लगाकर सिर्फ हमारे हृदय को ही छूना चाहा है। हमारी बुद्धि और समाज-चेतना को उद्बुद्ध करने की तरफ उनका ध्यान उतना अधिक नही है। मध्यवित्त तथा गरीब तबके के लोगो के दु.ख-दर्द, अपमान, अत्याचार, अविचार, अन्याय, असगति वह सब कुछ दिखाते हैं और उनका वास्तविक परिचय हमारे निकट लाते हैं, परन्तु इन सबके पीछे समाज और राष्ट्र-व्यवस्था का निर्मम, निष्ठुर, साथ ही अचेतन अविचार हो सकता है, इस सम्बन्ध मे वह हमें कोई इगित नही देते। 'नष्ट नीड' कहानी से सामाजिक चेतना का आरम्भ होता है।"

उनकी कहानियो की सख्या बहुत अधिक है। बीच-बीच मे वर्षों ऐसा हुआ

है कि उन्होने कोई कहानी नही लिखी। इसमे कोई सदेह नही कि रवीन्द्र-साहित्य में कहानियों का स्थान वहुत ही उच्च है। डा० श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय ने विश्लेषण करके दिखलाया है कि प्रवान रूप से निम्न उपायों के द्वारा उन्होंने हमारे रोजमर्रा के सामान्य जीवन पर रोमास की असाधारणता तथा दीप्ति ला दी है—

(१) प्रेम,
(२) सामाजिक जीवन मे सम्पर्क की विचित्रता,
(३) प्रकृति के साथ मानव-मन का निगूढ अन्तरंग सम्पर्क
(४) अति प्राकृत का सम्पर्क।

प्रेम की विचित्र लीला 'एक रात्रि', 'महामाया', 'समाप्ति', 'दृष्टिदान', 'माल्यदान', 'मध्यवर्तिनी', 'शास्ती', 'प्रायश्चित्त', 'मानभंजन', 'दुराशा', 'अध्यापक' और 'शेपेर रात्रि' इत्यादि कहानी में देखी जा सकती है। दूसरे पर्याय मे 'कावुली वाला', 'पोस्ट मास्टर', 'मास्टर मशाय', 'पण रक्षा', 'कर्म-फल' आदि कहानियां आती है। तीसरे पर्याय मे 'सुभा', 'अतिथि', 'तारापद', 'समाप्ति' आदि कहानियां आती है। चौथे पर्याय मे 'निशीथे', 'मणिहारा', 'कंकाल', 'क्षुधित पापाण' इत्यादि कहानियां है।

: १७ :

शरतचन्द्र

जिस समय रवीन्द्रनाथ वंगला के साहित्य-गगन मे वहुत जोर-से चमक रहे थे, उन्ही दिनो शरतचन्द्र का एकाएक आविर्भाव हुआ। वहुत-से साहित्यकार ऐसे होते है, जो धीरे-धीरे चमककर वाद को मध्याह्न सूर्य की तरह चमकते हैं, पर शरतचन्द्र जिस समय चमके, उस समय एकदम से मध्याह्न सूर्य की ही तरह चमके। वात यह है कि वह प्रारम्भ मे विलकुल आत्मज्ञान-सम्पन्न कलाकार नही थे और एकलव्य की तरह अपने गुरुओं से भी दूर नीरव साधना कर रहे थे।

१८७६ ई० के १५ सितम्वर को वगाल के हुगली जिले के एक छोटे-से गांव

देवानन्दपुर मे शरतचंद्र का जन्म हुआ। उनके पिता मोतीलाल चट्टोपाध्याय साहित्य और कला के अनुरागी थे। उन्होने चित्रकारी की, उपन्यास भी लिखा, किन्तु कभी कोई रचना पूरी नहीं कर पाये। कुछ दूर तक जाकर वह अपनी रचना को असम्पूर्ण छोड़कर आगे वढ जाते थे और दूसरा काम उठा लेते थे। इसी प्रकार वह कल्पना-विलासी जीव थे। उनकी कोई रचना पूरी नही हुई।

शरतवावू उनकी नौ संतानो मे एक थे। घर मे वच्चो का ठीक-ठीक शासन नही होता था याने कभी जव वालक शरत पढ़ाई-लिखाई छोड़कर इधर-उधर चल देते थे तो कोई विशेष शोर नही मचाता था, पर जव वह लौटकर आते थे तो खूव मार पड़ती थी और वह पढने के लिए भेजे जाते थे। इस प्रकार वह वार-वार भागते और वार-वार पढने के लिए भेजे जाते थे। ऐसे वालक के लिए भविष्य मे साहित्य-जगत के शीर्ष स्थान में पहुचने की कल्पना नही की जा सकती थी, पर जीवन में ओत-प्रोत जिस तरह के साहित्य की शरतवावू ने वाद मे चलकर रचना की, उसके रचयिता होने के लिए कदाचित् इसी प्रकार का जीवन होना आवश्यक था। 'देवदास' और 'श्रीकांत' के लेखक के लिए ग्राम-जीवन की पूरी जानकारी ही नही, अनुभूतिपूर्ण व्यावहारिक जानकारी भी आवश्यक थी। 'देवदास' की पार्वती और 'श्रीकात' की राजलक्ष्मी कपोल-कल्पित चरित्र नहीं है। ऐसे ही वहुत-से चरित्रो की चाभी उनके वचपन के जीवन मे मिल सकती है।

उन्होंने अपने वचपन के सम्वन्ध में जो थोड़े-वहुत संस्मरण लिखे हैं, उनसे इस प्रकार की वहुत-सी वातो पर रोशनी पडती है।

किसी प्रकार वह १८ साल की उम्र मे एंट्रेन्स की परीक्षा मे पास हो गये। इन्ही दिनो उन्होने 'वासा' (घर) नाम से एक उपन्यास लिख डाला, परन्तु यह रचना उनके मन के मुताविक न होने के कारण, उन्होंने उसे फाडकर फेंक दिया। उनके पिता मोतीवावू तो किसी रचना को प्रस्तुत करते-ही-करते वीच मे निराश होकर छोड़ देते थे, पर पुत्र ने रचना समाप्त तो कर ली। इस प्रकार शरत ने अपनी कई रचनाएं फाड़ डाली। वहुत-से लोग यह समझते हैं कि शरतवावू एकाएक परिपूर्ण तथा परिपक्व प्रतिभा के अधिकारी होकर साहित्य क्षेत्र मे आये, यह गलत है। असल मे उनकी नीरव साधना चलती रही।

वह रवीन्द्र साहित्य के साथ-साथ थैकारे, डिकेस आदि उपन्यासकारो का अध्ययन करते रहे। हेनरी उड के प्रसिद्ध उपन्यास 'ईस्टलीन' के आधार पर उन्होंने 'अभिमान' नाम से एक उपन्यास लिखा था, साथ ही उन्होने मेरी कारेली के 'माईटी ऐटम' पुस्तक का वगला अनुवाद किया था, पर उनके छपने की नौवत नही आई।

यह सब उनकी साधना के सोपान थे। वह इस प्रकार लिखते जाते थे, पर साथ ही राजू नामक अपने एक मित्र के साथ वीच-वीच मे कई-कई दिन गायव भी रहते थे।

वह लगन के वडे पक्के थे। इसका एक उदाहरण यह दिया जाता है कि उन्होने अपने एक साथी से कहा कि आज रात को मेरे पास कोई पढने के लिए न आना। जव सवेरा हुआ और उनके साथी उनसे पढने के लिए पहुचे तो वह वोले—हमने तो तुम लोगो से अभी कहा था कि कोई मेरे पास आज मत आना, फिर तुम लोग क्यो आये ?

तव लोगो ने उनसे कहा कि महाराज, रात खतम हो गई और सवेरा हो गया। इसपर उन्होने जंगला खोला, तव उन्हे पता लगा कि पढते-लिखते रात वीत गई है। इस प्रकार हम देख सकते है कि जीवन के साथ घनिष्ठ परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ वह सारी रात आंखो में भी विता देने मे अग्रगण्य थे। भाषा की साधना तो उन्होने पुस्तको से ही की।

रवीन्द्रनाथ का प्रभाव उनपर वहुत अधिक पडा। लिखने की साधना उन्होंने वरावर जारी रक्खी। वह जीवन-संग्राम की थपेडो के कारण वीच ही मे कालेज की पढ़ाई छोडने के लिए वाध्य हुए। उन्होने वंकिम ग्रंथावली का पारायण किया। इस सम्वन्ध मे पारायण शब्द इच्छापूर्वक प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि उन्होने स्वयं लिखा—"वंकिम को मैंने इतनी वार पढ़ा कि उनकी पुस्तके जैसे कण्ठस्थ हो गई।"

इसी प्रकार वह जव वर्मा चले गये तो उनके साथ कवीन्द्र की कुछ पुस्तके काव्य और कथा-साहित्य था। इन पुस्तकों को भी उन्होने वार-वार पढा। उन पुस्तको को पढते जाते थे और उनपर विचार करते जाते थे। इसीके साथ-साथ वह अंग्रेज़ी साहित्य का भी अध्ययन करते जाते थे। यहां यह वताने की

आवश्यकता नही है कि किस प्रकार से उन्होने कौन-सी पुस्तक लिखी और कैसे-कैसे लिखी।

वर्मा मे रहते समय वे वगचंद्र दे नामक एक व्यक्ति के संपर्क मे आये। यह आदमी विद्वान् था, पर साथ ही शरावी और उच्छृंखल था। इन दिनो शरतचन्द्र ने भी वहुत उच्छृंखल जीवन विताया। शरतचन्द्र इन दिनों ३० रुपये मासिक के क्लर्क थे और वह मेस मे रहते थे। इन्ही दिनो उन्होंने 'चरित्रहीन' लिखा, जिसमें मेस-जीवन का वर्णन है, साथ ही मेस की नौकरानी से प्रेम की कहानी है।

साहित्य-जगत् में शरतवावू का प्रवेश वडे अजीव ढग से हुआ। शरतचन्द्र जव वर्मा से भारत आये थे तो वे अपनी कुछ रचनाओ को भारत मे एक मित्र के पास छोड गये थे। इस मित्र के कोई और मित्र थे। शरतवावू को विना वताये १८०७ मे 'वड़ी दीदी' का धारावाहिक प्रकाशन शुरू हो गया। दो-एक किस्त निकलते ही लोगो मे सनसनी फैल गई और वे कहने लगे कि शायद रवीन्द्रवावू नाम वदलकर लिख रहे हैं। यह खवर कवीन्द्र तक पहुंची। कवीन्द्र ने उन किस्तो को पढा, पढकर उनकी प्रशंसा की और यह साफ कह दिया कि मैं इनका लेखक नही हूं।

शरतवावू को इसकी खवर साढे पाच साल वाद मिली कि उनकी कोई रचना प्रकाशित हुई है। वात यह है कि छापनेवालो ने शरतवावू को प्रूफ भी नही भेजा था। पर इसके वाद भी उन्हे अपना 'चरित्रहीन' छापने मे वडी दिक्कत हुई। 'भारतवर्ष' मासिक पत्र के सम्पादक द्विजेन्द्रलाल राय ने इसे यह कहकर छापने से इकार कर दिया कि यह सदाचार के विरुद्ध पडता है। सवसे आश्चर्य यह है कि द्विजेन्द्रवावू ने ऐसा किया था।

जो कुछ भी हो, अव उनकी गाडी चल निकली और एक के वाद एक 'पडित मोशाय', 'वैकुठेर विल', 'मेज दीदी', 'दर्प चूर्ण', 'पल्ली समाज', 'श्रीकांत', 'अरक्षणीया', 'निष्कृति', 'मामलार फल', 'गृहदाह', 'शेष प्रश्न' आदि निकलते चले गये। उन्होंने वंगाल के क्रातिकारी आदोलन को लेकर 'पथेर दावी' उपन्यास लिखा। यह पुस्तक पहले 'वगवाणी' मासिक पत्र में प्रकाशित हुई। जव यह पुस्तक धारावाहिक रूप मे निकल रही थी, तभी इसपर सरकार की कोप-दृष्टि पड चुकी थी। पुस्तकाकार छपने पर तीन हजार का सस्करण तीन महीने में

समाप्त हो गया। इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने इस पुस्तक को जब्त कर लिया।

जो कुछ पहले लिखा जा चुका है, उससे यह स्पष्ट हो चुका है कि शरतबाबू अपने लिखने का उपकरण जीवन से लेते थे, उन्होने विशेषकर अपने जीवन से बहुत-सी बाते ली। वे स्वय एक यशस्वी आवारागर्द थे। 'चरित्रहीन' का सतीश, 'श्रीकांत' का श्रीकात, 'पल्ली समाज' का रमेश, 'देवदास' का देवदास पक्के आवारागर्द हैं। इसी प्रकार 'बडी दीदी' का सुरेंद्र, 'दत्ता' का नरेंद्र, 'गृहदाह' के सुरेश और महिम आवारागर्द नही तो उनका रुझान आवारागर्दी की ओर है। 'पथेर दावी' का डाक्टर एक क्रांतिकारी है, पर एक क्रांतिकारी इसके सिवा क्या है कि उसकी आवारागर्दी क्रांति को लाने के लिए है।

यह सभी मानते हैं कि शरतचन्द्र के पुरुष पात्रों से उनके उपन्यासों की नायिकाएं हृदय पर अधिक प्रभाव डालनेवाली हैं। शरतचन्द्र की जनप्रियता केवल उनकी कलात्मक रचना अथवा नपे-तुले शब्दो या जीवन से ओत-प्रोत घटनावलियो के कारण नही है, वल्कि उनके उपन्यासो मे नारी को जो हमेशा के परम्परागत बंधनो से मुक्ति मिली, वह सबसे बडी बात है। भारतीय नारियां धर्म, गतानुगतिकता तथा पैसे के संयुक्त मोर्चे के कारण युगो से पिसी जा रही थी। अब शरत की रचनाओं मे उन्हे मुक्ति मिली। युग-युगातर को उनके पैरो की भारी बेडियां जैसे झनझना कर टूट गई। उन्होने भी जाना कि जीवन मे उनका भी कुछ भाग है, जो सर्वदा गौण ही हो, ऐसा नही। शरतचन्द्र की पुस्तको में वार-नारियो का चरित्र भी सहानुभूतिपूर्वक चित्रित है। हमे उनको देखकर ऐसा मालूम होता है कि वे भी मनुष्य योनि की सदस्या है, उनमे भी वैसा ही धड़कता हुआ दिल है, जो किसीसे निकृष्ट नही।

डा० कैलासनाथ काटजू ने शरतचन्द्र पर एक लेख मे लिखा था—"मेरा अनुमान है कि शरतबाबू ने अपनी कला का परिचय अपने नारी पात्रो में ही दिया। उनके नारी पात्र अपनी विशिष्टता लिये हुए जैसे एक के बाद एक हमारे मनश्चक्षु के आगे घूम जाते है और उनमे से कौन अधिक श्रेष्ठ है, इसका निर्णय करना कठिन हो जाता है, क्योकि प्रत्येक नारी पात्र अपने स्थान पर एकदम अद्भुत है। इनमे से सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक आकर्षक कौन है, यह हर पाठक अपनी रुचि और भावना के अनुसार ही तय कर सकता है। यह बहुत-कुछ आदमी के अपने स्वभाव पर भी निर्भर करता है। जहांतक मेरा सबध है, मैं तो १६४१ में

'श्रीकांत' की राजलक्ष्मी से प्रथम साक्षात्कार होने पर ही अपना दिल उसे दे बैठा हूं। यह एक तरह पहली दृष्टि मे प्रेम होने की-सी बात है और मुझे यह कहने में गर्व है कि इस बात को आज १५ वर्ष बीत चुके हैं, फिर भी जैसे राजलक्ष्मी मुझे अपना बंदी बनाये हुए है।"[1]

डा० काटजू साहित्य के विद्वान के रूप मे प्रसिद्ध नही हैं, पर वह अपने ढंग के एक प्रतिभाशाली व्यक्ति है, इसलिए उनकी प्रतिक्रिया को हम उच्च शिक्षित वर्ग की प्रतिक्रिया मान सकते हैं। केवल उच्च शिक्षित ही नही, किसी प्रकार पढ-लिख लेनेवाला प्रत्येक भारतीय शरतबाबू के उपन्यासों को पसन्द करता है। शायद यह कहना अत्युक्ति न होगी कि सारे भारत में शरतबाबू की पुस्तको का जितना प्रचार हुआ, उतना प्रचार रविबाबू की पुस्तको का भी नही हुआ। पर जब हम इससे आगे बढते हैं याने विश्व-साहित्य मे देखते हैं तो रविबाबू के साहित्य का प्रसार शरत-साहित्य से कही अधिक हुआ। क्या इसका कारण केवल यही है कि रविबाबू को अंग्रेजी मे अनुवाद करनेवालो का अधिक सहयोग मिला या इसका कारण यह है कि शरतबाबू में भारतीय तत्व बहुत अधिक है?

उपन्यासकार के रूप में शरतबाबू रविबाबू से श्रेष्ठ रहे, इसमें कोई सन्देह की गुंजाइश नही है, पर शरतबाबू मे हम एक कमी भी देखते हैं। जिस गरीबी के कारण शरतबाबू एफ० ए० की परीक्षा में नहीं बैठ पाये, जिस गरीबी के कारण उन्होंने एक तरह से अपने भाई तथा बहनो को रिश्तेदारो मे बाट-सा दिया तथा जिस गरीबी मे वह बराबर गोता खाते हुए इधर-से-उधर धक्के खाते फिरे, उसकी तथा मध्यवित्त श्रेणी की सबसे बड़ी समस्या बेकारी का उनके उपन्यासो मे कहीं पता नही। 'बड़ी दीदी', 'दत्ता', 'देवदास', 'पल्ली समाज', 'गृहदाह', 'बाम्हन की लड़की', 'शेष प्रश्न' कही भी कोई बेकारी से पीड़ित नजर नही आता। 'पल्ली समाज' मे गरीबी का कुछ चित्रण अवश्य है, पर गरीबी के अनिवार्य नतीजे के रूप मे ग्रामवासियो के दुर्गुणो को जैसे एक-दूसरे से ईर्ष्या, बेईमानी, झूठी गवाही तथा कुसस्कारों पर जोर न

---

[1] नया समाज, फरवरी १९५६

देकर शरतवावू ने इनको मुख्यत अशिक्षा के मत्थे मढ़ा है, जो सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नही है।

इस कमी के अतिरिक्त शरतवावू ने समसामयिक मध्यवित्त समाज का वहुत सुन्दर चित्रण किया है। शरतचन्द्र वहुत अंशो में एक क्रातिकारी थे, पर उनके क्रांतिकारित्व मे भी अपरिवर्तनवादिता का पुट वहुत गहरा है। 'चरित्रहीन' उपन्यास को ही लिया जाय। उसमें सतीश और सावित्री मे परस्पर गहरा प्रेम होते हुए भी उनका मिलन नही होता। सतीश तो सरोजिनी से मिला दिया जाता है, पर सावित्री का क्या होता है? शरतवावू अपने इस आदर्शवाद को वहुत अच्छी तरह छिपा लेते है और यह दिखलाया गया कि सावित्री ने जान-बूझकर सतीश को सरोजिनी के हाथो सौंप दिया। इससे सावित्री का चरित्र जिस गौरवमय रंग मे रंगा जाकर पाठक के सामने आता है, वह अनोखा है, पर साथ ही यह एक दकियानूसी गौरव है, प्रेम की विजय होकर भी नही होती या यो कहा जा सकता है कि उसकी विजय का धोखा होता है, क्योकि प्रेम की विजय केवल अफलातूनी सतह पर ही होती है।

यही वात 'देवदास' की पार्वती के साथ, वल्कि पार्वती और देवदास दोनों के साथ होती है। आजन्म प्रेम का क्या नतीजा दिखाया गया है? यही न कि दोनों मे मिलन नही होता और वह इस कारण कि जिस किसी तरह भी हो, पार्वती का विवाह एक दूसरे व्यक्ति से हो चुका है। यहां प्रेम का तकाजा तो यह है कि पार्वती अपने विवाहित पति को छोड देती या तलाक दे देती और हृदय के पति के साथ विवाह कर लेती। पर जैसा कि मैंने पहले लिखा था 'यदि शरतवावू अपने उद्भावनशील मस्तिष्क से कोई तरीका निकालकर पार्वती को देवदास के निकट पहुचा देते तो वह हिंदू विवाह की भयानक ट्रेजेडी को अपनी कला के मुकुर'मे कैसे दिखा पाते? इसलिए उन्होंने पार्वती और देवदास के प्रेम को वहीं पहुचा दिया है, जहां पहुंचाने से घर-घर मे होनेवाली हिंदू विवाह की ट्रेजेडी को विल्कुल मूर्त कर पाते। इस प्रकार हम एक अजीव परिस्थिति मे पहुचते हैं और वह यह कि पार्वती और देवदास का मिलन न कराने पर ही प्रेम की जय के लिए सवसे वड़ा मुकदमा वनकर तैयार होता है। इस प्रकार हम हैं और नही भी, इस विरोधाभास-पूर्ण मत पर हमने उनकी कला के संवंध में पहुंचते हैं।

उनके उपसहार विल्कुल आदर्शवादी हैं। प्रेम की जो पराकाष्ठा होनी चाहिए, वहांतक पाठक को पहुंचा देते हैं, पर उसे इस भोड़ेपन से विजय मे परिणत नही कराते कि असली मामला ही विगड जाय। 'देवदास' मे तलाक के लिए एक उचित मुकदमा प्रस्तुत होता है। 'चरित्रहीन' विधवा-विवाह के लिए एक तर्क पेश करता है, यद्यपि उसमे सरोजिनी के वीच मे आ जाने के कारण अच्छी तरह उभर नही पाया। 'पल्ली समाज' मे विधवा-विवाह का तर्क 'चरित्रहीन' से कही साफ है।

क्या कारण है कि शरतवावू अपने युग की सवसे वडी समस्या गरीवी, शोषण, वेकारी की ओर उतना नही झुके? उसका कारण यह है कि उन्हे नर और नारी के प्रेम मे समाज के शासन-दंड की निर्दय मूर्ति दिखाई पडी। यह तो कलाकार की वात है, उसे सवसे अधिक कौन-सी वात क्षुब्ध करती है। रहा यह कि परावीनता की ज्वाला का अनुभव वह कर चुके थे, इसीका नतीजा यह था कि उन्होने 'पथ के दावेदार' नामक उपन्यास लिखा। जैसा कि वताया जा चुका है, यह उपन्यास जव्त भी हो गया था। 'महेश' आदि कुछ कहानिया भी उन्होंने लिखी थी, जिनमे शोषण का प्रश्न वहुत उभरकर सामने आया है।

: १८ :

अन्य उपन्यासकार तथा लेखक

कुछ ऐसे उपन्यासकारो का भी परिचय दे देना उचित होगा, जिन्हे अति आधुनिक उपन्यासकारो मे हम नही गिन सकते, पर वे इसी शताब्दी के आरंभ की ओर प्रसिद्ध हुए और अच्छे उपन्यास लिख गये। ऐसे उपन्यासकारों में **प्रभातकुमार मुखोपाध्याय** का नाम सवसे अधिक उल्लेखनीय है। रवीन्द्र और शरत् के चकाचौंध मे जिन उपन्यासकारो को वगला मे और इसलिए वगला के वाहर उचित सम्मान न मिल सका, उनमे वे प्रमुख हैं। प्रभातवावू ने कई उपन्यास लिखे। उनका पहला उपन्यास 'रमा सुन्दरी' व० सन् १३०९-१० मे 'भारती' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता रहा। इसमे एक स्त्री

रमा सुन्दरी का चरित्र-चित्रण है, जो विवाह के पहले तक बड़ी ही नटखट, साहसी रहती है, उसमे स्त्री का स्वभाव बिल्कुल नही है, पर विवाह के वाद ही वह स्नेहशीला पत्नी बनकर रह जाती है।

वाद को प्रभातवावू ने 'नवीन सन्यासी', 'रत्नदीप', 'सिन्दूर कौटा', 'जीवनेर मूल्य', 'मनेर मानुप' आदि वहुत-से उपन्यास लिखे। कहानियां लिखने मे उन्हे विशेप सफलता मिली। उनकी अधिकाश कहानिया हास्य रस की हैं। कुछ कहानिया अवैध प्रेम के संवध में भी हैं। उनकी कई कहानियां स्वदेशी आंदोलन पर हैं। रवीन्द्र के वाद कहानियो की धारा को अक्षुण्ण रखने मे उन्हे एक वडी कडी मानना पडेगा।

वगला के गद्यकारो में प्रथम चौधरी वहुत ही प्रमुख व्यक्ति हो गये हैं। यों तो उन्होने कहानियां लिखी और वे कहानियां अपने समय मे वहुत प्रसिद्ध भी हुई, पर वंगला-साहित्य मे उनका सवसे वडा दान वोल-चालवाला गद्य है। उन्होने संपूर्ण रूप से वोलचाल की भापा को अपनाकर एक नई शैली की स्थापना की, जिसका प्रभाव सारे साहित्य पर पड़ा। उनकी 'चारयारी कथा' चार कहानियों का संग्रह है, पर उनमे एक अर्तनिहित योगसूत्र भी है। आज यदि उनकी रचनाओ को पढा जाय तो यह नही पता लग सकता कि वे क्यो अपने समय के साहित्य पर इतना अधिक प्रभाव डालने मे समर्थ हुए। वोल-चाल की भापा को साहित्य मे सुप्रतिष्ठित करना यह उन्हीके उद्यम और अध्यवसाय का काम था। इस संवंध मे उनकी सेवा कितनी वड़ी है, यह श्री कुमार वन्द्योपाध्याय के इन वाक्यो से ज्ञात होगा—

"मुख्य रूप से उन्हीके समर्थन के कारण वोल-चाल की भाषा साहित्य की ड्योढी पर एक भिखारी की तरह नही, वल्कि समान शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी की तरह साधु भापा के सिंहासन के आधे अश पर अधिकार जमाकर वैठ गई है, यहातक कि रवीन्द्रनाथ ने भी उनकी उक्ति व दृप्टात से अनुप्राणित होकर अपनी परवर्ती रचनाओ में वोल-चाल की भापा का प्रचलन किया। इसलिए उपन्यासकार की दृष्टि से उनका स्थान उतना ऊंचा न होने पर भी हमारी जड़ीभूत विचारधारा मे नये स्रोत का वेग पहुचाना और वुद्धि प्रधानता युक्त मनोवृत्ति प्रतिष्ठित करने का श्रेय उन्हे मिलना चाहिए। इस विपय मे वे अंग्रेजी साहित्यकार चेस्टरटन के समतुल्य हैं। यद्यपि उनमे चेस्टरटन की तड़ित प्रभा

की तरह चकाचौंध कर देनेवाली बुद्धि की असिक्रीडा का अभाव है।"

राजशेखर वसु उर्फ परशुराम अपने ढग के एक ही लेखक थे। कभी वे धर्म पर व्यंग करते हे तो कभी समाज-व्यवस्था पर, तो कभी चिकित्सा-प्रणाली पर, कभी राजनीति पर। उनकी बहुत-सी रचनाओ का हिंदी मे अनुवाद हुआ है और बराबर होता जाता है। उनकी रचना को एक विशेप श्रेणी मे लाना संभव नही है, क्योकि हास्य से संबद्ध सभी प्रकार के अस्त्र उनके निकट मौजूद थे।

श्री केदारनाथ बन्द्योपाध्याय हास्य रस के एक बहुत प्रसिद्ध लेखक हुए हैं। बंगला-साहित्य मे वह हास्य रस के कदाचित् सबसे प्रसिद्ध लेखक माने जाते हैं, पर उनका हास्य रस-भाषा से इस प्रकार बंधा हुआ है कि वह बंगला के बाहर प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सके।

: १९ :

दीनबन्धु के बाद बंगला नाटक और रंगमंच

हमने बंगाल के रंगमंच पर दीनबन्धु मित्र के समय तक लिखा था। इस अध्याय मे उसके बाद का विवरण लिखा जायगा।

महाराजा सर (उस समय केवल बाबू) यतीन्द्र मोहन ठाकुर ने अपनी पाथुरिया घाटावाली हवेली मे पाथुरिया घाटा रगमच स्थापित किया। २५ साल तक यह रगमच उनके भारतीय तथा यूरोपियन मित्रो का मनोरंजन करता रहा। यतीन्द्र मोहन ने १८५८ मे 'विद्या सुदर' के अश्लील अंशो को निकाल कर एक सस्करण प्रकाशित किया था। १८६५ में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। कुछ अंश निकालने के अतिरिक्त कुछ अश जोडे भी गये थे। ६ जनवरी १८६६ को 'विद्यासुदर' का अभिनय हुआ। आगे भी कई बार इसका अभिनय किया गया। कहा जाता है कि उन्ही अभिनयो के एक मौके पर रीवा के राजासाहब उपस्थित थे और वह अभिनय से इतने खुश हुए कि उन्होने काश्मीरी शालो का एक गट्ठा मगाकर अभिनेताओ मे बाटना चाहा, पर उन्हे

वताया गया कि ये अभिनेता शौकिया अभिनय करनेवाले है, अतएव ये किसीसे कुछ लेते नही है। १३ जनवरी १८६६ के अग्रेजी पत्र 'वंगाली' मे इस अभिनय की वडी लम्वी प्रशसा निकली।

वाद के प्रसिद्ध अभिनेता अर्द्धेन्दु शेखर मुस्तफी इन अभिनयो से वहुत प्रभावित हुए और उसका शिक्षारंभ यही से हुआ।

अगला प्रहसन 'वूझले कि ना' (समझे कि नही) का अभिनय १५ दिसंवर १८६६ को हुआ। १८६९ मे प० रामनारायण तर्करत्न द्वारा अनूदित 'मालती माधव' तथा १८७० मे यतीन्द्र मोहन लिखित 'उभय सकट' और 'चक्षुदान' का अभिनय हुआ। इन नाटको मे से प्रथम मे वहु-विवाह के विरुद्ध लिखा गया था। 'रुक्मिणी-हरण' नाम से एक नाटक भी खेला गया।

लार्ड मेयो की हत्या के कारण यह रंगमच वद कर दिया गया, पर १८७३ की २० फरवरी को फिर यह खुला और उस अवसर पर लार्ड नार्थव्रुक आदि कई वडे अग्रेज अधिकारी आये। 'उभय सकट' खेला गया।

इसके वाद १८८१ मे राजा सौरेन्द्र मोहन ठाकुर द्वारा लिखित 'रसाविष्कार वृन्दक' प्रस्तुत किया गया। इसमे विभिन्न रसो का समावेश करने के लिए कई अलग-अलग भाग थे। यह पाथुरिया घाटा मे खेला गया। इस रंगमंच को अच्छे-से-अच्छे सगीतज्ञ का सहयोग प्राप्त हुआ तथा सगीत में कई नये प्रयोग किये गए। इसमे कोई संदेह नही कि पाथुरिया घाटा रगालय मुख्यत एक व्यक्ति का होने पर भी राष्ट्रीय संस्था के रूप मे हो गया।

वंगला के रगमच के विकास मे महर्षि देवेन्द्रनाथ तथा उनके परिवार का दान वहुत ही महान है। सच तो यह है कि कला तथा साहित्य के क्षेत्र मे ठाकुर-परिवार का दान वहुत ही अधिक रहा। पहले ही इसका कुछ उल्लेख आ चुका है। द्वारकानाथ के पुत्र गिरीन्द्रनाथ ने 'वावू विलासी' नाम से एक नाटक की रचना की थी। इसी प्रकार उनके दूसरे पुत्र नगेन्द्रनाथ ने एक रगालय खोलने की चेष्टा की थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की वात तो यहा छोड दी जाती है, पर ज्योतिरिन्द्रनाथ भी अच्छे नाटककार थे और उनके लिखे हुए नाटक 'पुरुविक्रम', 'अश्रुमती' और 'सरोजिनी' वार-वार खेले गए और वहुत सफल रहे।

ठाकुर-परिवार ने जोडासाको रंगालय स्थापित किया। इसमें ठाकुर-परिवार के कई लोगों के अलावा अर्द्धेन्दु शेखर मुस्तफी भी अभिनय करते थे। यहा खेलने

के लिए बहु-विवाह के विरुद्ध एक नाटक प्रस्तुत करने के लिए विज्ञापन दिया गया, जिसमें कहा गया कि चुने जाने पर नाटककार को २०० रुपये पुरस्कार दिये जायंगे। यह पुरस्कार 'नवनाटक' लिखने पर रामनारायण को मिला। यह १८६५ के लगभग की बात है। 'नवनाटक' के बाद 'मनोमयी', 'अलीक बाबू', 'हिंदू-महिला' आदि नाटक सामने आये। १८८१ के २६ फरवरी को रवीन्द्रनाथ का नाटक 'वाल्मीकि प्रतिभा' खेला गया।

ऊपर जिन नाट्यशालाओ की बात लिखी गई, उनके अतिरिक्त शोभा बाजार मे भी एक नाटक समाज था, जिसने कई नाटक खेले। बाद को बहु बाजार रंगालय की स्थापना हुई। इसमे सुप्रसिद्ध कवि और नाटककार मनमोहन वसु सामने आये। इनका पहला नाटक 'रामाभिषेक' १८६८ के आरभ में खेला गया। इसके बाद उन्होने 'सती' नाटक लिखा, जो १८७२ मे खेला गया। फिर १८७४ में उन्हीका 'हरिश्चन्द्र' और बाद को कन्हाईलाल का 'जानकी हरण' नाटक भी जनप्रिय हुआ। स्मरण रहे कि नये लोगो के इन नाटको के साथ-साथ पुराने नाटको का अभिनय भी जारी था।

बंगला नाटको के क्षेत्र मे गिरिशचन्द्र घोष एक महान विभूति हो गये है। १८६७ मे उनकी उम्र २२ या २३ के लगभग थी। जिन नाट्यगृहो या रंगालयों की बात कही गई, उनमें साधारण लोगो का प्रवेश सभव नहीं था। इसी से जोश मे आकर गिरिश घोष ने नया नाट्यगृह खोलने का प्रण किया। वह उन दिनो एक क्लर्क थे। पहले उन्होंने माइकेल मधुसूदन रचित 'शर्मिष्ठा' को जात्रा के रूप मे दिखलाया। इसके लिए उन्होंने कुछ नये गीत लिखवाने चाहे, पर जिन महाशय को यह काम सौंपा गया था, वह पहले तो राजी हो गये, पर बाद मे समय पर गीत न दे सके, तब गिरिशबाबू ने मजबूरी से स्वय गीतों की रचना की। ये गीत सफल रहे। इस प्रकार वह अपनी रचना-शक्ति से भी परिचित हो गये। धीरे-धीरे इसी से बाग बाजार शौकिया नाट्यशाला का जन्म हुआ। गिरिशचन्द्र दूसरे के नाटको मे कुछ गाने अवश्य जोड देते थे।

धीरे-धीरे इस नाट्यशाला की इतनी ख्याति हुई कि गिरिशचन्द्र बहुत प्रसिद्ध हो गये। अवश्य ही गिरिशचन्द्र को कई अन्य गुणी लोगों का सहयोग प्राप्त हुआ था, जिनमे दीनबन्धु सबसे प्रमुख हैं। बाद को गिरिशचन्द्र और दीनबन्धु बंगला के सार्वजनिक रंगमंच के पिता माने गये। अर्द्धेन्दु को भी यहीं से चमकने

का मौका मिला। 'सधवार एकादशी' (सधवा की एकादशी), 'बिये पगला बूडो' (ब्याह के लिए पागल बुड्ढा) आदि कई नाटक इसमे खेले गये। इन्हीं दिनो एक अंग्रेज़ नाविक भी आ गया, जिसके सबध मे मालूम हुआ कि वह पेन्टरो का रग बनाने मे निपुण है। बस उसे काम पर लगा लिया गया और नई नाट्यशाला का काम धूमधाम से चलने लगा। इस नाट्यशाला का नाम राष्ट्रीय नाट्यशाला रखखा गया। इधर-उधर से और भी गुणी लोग जुटने लगे।

'लीलावती' नामक एक नाटक खेला गया; जिसकी बडी प्रशसा की गई। यह १८७१ की बात है। यह विवाद चलने लगा कि नाटक देखनेवालो से पैसा लिया जाय या नही। गिरिशचद्र इसके विरुद्ध थे। यह मामला कुछ दिनों तक विचाराधीन रहा। कहते है, इस विषय पर इतना बड़ा मतभेद हुआ कि गिरिश-बाबू उस समय इस कार्य से ही अलग हो गये।

१८७३ मे शिशिरकुमार घोष का एक नाटक भी खेला गया। अभी तक नाटको पर सस्कृत का प्रभाव बुरी तरह छाया हुआ था, पर उससे बचने का कोई रास्ता भी नही निकला था। अवश्य माइकेल के नाटको में इसका व्यतिरेक था। यद्यपि गिरिशचद्र मतभेद के कारण अलग हो गये थे, पर माइकेल मधुसूदन का 'कृष्ण कुमारी' जब खेला जाने लगा तो उन्हे बुलाया गया और वे भीमसिह का पार्ट लेने पर तैयार हो गये। इस समय कई प्रसिद्ध अभिनेताओ मे न केवल आपस मे अनबन ही रहती थी, बल्कि कई बार एक-दूसरे के खिलाफ यह भी अभियोग लगाया जाता रहा कि पैसे का ठीक हिसाब नही हो रहा है। इससे नाटक-समाज के कई टुकडे होते रहे, फिर जब बंट जाने के कारण वह असफल होने लगे, तब वे फिर मिलने लगे।

बगाल थियेटर नामक नाट्य-समाज को ही यह श्रेय दिया जाता है कि उसने फिर एक बार नाटक की पात्रियो के स्थान पर स्त्रियो का प्रचलन किया, पर उन दिनो इसका बडा विरोध हुआ। अखबारो ने इसकी काफी निन्दा की। यह स्मरण रहे कि माइकेल मधुसूदन के परामर्श से ही अभिनय के लिए स्त्रियों को स्थान दिया गया था।

पैसे लेकर नाटक दिखाना पहले-पहल विशेष सफल नही रहा, पर जब 'इश् महन्तेर एकी काज' (छिः महन्त की यह क्या करतूत) खेला गया तबसे नाट्यशाला के सारे आसन भरने लगे। कहा जाता है, इस नाटक का बहुत सफल

अभिनय हुआ। इसके बाद 'कादम्बरी', 'एराई आबार बागाली' (यही लोग बंगाली हैं), 'अजमेर कुमारी', 'बगेर पराजय', 'सती कि कलकिनी' (सती या कलकिनी), 'कपालकुंडला', 'बग-विजेता' आदि नाटक खेले गए।

बगाल के रंगमच के इतिहास मे १८७३ के ३१ दिसम्बर को बीडन स्ट्रीट मे ग्रेट नेशनल थियेटर का खुलना एक बडी बात है। इसमे 'नील दर्पण' आदि पुराने नाटको के साथ-साथ नये नाटक भी खेले जाने लगे। १८७४ की १४ फरवरी को 'मृणालिनी' नाटक खेला गया, जिसमे गिरिश घोष ने पशुपति के रूप मे ऐसा सुन्दर अभिनय किया कि उनकी प्रतिभा का लोहा सब लोग मान गये। गिरिश ने मूल नाटक मे कुछ नये अश जोड दिये थे, जिससे नाटक आकर्षक हो गया था। इस समय साथ-साथ दो बडी नाट्यशालाएं काम कर रही थी। एक पूर्वोल्लिखित बंगाल थियेटर और दूसरी ग्रेट नेशनल। ग्रेट नेशनल में गिरिश आदि होने पर भी बंगाल थियेटर मे स्त्रियो का पार्ट स्त्रियों के द्वारा कराये जाने के कारण वह इसके मुकाबले मे अधिक सफल हो रहा था, यहांतक कि वही 'मृणालिनी' नाटक, जिसमे गिरिश ने इतना कलापूर्ण काम किया था, जब बगाल थियेटर द्वारा खेला गया तो वह कही अधिक सफल हुआ।

इससे ग्रेट नेशनलवाले मजबूर हुए और उन्होने 'सती या कलकिनी' नाटक मे एक साथ ६ अभिनेत्रियां पेश कर दी। इसपर गिरिश फिर एक बार नाराज हुए और कुछ दिनो के लिए रगमंग से अलग हो गये। बाद को कुछ अच्छे लोग ग्रेट नेशनल छोडकर बंगाल थियेटर मे चले गये, इसका कारण था मालिक के साथ आर्थिक खटपट।

बाहर कुछ लोग नाटक-कम्पनियो के विरुद्ध बहुत जोर से आन्दोलन करने लगे। उनका कहना यह था कि इनको केन्द्र बनाकर व्यभिचार-लीला चलती है। सरकार ने इसका पूरा फायदा उठाया और रंगमच का गला घोटने के लिए इस परिस्थिति का स्वागत किया। ग्रेट नेशनल थियेटर धर्मदासबाबू को मैनेजर बनाकर उत्तर भारत का दौरा कर रहा था। जब लखनऊ मे अभिनय हो रहा था और दृश्य वह था, जिसमें मि० रोग क्षेत्रमणि पर हमला कर रहे थे, वह लडकी दुहाई मांगकर कह रही थी कि साहबजी, आप हमारे पिता हैं, तब मि० रोग उसे यह कहकर घसीटने लगे कि मैं तुम्हारा बाप नही, मै तुम्हारे लडके का बाप होना चाहता हू, इतने मे दूसरे लोग आ गये और उन्होने क्षेत्रमणि

को बचा लिया। क्षेत्रमणि अपने एक उद्धारक के साथ चली गई और एक दूसरे उद्धारक मि० रोग को घूसा और लात जमाने लगे।

इसपर उपस्थित गोरे दर्शक बहुत उत्तेजित हो गये और उनमे से कुछ लोग उस उद्धारक पर, जो असल मे मतिलाल सूर थे, टूट पडे। बडी कठिनाई से शान्ति स्थापित हुई। जिला मजिस्ट्रेट ने फौरन खेल बन्द कर दिया और पुलिस की सहायता से कम्पनी के लोगो को स्टेशन भिजवाकर कलकत्ता रवाना कर दिया गया।

श्री हेमेद्रनाथ दास गुप्त के अनुसार नाटक मे अवश्य ही नील के साहबो का जुर्म दिखाया गया था, पर इसका कोई राजनैतिक उद्देश्य नही था। फिर भी शासको को इस प्रकार के नाटक अखर रहे थे। बाद को जो 'भारत मातार विलाप' नाटक खेला गया, वह कुछ राजनैतिक था। जिस समय इस नाटक का वह अंश अभिनीत होता था, जिसमे सत्येद्रनाथ ठाकुर का यह गीत गाया जाता था 'मलिन मुख चद्रमा भारत तोमारि', उस समय लोग आसू नही रोक पाते थे। यह नाटक 'अमृत बाजार पत्रिका' मे प्रकाशित हुआ था। (पहले यह पत्र बंगला मे था) १८७५ मे 'पुरु विक्रम' और 'भारते यवन' खेले गये थे। इनमे भी राष्ट्रीय भावनाओ का पुट था। इसके बाद 'हीरक चूर्ण', 'सुरेद्र विनोदिनी' आदि अन्य कई इसी प्रकार के नाटक खेले गये। इन नाटको से किसी-न-किसी रूप मे देशभक्ति का प्रचार था। सरकार का ध्यान इस ओर गया और वाइसराय की व्यवस्थापिका परिषद् मे मि० हावहाउस ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि नाटक बहुत खतरनाक वस्तु है और नाटककार के लिए अपने दर्शक के मन पर किसी भी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना बाये हाथ का खेल है।

इन्ही दिनो प्रिंस ऑव वेल्स (बाद मे सप्तम एडवर्ड) भारत आये। वह कलकत्ते के एक प्रसिद्ध वकील जगदानन्द मुखर्जी के घर पर पधारे और अंतःपुर की ओर से उन्हें बहुमूल्य अलंकार और कपडे भेट किये गए। वहां राजकुमार का बगाली ढंग से उलूध्वनि करके स्वागत भी हुआ था। राजकुमार श्रीमती मुखर्जी तथा उनकी सहेलियो के आभूषणो आदि को देखकर इतने चकित हो गये कि जाते समय जगदानदबाबू से यह कह गये कि मै आपके मकान मे और अपने विंडसर प्रासाद मे कोई फर्क नही देखता।

बात छोटी-सी थी, पर लोगो मे राजद्रोह की भावनाएं उत्पन्न हो रही थीं

और उन्होंने राजकुमार को किसीके अंत पुर मे जाने की अनुमति देना पसद नही किया। सैकडो गाने इसके विरोध मे वन गये और ग्रेट नेशनल थियेटर मे 'सरोजिनी' के साथ-साथ 'गजानन्द' प्रहसन भी खेला गया, जिसमे मुखर्जीसाहव की हँसी उड़ाई गई। इसपर वंगाल सरकार वहुत नाराज हुई और इस प्रहसन की पुनरावृत्ति के निपिद्ध हो गई। पर नाम वदल-वदलकर यह प्रहसन चलता रहा।

जगदानन्दवावू की हालत इतनी विगड गई कि उन्हे पुलिस का सरक्षण देना पड़ा। वगाल सरकार के कहने पर वाइसराय लार्ड नार्थव्रुक ने नाटको को रोकने के संवध मे एक ग्रार्डिनेस जारी कर दिया। 'अमृत वाजार पत्रिका' ने इस कानून के विरुद्ध आवाज़ उठाई। तभी मि० हावहाउस को व्यवस्यापिका परिपद् के सामने कानून की माग करते हुए भापरण देना पडा। मि० हावहाउस ने दक्षिणा चटर्जी लिखित 'चाकर-दर्पण' नामक चायवगान पर लिखित नाटक का भी हवाला दिया। यह नाटक तो अभी खेला नही गया था, केवल प्रकाशित हुआ था। इस नाटक में भी अंग्रेजो के अत्याचार तथा मनमाने ढग का विवरण रोचक रूप मे दिया गया था।

वाद को उपेन्द्रवावू लिखित 'सुरेन्द्र विनोदनी' नामक नाटक पर भी शासक-वर्ग की ओर से वडा कोहराम मचाया गया। यद्यपि यह नाटक कई जगह और भी खेला जा चुका था, पर जव ग्रेट नेशनल में १८७६ के १ मार्च को इसका अभिनय हुआ, तव इसपर ग्रार्डिनेस के अनुसार निपेधाज्ञा जारी कर दी गई। इस नाटक मे एक जगह मजिस्ट्रेट मैकक्रिम्वल कहता था, 'मैं न तो शेर हूं न भालू।' सुप्रसिद्ध नाट्यकार और अभिनेता श्री अमृतलाल वसु मैकक्रिम्वल का पार्ट खेलते हुए इतना वोलकर यह भी वोल गये कि मैं न तो सूअर हू न भेड़। पर निपेधाज्ञा देते समय इस नाटक पर अश्लील होने का अभियोग लगाया गया। इस नाटक मे एक और दृश्य आता था, जिसमे मैकक्रिम्वल ब्रजमोहिनी पर हमला कर देता था और उसे अपनी वाहो मे वांधकर कुछ कहता था।

कई व्यक्तियो पर, जिनमे उपेद्रवावू और अमृतलाल वसु भी थे, गिरफ्तारी का परवाना जारी किया गया और ४ मार्च को जव 'सती या कलंकिनी' का अभिनय चल रहा था, उस समय ये लोग गिरफ्तार कर लिये गए। अभिनेत्रिया यह देखकर रोने लगी और खेल वीच ही मे खतम हो गया।

जब इस गिरफ्तारी की बात कलकत्ते में फैल गई तो लोग बहुत नाराज हुए और बडे-बडे अच्छे लोगो ने अदालत मे जाकर यह गवाही दी कि पुस्तक हर्गिज अश्लील नही है। रेवरेड डा० बनर्जी ने तो यह लिख दिया कि पुस्तक सर वाल्टर स्काट की पुस्तको से अधिक अश्लील नही है, बल्कि उन्होने यह भी कहा कि मैकक्रिम्वल और ब्रजमोहिनीवाला दृश्य नाइट टेम्पलर और यहूदी लडकी के बीच होनेवाले दृश्य का ही बंगाली संस्करण है। पर यह सब होते हुए भी उपेंद्रबाबू और अमृतलाल को ८ मार्च को १ मास की सादी कैद की सजा दे दी गई। दंडितो ने बड़े धैर्य के साथ सजा सुनी। इसके बाद अपील दायर की गई। अपील के खर्च के लिए ११ मार्च को 'सरोजिनी' नाटक का अभिनय किया गया। बडे जोरो से अपील लड़ी गई। २० मार्च को जस्टिस फियर और मार्कबी ने अपील का फैसला सुनाते हुए दोनों दंडितो को रिहा कर दिया। केवल यही नही, जस्टिस फियर ने यह भी लिख दिया कि मजिस्ट्रेट के हाथों मे इस प्रकार पूरी शक्ति दे देना व्यवस्थापिका सभा के लिए उचित नही है।

यहा यह बता दिया जाय कि ३० मार्च को जस्टिस फियर भारत से भेजे गये और फिर कभी नही लौटे। इसपर यह खबर उडी कि लार्ड नार्थब्रुक ने उनका बोरा-बिस्तर बंधवा दिया। जो कुछ भी हो, सरकार नाटको के अभिनय-नियंत्रण का बिल बना रही थी और उसका काम जारी रहा और वह बिल पास हो गया। इसके अनुसार मजिस्ट्रेट को यह अधिकार हो गया कि यदि सरकार के मतानुसार कोई नाटक मानहानिकर, कुत्साजनक, सरकार के विरुद्ध असन्तोष पैदा करनेवाला या किसी व्यक्ति या समूह के हृदय को चोट पहुचानेवाला हो तो उसे जिस भी तरह हो, रोक दे और उसके लिए एकत्रित लोगो को हिरासत में ले ले। इस प्रकार यह कानून हाईकोर्ट के भी अधिकार छीन लेता था और करीब-करीब सारा निर्णय अब सरकारी अफसरो के ही हाथों मे छोड़ दिया गया था। यहा यह बता देना जरूरी है कि इसीके साथ-साथ वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट भी लागू हो गया। श्री दास गुप्त का कहना है कि इस कानून के कारण रंगमच को बड़ा नुकसान पहुंचा, पर ऐसे समय परम प्रतिभाशाली गिरिशचन्द्र पहले के अभिनेता के अलावा नाटककार के रूप मे सामने आये और उन्होंने बंगला-रंगमच को बचा लिया।

'सुरेंद्र विनोदिनी' मुकदमे के बाद उपेन्द्रनाथ दास इंगलैंड चले गये, अभि-

नेत्री सुकुमारी दत्त रंगमंच से अलग हो गई। हा, अर्द्धेन्दु शेखर अपनी नाटक कम्पनी लेकर इधर-से-उधर फिरने लगे। गिरिशवावू ने 'आगमनी' नाम से एक नाटक लिखा और वह १८७७ के ६ अक्तूवर को खेला गया। इसके वाद उन्होने 'मेघनाद वध' का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया और वह १८७७ के १ दिसम्वर को खेला गया। स्वय गिरिश ने मेघनाद और राम का पार्ट खेला। कहा जाता है कि इनका अभिनय बहुत अच्छा रहा। इसके वाद नवीनचंद्र सेन का 'पलासी का युद्ध' नाटक रूप मे प्रस्तुत हुआ और वह भी खेला गया। फिर गिरिश ने बंकिम के 'विष वृक्ष' का नाटक रूप प्रस्तुत किया। हेम का 'वृत्र संहार' भी रंगमंच पर आया। लोग नाटक-कम्पनियां बनाकर इधर-उधर ढाका तक का चक्कर भी लगाने लगे।

उधर ग्रेट नेशनल थियेटर के मालिक पर मुकदमा चला और वह २५ हजार रुपये मे नीलाम होकर एक मारवाड़ी सज्जन प्रताप जौहरी की सम्पत्ति बन गया। उसने गिरिश को मैनेजर बनाना चाहा और उन्हे १०० रुपया मासिक देना चाहा, पर गिरिश उन दिनो एक अंग्रेज कम्पनी मे १५० रुपये मासिक पा रहे थे, इसलिए निर्णय कुछ कठिन था, पर गिरिश ने कला के कारण जौहरी की नौकरी स्वीकार कर ली और १८८१ की १ जनवरी को सुरेंद्र मजुमदार लिखित 'हमीर' नाटक से उस नाट्यशाला का उद्घाटन हुआ। गिरिशचन्द्र हमीर बने। इसके वाद गिरिशचद्र ने एक नाटक लिखा, जो २२ जनवरी १८८१ को खेला गया। इसी प्रकार एक के वाद एक गिरिश की कलम से नाटक निकलते रहे। इनमे से कुछ अनुवाद थे, कुछ भावानुवाद और कुछ मौलिक। गिरिश ने देखा कि सामाजिक नाटक कम चलते है, इसलिए 'रावण वध', 'सीता का वनवास', 'अभिमन्यु वध', 'लक्ष्मण वर्जन, आदि पौराणिक नाटक चलाये। 'रावण-वध', से लेकर 'तपोवल' (१९१२) तक गिरिश ने ७२ नाटक प्रस्तुत किये। गिरिश ने नाटक के लिए पहले कविता को अपनाया था, क्योकि वही उस युग का माध्यम था। पर उन्होने मधुसूदन के मुकावले मे कविता का सरलीकरण किया, यहांतक कि उनकी कविता को लोग गैरिशी छन्द कहने लगे। पर उसी कविता के कारण नाटक का विकास अच्छी तरह हो सका। रवीन्द्रनाथ के वडे भाई द्विजेन्द्रनाथ ने गिरिशचद्र की कविता की वडी प्रशसा की। लोगो ने कहा कि अन्त मे जाकर हमे नाटक का उपयुक्त वाहन मिल गया। केवल यही नही, गिरिश ने

दृश्यो मे भी बहुत नयापन ला दिया, यहांतक कि सीता की अग्नि-परीक्षा के समय ऐसा मालूम होता था कि मंच पर दो हजार की भीड़ है। गिरिश ने देखा कि प्रताप जौहरी के साथ एक हद तक ही काम किया जा सकता है, क्योंकि वह हर वक्त मुनाफे की बात पहले सोचता था। कई दिन गैरहाजिरी के लिए जौहरी ने प्रसिद्ध अभिनेत्री विनोदिनी की तनख्वाह काट ली। इन्ही कारणो से गिरिश उससे अलग हो गये और स्टार रगमंच की स्थापना हुई। इनके अलावा स्टार रगमंच की स्थापना मे कई और कारण भी हुए।

विनोदिनी नाम की अभिनेत्री का गुरुमुख राय नाम से एक प्रेमी निकल आया, जो यह चाहता था कि विनोदिनी के नाम पर एक नाट्य-शाला स्थापित करे। बताया गया है कि यह व्यक्ति सिख था। उधर एक जमीदार, जिसके सरक्षण मे विनोदिनी उन दिनो थी, यह चाहता था कि विनो-दिनी अभिनेत्री न रहे, पर जमीदार घर चला गया और उसकी शादी हो गई, इसपर गिरिश ने गुरुमुख राय को आगे लाना चाहा। पर जमीदार इस बीच मे लौट आया और वह विनोदिनी को छोड़ने पर राजी नही हुआ। इसपर विनो-दिनी को गायब कर दिया गया। इसी दरम्यान नाट्यशाला के लिए इमारत आदि लेने का क्रम चलता रहा, पर बीच मे गुरुमुख राय यह कह उठा कि वह विनो-दिनी को पांच हजार रुपया देने को तैयार है, बशर्ते कि वह अभिनय का काम छोड़-कर उसके साथ रहना स्वीकार करे। विनोदिनी, जिसे भद्र समाज कहते हैं, उसकी सदस्या नही थी, फिर भी उसने इस मौके पर यही कहा कि मुझे यदि राज्य भी मिले तो भी मैं अभिनय का काम नही छोड़ूंगी। जब गुरुमुख ने यह बात देखी तो उसने मजबूरी से इमारत बनवाने का काम जारी रक्खा। इसपर दास गुप्त ने ठीक ही लिखा है कि दुनिया में कैसी-कैसी अजीब बाते होती हैं कि इसी नाट्यशाला के कारण बगला रंगमंच का नैतिक स्तर बहुत ऊंचा उठ गया, पर उसका आरम्भ कैसे हुआ ?

१८८३ के २१ जुलाई को स्टार रंगमच 'दक्ष यज्ञ' नाटक से शुरू हुआ। स्वयं गिरिश ने दक्ष का पार्ट अदा किया। कहते हैं, उन दिनों गिरिश नास्तिक थे, पर बाद मे उन्हे काली का दर्शन हुआ, इस कारण वह नाट्यशाला से बहुत दिनो तक दूर रहे, पर कला उन्हे बीच-बीच में खीच लाती रही। अबतक उनकी ख्याति मुख्यतः अभिनेता के रूप मे थी, पर अब लोग उन्हे नाटककार के रूप मे

अधिक सराहने लगे। गिरिश की नाटककार के रूप मे सफलता का कारण ही यही है कि वह पहले अभिनेता, फिर नाटककार बने। अवश्य अभिनेता के रूप मे भी वह बराबर सृजनात्मक शक्ति का परिचय देते थे और कई बार वह मूल नाटको को बदल दिया करते थे।

गिरिशचन्द्र ने मुख्यत. पौराणिक विषयो के नाटक से ही आरम्भ किया। उनके नाटक इसलिए बहुत सफल होते थे कि इन दिनो वह पहले के अनीश्वर-वादी से बहुत बडे भक्त बन गये थे। नाटक इतने सफल होते थे कि दर्शको मे बहुत-से विशेषकर स्त्रिया फफक-फफककर रोने लगती थी। इसका असर अभिनेताओ तथा अभिनेत्रियो पर भी होता था और अभिनेता और दर्शक मानो मिलकर एक इकाई हो जाते थे। 'चैतन्य लीला' नाटक मे विनोदिनी चैतन्य का पार्ट खेलती थी। सौभाग्य से विनोदिनी अपनी पूरी आत्मकथा लिख गई है और इस नाटक के खेले जाते समय दर्शको पर क्या-क्या असर पडते थे और स्वयं उसपर क्या असर होता था, यह मालूम हो सकता है। पर यहा उसके ब्यौरे मे जाने का अवसर नही है।

कुछ धर्मध्वजी तथा नीति का ढिंढोरा पीटनेवाले लोग अब भी रंगमंच के विरुद्ध लिखते जा रहे थे, पर 'चैतन्य लीला' देखकर 'रईस एन्ड रैय्यत' के सम्पादक श्री शम्भुचन्द्र मुखर्जी ने नाटको की नैतिक शक्ति के विषय मे चुनौती देते हुए लोगो से कहा कि एक बार कोई आकर नाटक देखे और फिर हमसे बहस करे।

इसपर कार्नेल आल्कट नामक एक सज्जन ने नाटक देखा और वह यह मानने के लिए बाध्य हुए कि उनपर भी उसका बडा असर हुआ। इतना ही नही, उन्होने कहा कि अभिनेत्री ने चैतन्य के हाव-भाव को इस सुंदर और निष्कलुष रूप से चित्रित किया कि वह आश्चर्यजनक था। कार्नेल आल्कट ने लिखा कि जब विनोदिनी चैतन्य का पार्ट अदा करते हुए मूर्च्छित हो गई तो वह सचमुच मूर्च्छित हो गई और उसे डाक्टरी सहायता देनी पडी।

स्मरण रहे कि यह कार्नेल आल्कट वही थे जो बाद को थियोसाफी के संस्थापक के रूप मे जगत्-प्रसिद्ध हुए। 'चैतन्य लीला' से गिरिश की ख्याति बहुत बढ़ी। नवद्वीप के प्रसिद्ध पडित मथुरानाथ पड़रत्न, यहांतक कि रामकृष्ण परमहस भी, इसे देखने आये। जब लोगो ने रामकृष्ण से पूछा कि आपने इसे

कैसा पाया तो वह वोले—'आशल नकल एक देखाल ?' याने असल और नकल में कोई फर्क नही देखा। जब विनोदिनी ने आकर उनके पैर छुए तो परमहंस वोले, "तुम्हे चैतन्य प्राप्त हो।" और वह हरि-हरि कहकर नाचने लगे। इसी प्रकार कहते हैं, योगी विजयकृष्ण गोस्वामी भी इस नाटक को देखकर नाचने लगे। इस नाटक के वाद गांव मे संकीर्तन पार्टिया वन गई और वैष्णव धर्म का एक तरह से पुनरुत्थान हुआ। इन्ही दिनो वंकिमचन्द्र तथा अन्य कई संत और विद्वान धार्मिक पुनरुत्थान का प्रचार कर रहे थे। 'चैतन्य लीला' ने इस आंदोलन मे वहुत जोर से हाथ वटाया।

इस नाटक के वाद 'प्रह्लाद चरित्र' नाटक लिखा गया, पर विनोदिनी के प्रह्लाद रूप में काम करने पर भी नाटक वहुत सफल नही हुआ। हां, इसके साथ जो अमृतलाल वसु का 'विवाह विभ्राट' प्रहसन खेला जाता था, वह वहुत सफल रहा। १८८५ मे 'निमाई संन्यास' या 'चैतन्य लीला' का दूसरा भाग खेला गया और विनोदिनी ने निमाई का भाग लिया। यह नाटक भी सफल हुआ। इसके वाद १८८५ के ३० मई को 'प्रभास यज्ञ' और १९ सितंवर को 'वुद्धदेव' खेले गये, जो वहुत सफल रहे। 'वुद्धदेव' नाटक के वाद 'विल्व मंगल' खेला गया। इस नाटक के वारे मे स्वामी विवेकानन्द ने यह कहा था कि मैंने इस नाटक को पचास वार पढा है और हर वार मुझे नई ही रोशनी प्राप्त हुई। भगिनी निवेदिता इस नाटक से इतनी प्रभावित हुई थीं कि उन्होने उसके एक भाग का अंग्रेजी मे अनुवाद किया था। यह धार्मिक भावों से ओत-प्रोत था। इसके वाद 'रूप सनातन' नाटक खेला गया और वह भी वहुत सफल रहा। इस प्रकार से स्टार रंगमंच वहुत सफल रहा।

प्रसिद्ध रईस मोतीलाल सील के उत्तराधिकारी गोपाललाल सील को यह खब्त सवार हुआ कि वह नाटक कम्पनी का मालिक वने। उसने किसी प्रकार स्टार रंगमंच को खरीद लिया और अपनी ही न्यारी कम्पनी वनानी चाही। इस झगडे के कारण स्टार कम्पनी अपना अंतिम अभिनय करने के वाद ढाका आदि शहरो मे पहुची, जिससे कुछ पैसा इकट्ठा हो। उधर गोपाल सील अपने रंगमंच को सफल वनाने के लिए जी-तोड कोशिश कर रहा था, पर उसे सफलता नही मिल रही थी। तव उसने गिरिश की शरण ली और साथ ही उन्हे यह धमकी भी दी कि यदि तुम मेरे यहा नौकरी स्वीकार न करोगे तो मै अधिक-से-अधिक

वेतन देकर उनकी कम्पनी के कलाकारो को भगवा लूगा। ऐसा मालूम होता है कि गिरिश ने एक हद तक इसे मान लिया और पहले के कई नाटक खेलने के बाद १८८८ के १७ मार्च को 'पूर्णचन्द्र' नामक नाटक खेला गया। यह पूरन भगत पर केन्द्रित था। इसके वाद भक्तमाल की कहानी के आधार पर 'विषाद' नाटक खेला गया। इसके वाद ही लेखक की पत्नी का २५ दिसम्बर १८८८को देहान्त हुआ। इसके उपरान्त १८८९ के २७ अप्रैल को गिरिश का 'प्रफुल्ल' नामक सामाजिक नाटक खेला गया, जिसमें वार-वार यह शब्द आता है—मेरा सजा-सजाया वाग सूख गया।'

कहना चाहिए कि 'प्रफुल्ल' नाटक से वगला नाटको का स्तर वहुत ऊचा उठ गया। 'स्टेट्समैन' पत्र ने तीन अको ने इसकी उच्छ्वसित प्रशंसा की। इसके वाद 'हारानिधि', 'मलिना विकास' आदि वहुत-से नाटक वरावर खेले जाते रहे। गिरिश ने 'मैकवेथ' का भी अनुवाद किया और उसे खेला, जिसकी अंग्रेजी पत्रो ने भी वहुत प्रशंसा की। इस प्रकार गिरिश एक सफलता के वाद दूसरी सफलता प्राप्त करते गए और १८९३ के २५ मार्च को 'आवू हुसेन' नामक जो नाटक खेला गया, वह वहुत अधिक सफल हुआ। गिरिशचन्द्र का 'जना' नामक नाटक १८९३ के २३ दिसम्बर को खेला गया और यह भी खूव चला। हमे अव इन व्यौरों मे अधिक जाने की आवश्यकता नही हैं। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि नाटक के क्षेत्र में गिरिश घोप की सेवाए वहुत ही महान् थी और उन्ही-के कारण वगला नाटक आधुनिक वनने के साथ ही अपने पैरो पर खडा हो गया। पर गिरिश अकेले नही थे। उनके साथ कई प्रतिभावान नाटककार भी सम-सामयिक क्षेत्र मे मौजूद थे।

गिरिश के ही युग मे रवीन्द्रनाथ का भी नाटककार के रूप मे उदय हुआ। उनके नाटको के सवंध मे अन्यत्र पूरा विवरण दिया गया है। गिरिशचन्द्र और रवीन्द्र के नाटको की तुलना करने पर यह पता चलता है कि दोनो की प्रतिभाए किस प्रकार से भिन्न पर एक-दूसरे की पूरक थी। गिरिश का झुकाव धार्मिक नाटको मे पुनरुज्जीवनवाद की ओर था, पर रवीन्द्र के सामाजिक नाटक मुख्यतः गतानुगतिकता-विरोधी थे। दोनो कवि थे, पर शुद्ध कविता रवीन्द्र मे कही अधिक मिलती है। दोनो अच्छे अभिनेता थे, यह कहना मुश्किल है कि कौन वढकर था।

गिरिश के बाद जो अच्छे अभिनेता हुए हैं, उनमें दानीबाबू और चुनीबाबू बहुत अच्छे अभिनेता माने गये। गिरिश अभी बहुत दिनों तक और चले। किसी-न-किसी रूप मे गिरिश बराबर चलते रहे और १९०५ से लेकर १९११ के बीच मे उन्होंने दस सामाजिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक नाटक लिखे। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि वह नाटक लिखने के साथ-साथ अपने नाटकों का अभिनय भी करते थे। समसामयिक अभिनेताओं में अमृतलाल वसु, चुनीलाल देव, दानीबाबू, अमरेन्द्रनाथ दत्त, अर्द्धेन्दु शेखर बहुत मशहूर थे।

इन्ही दिनो दहेज-प्रथा के विरुद्ध लिखा हुआ नाटक 'बलिदान' गिरिश के यश मे चार चाद लगाने मे समर्थ हुआ। 'राणा प्रताप' नाटक भी सफल रहा। 'सिराजुद्दौला' भी गिरिश की ख्याति के अनुरूप निकला। कहते हैं, १९०६ मे लोकमान्य तिलक गिरिश का एक नाटक देखने आये थे। १९०७ के ९ जून को गिरिश अपने 'प्रफुल्ल' नाटक के योगेश के रूप में रगमच पर सामने आये। बाद मे उनका 'छत्रपति शिवाजी' नाटक खेला गया और लोकनायक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने उसकी बड़ी प्रशसा की।

सच कहा जाय तो इन दिनो देशभक्तिमूलक नाटको का बहुत प्रचलन हो रहा था। स्मरण रहे कि यह स्वदेशी आंदोलन का युग था। जब भी राष्ट्रीय ढंग से नाटक खेले जाते थे, बहुत भीड होती थी। इन बातो से घबडाकर ब्रिटिश सरकार ने 'सिराजुद्दौला', 'मीर कासिम' और 'छत्रपति शिवाजी' पर रोक लगा दी। बात यह है कि दस-बीस व्याख्यानो से जो नही होता था, वह एक नाटक खेलने से हो जाता था।

इन्ही दिनो बगला के रगमंच पर श्री डी० एल राय अथवा द्विजेन्द्रलाल राय का उदय हुआ। मानो गिरिश का आसन जल्द ही रिक्त होनेवाला है, इसे देखकर एक दूसरा महान् नाटककार सामने आया। उनका 'मेवाड पतन' १९०८ के २६ सितम्बर को और 'शाहजहा' १९०९ के २९ अगस्त को खेला गया। इसमे का एक गाना—बग आमार जननी आमार, धात्री आमार आमार देश—सारे बंगाल मे गूज गया।

गिरिश दमा से पीड़ित थे, फिर भी वह अविचलित निष्ठा से अपने काम मे लगे रहे। १९१० की १५ जनवरी को उनका नाटक 'शंकराचार्य' खेला गया। शंकराचार्य के जीवन को लेकर इतना सुंदर नाटक लिखा जा सकता है, यह देख-

कर लोग दांतो तले उंगली दबाकर रह गये। इसी बीच क्षीरोद प्रसाद के कुछ नाटक भी सामने आए। १६११ के २२ जुलाई को डी० एल० राय का नाटक 'चन्द्रगुप्त' खेला गया, इसमें गिरिश चन्द्रगुप्त के रूप मे सामने आनेवाले थे, पर स्वास्थ्य ने साथ नही दिया। इस नाटक मे चाणक्य के रूप मे दानीवाबू ने कमाल कर दिया। 'चन्द्रगुप्त' इतना प्रसिद्ध हुआ कि हरेक कालेज मे यह खेला गया। गिरिश अव मृत्यु-शैया पर थे, उन्हे यह देखकर खुशी हुई कि वगला के रगमंच मे कई वहुत शक्तिशाली नाटककार और अभिनेता मौजूद है। उन्होंने अंतिम भेट के रूप मे 'तपोवल' नामक नाटक दिया, जो १६११ के १८ नवंवर को खेला गया। वीमार होने के कारण अभिनेताओ को तालीम लेने के लिए गिरिश के घर पर आना पड़ता था। गिरिश अव चद दिनो के ही मेहमान थे। १६१२ की ६ फरवरी को जव उनका देहान्त हुआ तो वह अपने यश के उच्चतम शिखर पर थे।

सारे वंगाल में इसपर शोक छा गया और १० फरवरी को वगाल की सारी नाट्यशालाएं वंद रही। जगह-जगह शोक-सभाएं हुई। उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए उनके कई नाटक खेले गए। यदि यह कहा जाय कि गिरिश ने वंगाल के आधुनिक रगमंच को जन्म दिया और उसे जन्म देकर सव तरह से पाला-पोसा तो कोई अत्युक्ति न होगी। आज वगाल मे जो रंगमंच मौजूद है, उसके लिए यदि किसी एक व्यक्ति को श्रेय दिया जाय तो वह गिरिश को ही प्राप्त होगा। उनकी मृत्यु के वाद उनका लिखा हुआ एक नया नाटक १६१२ के २१ सितम्वर को खेला गया।

सवसे वड़े दु ख की वात है कि द्विजेन्द्रलाल राय वहुत दिनो तक जीवित नही रहे। यद्यपि थोडे से समय मे ही उन्होने वहुत-से नाटक लिख डाले और सब नाटक वहुत उच्च कोटि के रहे, फिर भी गिरिश की मृत्यु के तीन-चार साल के अदर ही उनका उठ जाना वहुत वडी हानि रही। अवश्य अभी रवीन्द्रनाथ ठाकुर मौजूद थे और वह समय-समय पर नाटक लिखकर वंगला रगमच को देते गए, फिर भी इसमे संदेह नही कि डी० एल० राय की मृत्यु वंगला-भाषा के लिए वहुत वडी हानि रही। इसके वाद वंगला नाटककारो मे (यहा रवीन्द्रनाथ को छोड देते है) गिरिश और डी० एल० राय की तरह कोई ऐसा नाटककार पैदा नही हुआ, जिसने वहुत-से नाटक लिखे हों और जिसका प्रत्येक नाटक रंग-

मच की दृष्टि से सफल रहा हो। इन्ही विभूतियो के साथ बगला नाटको मे दिग्गजो का युग समाप्त हो गया।

बाद के कुछ नाटको पर अब विचार करे। अपरेशबाबू की 'सुदृष्टि' १९१५ के ४ दिसम्बर को बहुत सफल रही। अपरेशबाबू ने और भी कई नाटक लिखे। वरदाप्रसन्न दास गुप्त का 'मिस्र कुमारी' एक सफल नाटक रहा। गुप्त का 'मनीषा' १९२० के ११ जनवरी को खेला गया और सफल रहा। मनमोहन राय, भूपेन्द्र बनर्जी, जलधर चटर्जी, शरद घोष आदि ने कई नाटक लिखे। शरत् चटर्जी के उपन्यासो के कुछ नाटकीय रूप भी प्रस्तुत हुए और सफलतापूर्वक खेले गए। अन्य नाटककारो मे शचीन सेन गुप्त, क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद आदि उल्लेखनीय है। जैसा कि पहले ही बताया गया, गिरिश, डी० एल० राय, यहातक कि अमृतलाल वसु के पाये के कोई बड़े नाटककार बंगला मे बाद को उत्पन्न नही हुए। हां, अभिनय के क्षेत्र मे अच्छे-से-अच्छे अभिनेताओ का ताता बराबर बना रहा। जब दानीबाबू आदि चल ही रहे थे, उन्ही दिनो शिशिरकुमार भादुडी का उदय हुआ और उन्होंने पहले के सब अभिनेताओ को पीछे छोड़ दिया, ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

शिशिर भादुड़ी कलकत्ता के विद्यासागर कालेज के एक अध्यापक थे और १९२१ में उन्होने पेशेवर रगमच मे प्रवेश किया।

अहीन्द्र चौधरी भी एक अन्य बहुत प्रतिभाशाली अभिनेता हो गये। यहा एक बात यह बता देनी चाहिए कि यद्यपि बहुत बड़े नाटककार बाद के युग मे नही रहे, फिर भी बगला मे बराबर अच्छे-से-अच्छे उपन्यासकार उत्पन्न होते रहे और उन उपन्यासो का नाटक रूप प्रस्तुत करना बहुत बडी बात नही थी। इसी प्रक्रिया से स्वय रवीन्द्रनाथ ने अपने बहुत-से उपन्यासों का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया। शरतबाबू, अनुरूपा देवी (मत्र शक्ति, महानिशा आदि), निरुपमा देवी (दीदी), नजरुल (आलेया) आदि बहुत-सी पुस्तको के नाटकीय रूप प्रस्तुत होने से रंगमंच का काम चलता रहा।

बहुत हाल के कुछ शक्तिशाली नाटक ये है—रवीन्द्रनाथ मैत्र का मानमयी गर्ल्स स्कूल, ताराशकर का दुइ पुरुष (दो पुरखे)। ये दोनो नाटक विषय की नवीनता तथा तकनीक की दृष्टि से नये है। रवीन्द्रनाथ मैत्र कहानियो के क्षेत्र में भी बहुत सफल रहे। इधर के नाटककारो मे प्रमथनाथ विशी बहुत सफल

रहे। उनका प्रहसन 'ऋण कृत्वा घृत पिवेत' और 'मौचाके ढिल' (छत्ते मे ईंटा), 'सनी विला' नाटक वहुत लोकप्रिय हुए। इन्होने कई एकांकी भी लिखे, शॉ और रवीन्द्र का प्रभाव इनपर सर्वाधिक रहा। शचीन सेन का 'सिराजुद्दौला' मन्मथ राय का 'कारागार', विधायक भट्टाचार्य का पी० डब्लू० डी०, वुद्धदेव वसु का 'माया मालंच' (अपने उपन्यास का नाटक रूप), प्रतिभा वसु का 'डालिया' (रवीन्द्र के उपन्यास का रूपान्तर), मनोज वसु का 'प्लावन', 'भुलि नाई' उल्लेखनीय हैं। शैलजानन्द और प्रेमेन्द्र मित्र ने सिनेमा और रंगमंच के लिए अपने उपन्यासो के रूपान्तरण के अलावा कई नई चीजे लिखी। नीहाररंजन गुप्त, नारायण गंगोपाध्याय, नरेन्द्रनाथ मित्र ने इसी प्रकार कई नाटक प्रस्तुत किये हैं। १९४२ के युग मे कुछ साहित्यकारो ने फैसिवाद-विरोधी नाटक लिखे। इसी प्रकार १९४३ के दुर्भिक्ष की पृष्ठभूमि मे विजन भट्टाचार्य ने 'नवान्न' नाटक लिखा, जो सफल रहा। शायद साम्यवादियो की प्रतिक्रिया मे 'कांग्रेस साहित्य संघ' की सृष्टि हुई और इसने नाटक के क्षेत्र मे काम किया। इनका 'अभ्युदय' नाटक वहुत प्रसिद्ध हुआ। शरदिन्दु वन्दोपाध्याय का 'वन्धु', 'विषेर धोया' (विष का धुआ), इसी प्रकार वनफूल का 'श्री मधुसूदन' तथा 'विद्यासागर' तथा तरुण राय के कई नाटक प्रसिद्ध हुए।

इस समय वंगला नाटक और रगमच की परिस्थिति पिछले स्वर्ण युग को देखते कुछ अच्छी नही कही जा सकती। फिर भी फिलम की प्रतियोगिता के वावजूद वगला मे रगमच जीवित है, यही वडी वात है।

: २० :

शताब्दी के प्रारंभ की बंगला कविता

वगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ का युग अभी समाप्त होते हुए भी समाप्त नही हुआ है, इसलिए रवीन्द्रनाथ के विषय मे लिखने के वाद क्या लिखा जाय, यह विचारणीय है। इसमे सन्देह नही कि रवीन्द्रनाथ के समसामयिको मे कुछ कवि ऐसे हुए है, जिनको हम रवीन्द्रनाथ की प्रतिध्वनि नही कह सकते। हम पहले ऐसे तीन कवियो का उल्लेख कर चुके है, एक तो अक्षयकुमार बड़ाल, दूसरे सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, तीसरे देवेन्द्रनाथ सेन। हम उनकी कविता का उदाहरण

भी दे चुके हैं, किन्तु अब हम कुछ ऐसे कवियो का उल्लेख करेंगे, जिनको हम काल की दृष्टि से शताब्दी के प्रथम चरण के कवि कहेंगे। सच बात तो यह है कि वह रवीन्द्रनाथ के समसामयिक है, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र मुख्यत. १९१४-१८ के महायुद्ध के पहले के समय मे ही रहा। इनमे कुछ बाद को भी चलते रहे।

द्विजेन्द्रलाल राय

ऐसे कवियो मे द्विजेन्द्रलाल राय का नाम सबसे प्रमुख है। एक समय था जब लोग उन्हे रवीन्द्रनाथ के समकक्ष कवि समझते थे। इसमें सन्देह नही कि वह एक उच्च-प्रतिभाशाली कवि तथा नाटककार थे। नाटक मे कला तथा निस्पृह सौन्दर्य सृष्टि की दृष्टि से, न कि भावुकता की दृष्टि से वह अक्सर रवीन्द्रनाथ के आगे निकल गये हैं। आज द्विजेन्द्रलाल राय की भाषा-शैली को अपनाकर चलनेवाले बगला साहित्य मे बहुत कम होगे, किन्तु रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त शैलीकारों मे वह ही कदाचित् सबसे प्रमुख हैं। सच बात तो यह है कि रवीन्द्रनाथ की विश्वविस्तृत विपुल ख्याति के सामने द्विजेन्द्रलाल अच्छी तरह चमक नही पाये। द्विजेन्द्रलाल के दुर्भाग्य की जो दूसरी बात हुई वह यह थी कि वह आपेक्षिक रूप से कम उम्र मे ही उठ गये, जिससे कि वह साहित्य मे एक जीवित शक्ति नही रह सके। हमे डर है, द्विजेन्द्रलाल का मूल्य ठीक तरह से कूता नही गया है, शायद जब रवीन्द्र-युग दूर की वस्तु हो जाय, उनका असली मूल्य कूता जाय। हमारी राय मे यदि रवीन्द्रनाथ बंगला मे पैदा न होते तो द्विजेन्द्रलाल बगला के सबसे बड़े कवि माने जाते, किन्तु उनकी कविता तथा गीत मुख्यत. उनके नाटकों मे बिखरे हैं। द्विजेन्द्रलाल के हास्यरस के गाने भी मशहूर हैं। हम उनकी और तरह की कविता उदाहरण रूप मे पेश न कर 'नन्दलाल' नामक एक हास्यरस का गाना अनुवाद के रूप मे प्रस्तुत करेंगे। यह उस जमाने के और कुछ हद तक इस जमाने के बगाली मध्यवित्त श्रेणी के बाबू का सुन्दर चित्र है। मजे की बात इस सम्बन्ध में यह है कि द्विजेन्द्रलाल वंकिमचन्द्र की तरह एक डिप्टी मजिस्ट्रेट थे, और इन्ही दोनो लेखको की रचनाओ से बगाल ने स्वदेशभक्ति सीखी।

नन्दलाल कविता यो है—

नन्दलाल ने एक बार एक भीषण प्रण कर ही डाला कि जैसे भी हो, वह स्वदेश के लिए अपना प्राण वार देगा। सबने कहा—हँ-हँ, हँ-हँ, नन्दलाल यह तुम क्या करते हो?

नन्दलाल ने कहा—तो क्या हम हमेशा बैठे ही रहे, भला मै न करूं तो इस देश का उद्धार कौन करेगा ?

तब सबने कहा—वाह रे नन्दलाल, वाह, वाह, वाह !

नन्दलाल का भाई हैज़े से मरने लगा, उसे कोई देखनेवाला नहीं था। सबने कहा—जाओ न, जरा भाई की सेवा तो करो...

नन्दलाल ने कहा—खैर भाई के लिए जान देना है तो मै दे सकता हूं, लेकिन ऐसा अगर मैंने किया तो इस अभागे देश का क्या होगा ? इसलिए ऊंच-नीच सोचकर मैंने देखा कि मेरा जीना बहुत ही जरूरी है।

तब सबने कहा—अहा-हा-हा-हा, तुमने बावन तोले पाव रत्ती बात कही, जरूर। क्या कहने !

नन्दलाल ने एक दफे एक अखबार निकाला। उसने गद्य तथा पद्य में सबको गालियां देकर सबकी नाक मे दम कर दिया। चारों तरफ नन्द की धूम हो गई, नन्द मेहनत के मारे लकड़ी हो गया। वह जितने गुना सोता था उसका दस गुना खाता था। क्या करता, वह पूड़ी, मिठाई और पकवानो के दोने-पर-दोने उड़ाने पर मजबूर था। नन्द ने एक बार अखबार मे एक साहब को गालियां दीं। साहब ने आकर उसका गला पकड लिया तो वह चीं-चींकर बोला—अजी, यह क्या करते हो, कहीं मै इस गला दबाने से मर गया तो इस देश का क्या होगा ? अतः जितने गज तक कहो उतने गज तक नाक जमीन पर रगड़ने के लिए या जो कहो सो करने के लिए तैयार हूं।

तब सबने कहा—अरे वाह, अरे वाह-वाह !

नन्द फिर घर से बाहर नही जाता था, न मालूम कहां कब क्या हो जाय। गाड़ी पर नहीं चढ़ता था, न मालूम कब उलट जाय, नाव मे भी नहीं चढ़ता था, क्योकि न मालूम हर साल कितनी डूबती है, रेल में लड़ने का भय था, फिर पैदल चलने मे सांप, कुत्ते तथा गाड़ी के नीचे दब जाने का डर था, इसलिए नन्दलाल अब लेटे-ही-लेटे जीने लगा। सबने कहा—अरे वाह ! अरे वाह ! नन्दलाल, हमेशा जीते रहो !

द्विजेन्द्रलाल ने अंग्रेजी मे भी कुछ सुन्दर कविताएं लिखी है। उनमे और रवीन्द्रनाथ मे बराबर साहित्यिक विषयो को लेकर जो विवाद हुए हैं, वे पढने की चीजे हैं। रवीन्द्रनाथ को एक तरफ विपिनचन्द्र पाल जैसे धुरन्धर विद्वान

तथा द्विजेन्द्रलाल जैसे प्रतिभाशाली कवि से निपटना पड़ता था, रवीन्द्रनाथ को इस वाद-विवाद मे असुविधा यह रहती थी कि वह ब्राह्म सम्प्रदाय के होने के कारण जनता उनकी 'प्रचार कार्यमूलक' रचनाओ के विरुद्ध सहज ही हो जाती थी। द्विजेन्द्रलाल ने 'भारतवर्ष' नामक मासिक पत्र चलाया, जो अवतक सफलतापूर्वक चल रहा है। कवि द्विजेन्द्रलाल ने करीव-करीव उन सभी क्षेत्रो में अपनी प्रतिभा को दौडाया है, जिनमें रवीन्द्रनाथ की कीर्ति है। हां, उन्होने नाटक ही लिखे, उपन्यास नही लिखे।

सत्येन्द्रनाथ दत्त

सत्येन्द्रनाथ दत्त की प्रतिभा की सवसे वडी विशेपता यह है कि उनमे कुछ भी कृत्रिमता नही है, उनकी कविता कभी अलसाती हुई चाल से, कभी द्रुत, कभी गरजती, कभी वरसती, कभी तड़पती हुई चली जाती है। रेड इण्डियनो की लोरी, चीनी कवि लो तु की कविता, जनरल नोगी की एक आह, वल्कान, आइस-लैंड की कविता को उन्होने वंगला मे रूपान्तर कर रक्खा है, किन्तु कवि यदि न वतावे तो किसी जगह मालूम भी न हो कि यह जो हम पढ़ रहे हैं और पढते-पढते मस्त होकर झूमने लगते है, क्रोध से वलवला उठते है या विपाद से मुरझा जाते हैं यह कोई अनुवाद है। विदेशी कविताओ को वंगला लिवास पहनाने मे सवसे सफल वह ही रहे। दु.ख की वात है कि वह अकाल-मृत्यु के शिकार रहे। उनकी प्रतिभा कविताओ के अनुवाद के क्षेत्र मे अद्वितीय होने पर भी वह केवल अनुवादक ही नही रहे। उनकी मौलिक कविताओ की संख्या भी वहुत है। छन्द और भाषा उनके लिए इतनी अनायास थी कि उनकी कविता सीधे पाठक के कानो मे पैठते ही हृदय मे पैठ जाती है। वंगाली आत्मा के साथ उनकी इतनी तादात्म्यता थी कि इस क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ भी उनसे कही आगे वढ पाये हैं, ऐसा नही कहा जा सकता। सत्येन्द्रनाथ दत्त की मृत्यु पर रवीन्द्र ने एक वहुत ही सुन्दर कविता लिखकर उनकी असामान्य प्रतिभा का अभिनन्दन किया था। उन्होने लिखा था—

वर्षार नवीन मेघ एलो धरणीर पूर्व द्वारे
वाजाइलो वज्रभेरी। हे कवि, दिवे ना साड़ा तारे
तोमार नवीन छन्दे ? आजिकार काजरी-गाथाय
झूलनेर दोला लागे डाले डाले पाताय पाताय

वर्षे वर्षे ए दोलाय दितो ताल तोमार जा वाणी
विद्यु त-नाचन-गाने से आजि ललाटे कर हानि
विधवार वेशे केनो निःशब्दे लुटाय धूलिपरे ?

—वर्षा के नये बादल पृथ्वी के पूर्व द्वार मे आ गये, आकर उन्होने वज्रभेरी बजाई। हे कवि, तुम अपने नवीन छन्दों से उसका उत्तर न दोगे ? आज की कजली गाथाओं में पत्ते-पत्ते में तथा डालियो मे भूलन का प्रभाव है, प्रति वर्ष इस भूलने को तुम्हारी जो वाणी विद्युत-नृत्य-गान से ताल देती थी, वह आज विधवा के वेश में सिर धुनती हुई चुपचाप पडी हुई धूल पर क्यों लोट रही है ?

केवल यही नही, रवीन्द्र ने लिखा है, "सत्येन्द्रनाथ वंग भारती की वीणा मे एक नया तार लगाने आये थे।" भाषा, छन्द तथा नवीनता होते हुए भी सत्येन्द्रनाथ दत्त रवीन्द्रनाथ या द्विजेन्द्रलाल की तरह एक विश्व-कवि इसलिए नही हो सके कि उनकी कविता मे कोई दार्शनिकता की गहराई नही है। आज के युग की अच्छी कविता केवल सुललित भाषा या सावलील छन्द की बदौलत ही नही बन सकती, उसमें जीवन की सैकड़ों पहेलियो तथा समस्याओं पर रोशनी होनी चाहिए, कविता के जादू से ऐसा मालूम देना चाहिए जैसे उनका हल पा लिया, जिसकी टोह थी। इस प्रकार की बाते सत्येन्द्रनाथ के काव्य मे नही है, यद्यपि जैसा कि मैं कह चुका, भाषा और छन्द उनके लिए वैसे ही अनायासलब्ध है, जैसे मोर के लिए रंग की विचित्रता।

यदि उनकी अकाल-मृत्यु न होती तो शायद उनकी प्रतिभा पूर्ण रूप से विकसित होती और वह हमे एक विराटतर रूप मे नजर आते। उनकी एक छोटी-सी कविता 'चम्पा' का कुछ मूल, और पूरा अनुवाद देकर हम इस प्रसंग को खत्म करते है—

आमारे फुटिते होलो वसन्तेर अन्तिम निश्वासे
जखन विश्व निर्मम ग्रीष्मेर पदानत
रुद्र तपस्यार वने आध-त्रासे आधेक उल्लासे
एकाकी आसिते होलो—साहसिका अप्सरार मतो।

—इत्यादि

—जब वसन्त की अन्तिम सास चल रही थी तब मुझे पैदा होना पड़ा, उस

समय विश्व निर्मम ग्रीष्म का पदानत था। साहसी अप्सरा की तरह हमें रुद्र तपस्या के वन में आधे त्रास में तथा आधे उल्लास में आना पड़ा। शोषण-क्लिष्ट वन एक बार चर्चरा उठा, उदास कुंज में क्लान्त कोकिल का स्वर एक बार सुनाई पड़ा, ऐसे समय मे मैंने जन्म-यवनिका की कोर में अपने नये सुकुमार नेत्रों को खोलकर जलस्थल को देखा तो पाया कि वे शून्य, शुष्क, विह्वल, जर्जर हैं। फिर भी विश्वास के वृन्त पर कंपता हुआ चम्पक मैं निकल ही आया। कड़ी-से-कड़ी धूप मे मैं नही गिरूंगा, भयंकर शराब की तरह जिस धूप की गर्मी से विश्व तड़पकर रह जाता है, मैं उसे विधाता के आशीर्वाद से आसानी से पी जाता हूं। मैं धीरे-से उषा का संतप्त कर पकड़कर निकल आया, देह मे मूर्च्छा आती है, मन मे मोह-सा छा जाता है, हर मुहूर्त यही अनुभव करता हूं। फिर भी सूर्य की विभूति से मेरा सलोनापन ही बढ़ता है। इसलिए मैं दिन के देवता को नमस्कार करता हूं। मैं चम्पक हूं, सूर्य का सौरभ ही तो हूं।"

सत्येन्द्रनाथ की इस कविता के अर्थ को यदि हम चम्पक नामक प्रसिद्ध पुष्प की जन्मकथा तक ही सीमित रक्खें तो यह एक मामूली कविता ही रहेगी, इसकी भाषा, कल्पना तथा शैली की हम चाहे कितनी भी प्रशंसा करें, किन्तु नही, यही सब-कुछ नहीं। "आधुनिक काव्य-साहित्य की एक धारा मनुष्य तथा प्रकृति को रूपकात्मक, प्रतीकात्मक और रहस्यात्मक दिशा से पकड़ने की चेष्टा है। इस धारा के प्रवर्तक वर्ड्सवर्थ तथा शेली है। रूपकात्मक, प्रतीकात्मक तथा रहस्यात्मक, इनको ठीक-ठीक समझाना मुश्किल है, फिर भी हम व्याख्या से इनका अर्थ स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे। पहली बात तो यह है कि रूपक भी रूपक है और प्रतीक (Symbol) भी रूपक है किन्तु दोनों मे यथेष्ट प्रभेद है। ऐलेगॉरीकल श्रेणी के रूपक मे एक साथ दो चीजें रहती हैं, एक तो बाहर जो कुछ स्थूल रूप से कहा जा रहा है वह, और दूसरी वह जिन बातों या भावो के वे रूपक हैं। स्थूल कहानी के रूप में भी हम उसका मजा उठाते हैं और जो कहानी आड़ मे चल रही है उसका भी हम मजा उठाते हैं। जैसे स्पेंसर की "फेरी क्वीन' या द्विजेन्द्रलाल राय का 'स्वप्नप्रयाण' काव्य-रूपक के उदाहरण हैं। स्ट्रिन्डवेर्ग का 'लकी पेयर' भी एक ऐसा दोमुंहा रूपक है। सिम्बॉलीकल रूपक नाट्य या काव्य मे ये दोनों धारा रहने पर भी वहां वास्तव में स्थूल घटना को कोई प्रमुखता प्राप्त नहीं है, स्थूल घटना से परे जो दूसरी चीज है वही मुख्य

है। जैसे रवीन्द्रनाथ का 'डाकखाना' है, इसमें डाकखाना, डाकिया, मुखिया कोई सार्थकता नही रखते, इनके परे जो चीजे हैं वे ही इनमे मुख्य हैं।

"इसपर यदि हम रूपकात्मक और प्रतीकात्मक का हिन्दी प्रतिशब्द करना चाहे तो हमें वस्तुरसप्रधान रूपक और भावरसप्रधान रूपक कहना पड़ेगा। प्राक-महायुद्ध (१६१४-१८) युग मे यूरोपीय साहित्य में भावरसप्रधान रूपक की प्रधानता थी। मेटरलिंक, ईट्स के काव्य इसी श्रेणी मे आते हैं। सत्येन्द्रनाथ की इस 'चम्पा' कविता को हम जब रूपरसप्रधान रूपक के रूप में लेंगे तभी इसमे एक दूसरा ही आनन्द दिखलाई पडेगा। अजितकुमार चक्रवर्ती ने सत्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध में एक फ्रेंच कवि पाल वरलेन Paul Verlaine के सम्बन्ध मे जो कहा है कि वे ध्वनि से चित्र खीचते हैं उसीको दुहराया है, यह ठीक ही है। सचमुच उनको छन्द तथा भाषा पर अद्भुत अधिकार था। 'वरलेन की तरह उनके छन्दो के स्पन्दन मे अरूप जगत् का स्पन्दन मानो पकड़ा गया है।'"[1]

रवीन्द्रनाथ की कविताओं का बहुत-कुछ अनुवाद हो सकता है, किन्तु सत्येन्द्रनाथ की कविता का अनुवाद होना करीव-करीव असम्भव है। ऐसे अवंगाली पाठक जो वंगला भाषा की आत्मा तक नही पहुंचे हैं, वे उनकी कविता को समझ नहीं सकते।

इन्दिरा देवी और प्रियम्वदा देवी

इन्दिरा देवी तथा प्रियम्वदा देवी ने भी कुछ कविताएं लिखी हैं, किन्तु इन पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इतना स्पष्ट है कि मालूम होता है, हम रवीन्द्रनाथ को ही पढ रहे हैं। इन्दिरा देवी की निम्नलिखित कविता भाव तथा भाषा मे बिल्कुल रवीन्द्रनाथ की ही मालूम होती है। हम मूल का केवल एक छन्द ही उद्धृत करते है, जिन पाठको ने रवीन्द्र-काव्य का मूल मे आस्वादन किया है, वे इसको पढकर धोखे में आ जायंगे—

हासिखेलार अभिनये अश्रु जले ढाकि
भवेछिलाम एम्नि कोरे तोमाय देवो फाकि
बुके आमार जे सुर वाजे, गुंजरे जा मर्ममाझे

[1] श्री अजितकुमार चक्रवर्ती प्रवासी, कार्तिक १३२५

भवेछिलाम सुखेर साजे राखबो तारे ढाकि ।
हासिखेलार मिथ्याछले तोमाय दिये फाकि ।

—हँसी-खेल के अभिनय मे अश्रुजल ढककर मैंने सोचा था इसी प्रकार तुम्हे धोखा दे दूगी । मैंने सोचा था कि मेरे हृदय मे जो सुर वजता है तथा मर्मस्थल में जो कुछ गूजता है उसे मुख के लिवास मे ढक रक्खूगी हँसी-खेल के अभिनय में तुम्हें धोखा देकर ।

"प्रभात जब दोपहर में परिणत हो गया, तप्त वायु पैरो मे अग्निकण की तरह लगी, देह जब थकावट के मारे मिट्टी से छू-सी जाने लगी, आंखो मे जितने ही आसू झरते थे और मैं उन्हे गोपन करती थी, तभी तुमने मुझे गोद की लड़की की तरह गोद की ओर खीच लिया ।

"मैंने तो तुमसे नही पूछा, कहां मेरा स्थान है, मैंने तुम्हारे पैरो पर आंसुओ की वाढ़ तो नही ला दी थी । वीरान मन मे मैंने अपनी व्यथा निवेदन कर तुमसे सहायता तो नही मांगी थी, फिर भी तुमने कैसे कान लगाकर मेरे हृदय की गहन वातों तथा गोपन अभिमान को सुन लिया ?

"तुमने कैसे मेरी धोखेवाजी का पता पा लिया, केवल यही वात मैंने तुमसे अवतक नही सुनी । न मालूम कव कौन-सा सुराग पाकर तुम्हारी हँसी की वाढ ने आकर मुझे हँसकर वहा लिया और इस प्रकार मेरी दुविधा मिट गई । कैसे तुमने मेरी प्रतारणा पकड़ ली ।"

प्रियम्वदा देवी की भी एक छोटी-सी कविता 'आशातीत' नीचे दी जाती है—

तोमारे पारि न धरिते, पारि ना धरिते
मनेते मिशाये आपना करिते
ओरे आकाशेर आलो,
तोमाय पारि ना धरिते, पारि ना धरिते
जतोई वासि ना भालो ।
तोमाय पारि ना वांधिते, पारि ना वांधिते
नित्य नवीन छन्दे गांथिते
ओरे मोर भालोवासा,
तोमाय पारि वांधिते, भावे रूप दिते
तेमोन नाहिको भाषा

—मैं आकाश की रोशनी मे तुम्हे पकड़ नही पाती, पकड़ नही पाती, मन मे मिलाकर अपना नही पाती। तुमको पकड़ नही पाती, पकड़ नही पाती। चाहे जितना भी प्यार करूं।

"तुमको मै बांध नही पाती, बाध नही पाती, नित्य नवीन छन्दो मे गूथ नही पाती। हे मेरे प्यार, तुमको में बाध नही पाती, हाय, भाव को रूप नही दे पाती, वैसी भाषा ही मेरे पास नही है।"

इन दोनों कवयित्रियो मे से इन्दिरा देवी की अकाल मृत्यु हुई।

यतीन्द्रमोहन वागची

यतीन्द्रमोहन वागची रवीन्द्रनाथ के सफल शिष्यो मे थे। वह उनके शिष्य ही रहे, किसी भी तरीके से अपने लिए स्वतन्त्र मार्ग का निर्माण नही कर पाये। भाषा पर उनका भी इतना अधिकार था कि उनके सम्बन्ध में, सत्येन्द्रनाथ की तरह, वह ध्वनि से चित्राकन करते हैं, कहा जा सकता है। हा, छन्द के मामले मे वह सत्येन्द्रनाथ से निकृष्ट रहे। उनकी कविताओ मे भी कुछ रूपकयुक्त हैं, हम नीचे खेया-डिंडि नामक एक कविता के कुछ अंश उद्धृत करते हैं। पाठक इसकी सुललित भाषा को देखे, रवीन्द्रनाथ की भाषा के साथ इसकी तुलना की जा सकती है—

पाटेर भितर खेतेर दिये घाटेर डिङा वाइ—
तोबु आमार हाटेर साथे कोनो वांधन नाइ;
शिरा-ओठा फाटा हाते हालेर गोड़ा धरि
आमि शुधु आपन मने एपार ओपार करि

—इत्यादि

—मैं पाट के खेतो के भीतर से घाट की छोटी नाव खेता हू, फिर भी हाट के साथ मेरा कोई बन्धन नही है। वस ममकते हुए फटे हाथो से मै पतवार पकड़ता हूं, मैं केवल अपने-आप ही इस पार से उस पार करता रहता हूं।

"तुम लोग खेत, फसल, वारिश, वादल, वाढ की वात सोचते रहते हो, भादो का धान कितना हिस्सा डूवा, कितना वचा, किन्तु इन वातों मे मेरी कोई दिलचस्पी नही है, मै केवल नियमानुसार घाट की नाव को खेता रहता हूं।

"भरी नदी में भाद्र भरी वाढ़ लेकर आता है लाल पानी से दोनो किनारे एक से हो जाते हैं। वास से जमीन का पता नही लगता, न कोई थाह मिलती है, फिर भी दिन और रात मे मुझे छुट्टी कव मिलती है।

"अकस्मात् जिस दिन वाढ के पानी से खेत भर जाते है, धान के खेत मे घुटनों तक पानी होता है और पाट के खेत मे गले के वरावर पानी होता है, धान का केवल ऊपरी हिस्सा पानी पर हिलता रहता है उस समय मेरी नैया डगमग-डगमग उन्हींके पास होकर निकलती है।

"वे पगडंडियां कहां गईं और वे वांध ही कहां गये, ववूल के पेड़ों की चौहद्दी को लेकर वे झगड़े ही कहां गये? वन्धनहीन वाढ के सामने भला यह सव नियम-कानून कहां चलते हैं, इसलिए असीम तैराकी करते हुए मैं नाव खेता रहता हूं।

"कमर तक पानी में खड़े होकर किसान हंसुआ चलाता है, धान के अग्र-भाग की सोंधी गंध हवा मे तिरती रहती है। ललाई लिये हुए धान के अग्र भागों को पानी के नीचे नवाकर मेरी नाव उसीके वीच से चलती है।

"धान की गड्डियो को मैं इस पार उस पार करता हूं, पाट के ढेर को भी ढोता-भरता हूं, दिन-रात कितने लोगो की कितनी ही वाते सुनता हूं, मैं वैठकर मन-ही-मन खेवे का हिसाव लगाता रहता हूं।

"पानी के ऊपर सेंदुर-सा विखराकर सूर्य उगता है, दिन का खेवा खतम कर पश्चिम मे डूव जाता है। वारहो महीने में एक भी दिन उसे छुट्टी नही है, उसीके साथ मै भी घाट की नाव को खेता हूं।"

'देशेर लोक' (देहाती) नामक कविता में देहाती दुनिया का अत्यन्त सच्चा चित्र खींचने के वाद वह कहते है—

अविचार अत्याचार भावे निज करमेर फल
नयनेर जल छाड़ा ताइ किछु थाके ना सम्वल

—"वह अविचार तथा अत्याचार को अपना ही कर्म-फल सोचता है, इसीलिए आंसुओ के सिवा उसका कोई सम्वल नही है।" कवि जो वर्णन करते हैं वह है तो सच, इस अभागे देश के गरीवो की यही मनोवृत्ति है, किन्तु एक क्रांतिकारी कवि की तरह वजाय इसके कि वह इनको कविता का चावुक मारकर उठाते, वह उसकी इस भाग्यवादी मनोवृत्ति की सराहना करते हैं—

एई देश—एई लोक—हासिओ ना शिक्षा-अभिमानी
धर्म जाने तार काछे सत्य मूल्य कार कतोखानि

—"ऐसा तो हमारा देहात है, और ये देहाती हैं, सुनकर हे शिक्षा-

भिमानी, मत हँसना। धर्म जानता है कि उसके निकट किसकी कितनी सच्ची कीमत है।"

यह तो एक तरह से प्रतिक्रियावाद का प्रचार करना हुआ। यह तो वही बात हुई कि इस दुनिया मे जमीदारो की जबर्दस्ती और जुल्म सहो, इसके बदले मे अगली दुनिया मे हूरो-गिलमा मिलेगे। मालूम होता है, ऐसा लिखते समय कवि यतीन्द्र मोहन 'एबार फिराओ मोरे' नामक रवीन्द्रनाथ की कविता के उस अंश को भूल गये—

एई सब मूढ़ म्लान मुखे
दिते हवे भाषा, एई सब श्रान्त, शुष्क, भग्न बुके
ध्वनिया तुलिते हवे आशा, डाकिया बलिते हवे
मुहूर्त तुलिया शिर एकत्र दांडाओ देखि सवे,
जार भये तुमि भीत से अन्यायी भीरू तोमा चेये
जखनि जागिबे तुमि तखनि से पलाइबे धेये[1]

रवीन्द्रनाथ भी भाववादी होने के नाते ऐसे मामलो मे अन्त तक पूरी तरह निर्वाह नही कर पाते, किन्तु अक्सर उनकी प्रतिभा उनको इस प्रकार की गलती से बचा भी लेती है। यतीन्द्रमोहन की यह मनोवृत्ति हम उनकी 'गौरी' नामक कविता को रवीन्द्रनाथ की उसी सन् मे प्रकाशित 'येनास्याः पितरो जाता.' नामक कविता की तुलना करते है तो पाते है—दोनो में एक लड़की का विवाह उससे कही अधिक उम्रवाले बुड्ढे वर से होता है। दोनों विधवा हो जाती है, किन्तु दोनों मे बड़ा भेद है। यतीन्द्रमोहन की गौरी विधवा होती है, रवीन्द्रनाथ की मंजुलिका भी विधवा होती है। दोनों पितृसेवा तथा घर के काम-काज मे मन लगाने की व्यर्थ चेष्टा करती है।

मंजुलिकर
दुःखे-सुखे दिन हये जाय गत
स्रोतेर जले झरे पड़ा भसे जावा फूलेर मतो
अवशेषे होलो
मंजुलिकार बयस भरा सोलो

[1] इसका अनुवाद रवीन्द्रनाथ के 'एबार फिराओ मोरे' में आ गया।

—"दुख-सुख मे उसके दिन बीत जाते थे, मानो वह कोई स्रोत के पानी मे गिरा हुआ तथा बहा हुआ फूल थी। अन्त मे मंजुलिका की उम्र सोलह हुई।"

और गौरी का क्या हुआ ?

काल कि कारेओ छाड़े
बछर बछर मेयेर वयस बाड़े।
आट थेके से षोलय पलो, बुझलो क्रमे निजे
अवस्था तार कि जे।

—"समय किसीको भला छोडता है ? आठ से उसकी उम्र बढते-बढते सोलह वर्ष की हो गई। धीरे-धीरे वह समझ गई कि उसकी परिस्थिति क्या है।"

अपनी परिस्थिति समझने पर भी वह अन्त तक लाखो हिन्दू बाल-विधवाओ की तरह मूक रहकर अपने प्राण का तिलतिल देकर अपने पिता की मूर्खता का प्रायश्चित्त करती है। वह एक 'अनाघ्रात स्वर्ण-चम्पा' की तरह ही अपनी जीवन-लीला समाप्त करती है।

वर्षा तक रवीन्द्रनाथ की मंजुलिका भी इसी तरह रहती है। मंजुलिका की मां एक दिन उसके पिता से कहती है—क्यो जी, मंजु की शादी न कर दी जाय।

पिता हुक्के के नल से मुंह हटाकर कहता है—मुझे मर जाने दो, फिर मा और बेटी एक ही साइत मे शादी कर लेना—और मुह फेरकर अपना उपन्यास पढने लगता है। बात यही खतम हो जाती है।

कुछ दिनों मे माता मर जाती है। पिता कुछ दिन बीमार रहते हैं, बीमारी में पुलिन डाक्टर उन्हे देखता है। वह अच्छे हो जाते है, किन्तु कुछ ही दिनो मे वह इस नतीजे पर पहुचते हैं कि बिना विवाह किये ससार-धर्म का निर्वाह नही हो सकता। तदनुसार वह विवाह करने जाते है, किन्तु विवाह से लौटने के बाद वह देखते है कि मंजुलिका घर से भाग गई है, और पुलिन से शादी करने के बाद दोनो फर्रुखाबाद चले गये हैं।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि यतीन्द्रमोहन बागची अपने गुरु के पीछे रह गये हैं। यह तो मतामत की दृष्टि से हुआ, किंतु कला के क्षेत्र मे भी सम्पूर्ण रूप से वह उसी लीक पर चलते हैं, जिसपर रवीन्द्रनाथ चल चुके हैं। हम कही

भी उनमे कोई मौलिक धारा नही देखते। ऊपर जिन कविताओ की विषयवस्तु की तुलना की है उनके विषय मे मजे की बात यह है कि रवीन्द्रनाथ की कविता यतीन्द्रमोहन की कविता के ठीक एक महीना पहले 'प्रवासी' मे प्रकाशित हुई थी। क्या यह रवीन्द्रनाथ के उत्तर मे लिखी गई थी? यतीन्द्रमोहन की कविता देखकर यह सन्देह होता है कि शायद यह जवाब मे लिखी गई थी। वह पंक्तियां ये है—

तवु जेनो, गौरी एरि नाम—
रूप गुणे नामेर नतन—चोखेर तृप्ति चित्तेर विश्राम।

—"फिर भी जानना, गौरी इसीका नाम है, रूप तथा गुण मे नाम की तरह ही है, आखो के लिए तृप्ति और चित्त के लिए विश्राम है।"

कालिदास राय

कालिदास राय भी रवीन्द्र-प्रभाव मे पले हुए एक कवि है। सत्येन्द्रनाथ की तरह वह भाषा और छन्द के आचार्य नही जंचते तथा रवीन्द्र-प्रभाव के कवि होते हुए भी उन्होने किसी जगह भी रहस्यवाद को पास नही फटकने दिया। उनके विषयो मे ही कुछ ऐसी मधुरता होती है तथा विषय को वह प्रतिभा के साथ निभाते है कि उनकी कविताएं पठनीय तथा मौलिक-रसयुक्त हो जाती है। मध्यवित्त श्रेणी के छोटे-छोटे सुख-दुःखो को उन्होने इस खूबी से चित्रित किया है कि देखते ही वनता है। 'छात्रधारा' नामक कविता मे उन्होने शिक्षकों को इस भावुकता के साथ चित्रित किया है कि कोई भी सहृदय शिक्षक इसे पढ़कर आंसू नही रोक सकेगा। प्रत्येक समाज मे ये शिक्षक कितने उपयोगी है और लोग उन्हे कितना वेकार समझते है। इस कविता को पढते-पढते हमे चेखव के उस शिक्षक का स्मरण हो आया, जो मरते समय प्रलाप मे कहता है, "वोल्गा नदी वल्डाई पहाड से निकलकर फलाने समुद्र मे जाकर गिरती है।" करुण और हास्य-रस का अद्भुत मिश्रण है। कहानी की पश्चाद्‌भूमि के कारण यह दृश्य और भी करुण हो जाता है। हम कालिदास राय का 'छात्रधारा' कविता का अनुवाद नीचे देते है—

—"प्रति वर्ष वे झुड-के-झुंड इस विद्यालय के नीचे आते है और वे कलरव करते हुए चले जाते है, कैशोर के किसलय पत्ते तव यौवन के हरेपन के गौरव को प्राप्त करते है। उन्हे मैं प्यार करता हू, पास बुलाता हू, सबका नाम जान

रखता हूं, रोज-रोज उनसे भेंट होती है, डाट-फटकार बताता हूं, एक पहर तक सीख भी देता हूं, किंतु फिर भी कुछ याद नही रहती। दो-चार दिन की यह मुलाकात, समुद्र के बालू पर जैसे रेखा, नई लहर आते ही पुछ जाती है। नन्हे पैरों के दाग नये चरण-चिह्नों की ताड़ना से एक-से हो जाते हैं। वे यहां एकत्र तो होते हैं, किंतु जानते नहीं कहां जायगे, विद्यालय मानो एक सराय है। दो-चार-दस दिन एकत्र किसी काम को करते है, फिर मिलकर जैसे नीति-सार और कथामाला गूथते है।

"कभी रास्ते में भेंट ह जाती है तो कोई गुरु कहकर हाथ उठाकर नमस्कार करता है तो मै हँसता हुआ कहता हूं, 'जीते रहो, क्या काम-काज हो रहा है ?'

"सोचते-सोचते चलता हूं, नाम तो याद नही आता, कितने दिन पहले छात्र था ? याददाश्त को लेकर खीचातानी करता हूं, कैशोर का उसका चेहरा याद आकर भी नही याद आता। आना-जाना रोज का होता है, बहुत दिनो तक भेंट होती है, फिर भी वे याद क्यों नही रहते ? व्यक्ति जाकर झुंड मे मिल जाता है, गले में माला पहन लेने पर प्रत्येक फूल को भला कौन याद रख सकता है ?

"इस जीवन पर तोड़-फोड़ मचाकर उसे हरा तथा सरस करते हुए छात्रों की धारा वह जाती है, वह फेनिलता तथा उच्छ्वास तुच्छ हो जाता है और कलरव विलीन हो जाता है। जब मैं आर-पार देखता हूं तो मेरे मन को घेरकर कुछ म्लान चेहरे जग उठते हैं। जो कलरवमय महोत्सव है वह तो सब भूल जाते है, किंतु ये म्लान मुख याद रह जाते है।

"कोई तो भूख से म्लान है, कोई रोग से अधमरा है, थकावट से किसीकी चितवन करुण हो रही है। कोई बेत के डर से कोठरी में छिपा रहता है, किसी-की आंखें नींद से कड़वी हैं। कोई क्लास में बैठकर जंगले से बाहर की ओर देखता है, मानो कोई पिंजरे मे बन्द चिडिया हो। आसमान मे पतंग को देखकर उसका मन उड़ान भरने लगता है, उसके चेहरे पर विषाद की उत्कट छाया पड़ती है। कोई खेल के मैदान को याद कर सबक भूल जाता है, किसीकी बुद्धि में ही बात नही आती; कोई तो घर को तथा स्नेह-भरे भाई-बहनों को याद कर बार-बार घडी की ओर देखता है।

"उदार वायु स्वास्थ्य तथा आयु लेकर पुकारती है, वह इस पुकार को बद

कमरे में बैठकर सुनती है। हाथ में स्याही, मुंह मे स्याही ऐसा बच्चा, वैसा ही मालूम देता है मानो नन्हा-सा चाद बादलों मे ढका हो, गद्य मुझे याद पड़ता है। और सब तो भूल चुका हूं किन्तु यह सब भूल न सका। एक बार आंख मूदते ही म्लान-मुखो की ये पंक्तियां मन को आकुल कर डालती ।"

निरुपमा देवी

निरुपमा देवी बंगला में विशेष रूप से अपने उपन्यासों के कारण प्रसिद्ध थीं, किन्तु उन्होने कुछ अच्छी कविताएं भी लिखी है। सच बात तो यह है कि बंगला के सभी सुकुमार साहित्य के लेखक साथ-साथ कवि भी होते है। शरत्चन्द्र आदि कुछ ऐसे उपन्यासकार बंगला भाषा मे हुए हैं, जिन्होने कविता कभी नही लिखी, किन्तु ये अपवाद है, न कि नियम। हम जब अति-आधुनिक बंगला काव्य पर आयेंगे तो दिखलायेंगे कि बंगला में अति-आधुनिक कविता के जो प्रवर्तक है, वे ही अतिआधुनिक गल्पकार भी हैं। निरुपमा देवी की 'तृण' नामक कविता का पहला अश हम उद्धृत करते हैं। पाठक देखेंगे इसकी भाषा बड़ी संगीतमय है :

मोरा कचि कचि श्याम तृणदल
करि जीवनेर पथ सुश्यामल
उठि धरणीर प्राण फुंड़िया
रहि कठिनेर बुक जुड़िया
राखि घन मखमले मुड़िया
एइ कंकरमय धरातल।

—"हम हरी-हरी नरम घास के दल है। हम जीवन के पथ को हरा बनाते है, हम पृथ्वी का प्राण फोडकर उठते हैं, कठिन के हृदय को व्याप्त कर हम रहते है, हम इस ककडमय धरातल को घने मखमल से मोड रखते है। हम हैं हरी-हरी नरम घास के दल।"

"मोरा कचि कचि श्याम तृणदल।"

यह कविता भी एक रूपक है। निरुपमा देवी पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है,किन्तु वह रहस्यवाद से सम्बन्ध नहीं रखती। फिर भी वह एक भाववादिनी लेखिका थी।

यतीन्द्रनाथ सेन गुप्त

यतीन्द्रनाथ सेन गुप्त की एक कविता 'हाट'[1] का कुछ अंश लीजिये

दूरे दूरे ग्राम दशबारोखानि
माझे एकखानि हाट
सन्ध्याय सेथा ज्वले ना प्रदीप
प्रभाते पड़े न झांट।
बेचा केना सेरे विकाल-बेलाय
जे जाहार सबे घरे फिरे जाय
बकेर पाखाय आलोक लुकाय
छाड़ायें पुबेर माठ
दूरे दूरे ग्रामे ज्वले उठे दीप—
आंधारेते थाके हाट।

—"दूर-दूर पर दस-बारह गांव है और बीच मे एक हाट लगता है, सन्ध्या के समय न तो वहां दीया जलता है, न तो सबेरे झाड़ू ही लगती है। खरीदना-बेचना समाप्त कर सब अपने-अपने घर ही लौट जाते है, बगुले के पर पर चल-कर रोशनी मानो पूर्व का मैदान पारकर छिप जाती है। दूर गांवों में दीये जल उठते है, किन्तु हाट अंधेरे मे ही रहता है।"

दिवसेते सेथा कतो कोलाहल
चेना अचेनार भिड़,
कतो ना छिन्न चरणचिह्न
छड़ानो से ठांई घिरे।

.. ..

दिवसे थाके ना कथार अन्त
चेना अचेनार भिड़,
कतो के आसिलो, कतो वा आसिछे,
कतो ना आसिबे हेया

[1] गांव का वह बाजार, जो हफ्ते में केवल एक या दो दिन लगता है।

ओपारेर लोके नामाले पसरा
छूटे एपारेर क्रेता ।
हिसाव नाहिरे एलो आर गेलो
कतो क्रेता-विक्रेता

—"दिनभर यहां कितना कोलाहल रहता है । परिचित तथा अपरिचित की भीड रहती है । उस जगह को घेरकर न मालूम कितने लोगो के पदचिह्न बने हुए है। दिन मे तो इस परिचित-अपरिचित की भीड मे वातो का अन्त नही रहता । कितने आये, कितने आ रहे हैं, कितने आयेगे । उस पार के लोग यदि अपना सामान उतारें तो इस पार के क्रेता दौड पडते है । इसका कुछ हिसाव नही कि कितने क्रेता और विक्रेता आये ।

"नये सिरे से यह हाट हर वार वैठता-टूटता है, दिन-रात नये यात्री हैं, इस नाटक का खेल जारी है । कोई तो जाते वक्त गांठ मे कुछ वांधकर जाता है और कोई रोता है, उदार आकाश और मुक्त वायु में चिरकाल तक एक खेल चलता रहता है। "

इस कविता पर रवीन्द्र-प्रभाव स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ वस्तुवादी नहीं, वल्कि भाववादी होने पर भी अपनी प्रतिभा की विराट तूम्वी के कारण पानी के ऊपर ही रहते है, किन्तु उनके वहुत-से शिष्यों मे इस प्रतिभा की देन न होने के कारण वे अक्सर रूपक तक ही रह जाते है याने रूप को गौण वनाकर कविता लिखते है । यह कविता उसीका एक उदाहरण है । हाट का वर्णन पढ़कर कि वहां सांझ का दीया भी नही जलता, हमारे दिल में करुणा का उद्रेक होते-न-होते हम अनुभव करते है कि कवि कह रहे हैं खेत की, लेकिन गा रहे हैं खलिहान की । इस दृष्टि से वंगला भाषा को अतुल शब्दो का ऐश्वर्य देने पर भी रवीन्द्रनाथ का प्रभाव वंगला कविता के आधुनिक होने मे वाधक सावित हुआ । जिसे देखो, वही रूपक, प्रतीकवाद तथा रहस्यवाद की तरफ दौड़ा । सभी कविता में इस तरह वाते करने लगे, मानो इस सृष्टि के पीछे जो रहस्य है उसके गुप्त-गृह मे उनका प्रवेश हो चुका है ।

: २१ :

विद्रोही कवि काज़ी नज़रुल

बंगला भाषा की एकता के सबसे बडे प्रतीक है सुप्रसिद्ध कवि काजी नजरुल इस्लाम। उनकी कविता को किसी हिन्दू ने, मुसलमानी कहकर कभी उसका अनादर नहीं किया। सच तो यह है कि उन्होने बंगला काव्य मे एक नई रूह फूकी। वह रवीन्द्र-युग की ही उपज है, इस युग की उपज होते हुए अपने को एक दिग्गज के रूप मे प्रतिष्ठित कर लेना, यह कितनी बड़ी शक्ति का परिचायक है, इसका अनुमान किया जा सकता है।

नजरुल इस्लाम का वैयक्तिक जीवन भी एक धूमकेतु की तरह रहा। एक धूमकेतु की ही तरह उन्होंने एकाएक साहित्य-जगत् में प्रवेश किया। वह पश्चिम बंगाल के एक बहुत गरीब घर में पैदा हुए थे। उन्हें ठीक-ठीक शिक्षा नहीं मिली और उन्हे अपनी इच्छाओं का दमन करने की शिक्षा तो कभी मिली ही नही। वह प्रकृति के वरपुत्र के रूप में बढे, और इसी रूप मे वह कवि भी हुए। बचपन मे वह कई बार घर से भागे। भला घर का इकरस वातावरण उन्हे कैसे पसन्द आता? उनका गला अच्छा था, इस कारण कई बार वह नाट्य-मंडली में भी सम्मिलित हो गये। एक बार तो वह भागकर पूर्व बंगाल के एक गाव में पहुंचे और एक सज्जन के यहा नौकर हो गये। बाद को वह एक डबल रोटीवाले के यहां भी नौकर रहे।

जब १९१४ की लड़ाई छिडी तो वह उसमें भरती हो गये, और अन्ततोगत्वा हवलदार हो गये। लड़ाई से लौटकर उन्होने 'धूमकेतु' नाम का एक पत्र निकाला, जो अधिक नही चला, पर बंगला-साहित्य में उन्हे एक स्थान अवश्य देता गया। यदि कोई बंगला कवि यह कह सकता है कि वह एक दिन सवेरे जागा और उसने देखा कि वह मशहूर है तो वह नजरुल ही है।

नजरुल के लिखने का यह हाल था कि कभी तो लिखते ही रहते, और इसीमें रातें निकल जाती। फिर हफ्तो हो जाते, और वह कलम के पास तक नहीं फटकते। ऐसी हालतो में कई बार ऐसा हुआ कि उनके सम्पादक मित्रगण उन्हें

एक कमरे मे वन्द कर देते, और उन्हें कागज, कलम, चाय दे देते। फिर घंटे-दो घण्टे में उन्हे एक सुन्दर कविता मिल ही जाती।

जिस युग में नजरुल ने साहित्य मे प्रवेश किया, वह विद्रोह का युग था। यो तो क्रान्तिकारी गुट तथा व्यक्ति सन् १८५७ के विद्रोह की असफलता के बाद से ही क्रियाशील थे। वंग-भंग मे वंगाल की जनता भी जग चुकी थी, पर अखिल भारतीय रूप में इस महादेश की जनता ने इसी समय अंगडाई ली। देखते-देखते वह उठ वैठी और जय-यात्रा पर चल पडी। इसी समय काजी नजरुल ने ललकार कर कहा—

> आमि दुर्वार
> आमि भेंगे कोरि सव चुरमार,
> आमि अनियम उच्छृंखल,
> आमि दले जाई जतो वन्धोन
> जतो नियम-कानून शृंखल।

—मैं दुर्वार हूं, मुझे कोई रोक नही सकता। मैं सवको तोड़-तोड़कर चकनाचूर करके रख देता हूं। मैं अनियम हूं, मैं उच्छृंखल हूं, जितने भी वन्धन हैं, नियम, कानून तथा शृखला है, मैं उन्हे पैरोतले रौंदकर आगे वढ जाता हूं।

> विप्लव आनि विद्रोह कोरि
> नेचे नेचे गोंफे दिइ ताव'

—मैं क्रान्ति को वुला लाता हूं, विद्रोह करता हूं, मैं नाच-नाचकर मूंछो पर ताव देता हूं।

> आमि धृष्ट,
> आमि दांत दिया छिंड़ि विश्व-मायेर अंचल

—मैं ढीठ हूं, मै दातो से विश्व माता के आंचल को फाड़ डालता हूं।

> आमि विद्रोही भृगु
> आमि भगवान् वुके एंके देवो पदचिह्न
> आमि सृष्टि-सूदन
> शोक-ताप-हाना खेयाली विधिर
> वक्खो कोरिव छिन्न।

—मैं विद्रोही भृगु हूं, मैं ईश्वर के सीने पर अपने चरणो का चिह्न अंकित कर

दूंगा। मैं संहारक हूं, शोक, ताप आदि के प्रति एक तरह से उदासीन विधाता के सीने को फाड़ डालूंगा।

नजरुल की इस कविता मे बम, माइन, डिनामिट की भरमार है। परतंत्रता के उस युग मे इन चीजो को कविता मे लाना एक विशेष तरह की गुदगुदी पैदा करता था। एक तो ऐसी शब्दावली, और दूसरे विद्रोही विचार—इन्होंने मिलकर उस युग के बंगाली नौजवानो के हृदयो को एकदम मुग्ध कर दिया।

काजी नजरुल अपरिहार्य रूप से विद्रोही कवि थे। उनकी तकनीक भी बहुत कुछ निजी ही थी, यद्यपि जैसा कि अनुमान करना कठिन न होगा, वह रवीन्द्र-नाथ की छाप से मुक्त नही थे। इस बात को वह स्वय भी समझते थे। तभी तो रवीन्द्र के जन्म-दिवस पर उन्होंने कहा था—

'हे रसशेखर कवि, तव जन्मदिने
आमि कोये जावो मोर नव जन्म-कथा
आनन्द सुन्दर तवो मधुर परशे
अग्निगिरि मल्लिकार फूले-फूले
छेये गेछे।'

—हे रसशेखर कवि, तुम्हारे जन्मदिन पर मै अपनी नई जन्म-कथा कह जाऊगा। तुम्हारे आनन्द से सुन्दर मधुर स्पर्श से पहाड़ों की मल्लिका के हर फूल मे ज्वालामुखी छा-सी गई है।

फूलो मे ज्वालामुखी के पैदा होने की कल्पना कितनी सुन्दर है।

काजी नजरुल का विद्रोह अक्सर तो विद्रोह के लिए विद्रोह रूप लिये हुए था। यह भी एक सोपान है। जिस समय जर्जर सड़ी-गली पद्धति के विरुद्ध विद्रोह अनिवार्य हो जाता है, पर विद्रोहियो के मन मे आगामी समाज-पद्धति का नक्शा स्पष्ट नही होता, उस समय विद्रोह को कोई उद्देश्यमूलकता का रग प्राप्त नही होता। उस समय केवल विद्रोह करना और तोड़-फोड़ मचाना, जो पद्धति मौजूद है, उसे जहां से भी हो विध्वस्त करना, अच्छा मालूम होता है। विद्रोह के बाद की अवस्था का स्पष्टीकरण उस समय आवश्यक नहीं ज्ञात होता। उस समय विद्रोह करना ही चरम लक्ष्य बन जाता है।

क़ाजी नजरुल की कविता मे उक्त प्रकार का विद्रोह ही अधिक दृष्टिगोचर होता है। इसमे सोद्देश्यता तथा बुद्धि से बढकर है स्वत:-स्फूर्तता। ओजमय

शब्दो के प्रवाह में वह हमे ऐसे वहा ले जाते है कि उसकी अन्तर्गत वस्तु का अभाव हमें विल्कुल नही खटकता । वस, हम भी सैनिको की पंक्ति मे खडे होकर 'वाये-दायें, वाये-दायें' करते हुए चल पडते है ।

पर नही, अधिकांश मे उनकी कविता निरे विद्रोह के लिए विद्रोह होने पर भी, और इस दृष्टि से अपने युग का प्रतीक होने पर भी काजी के मन मे कुछ स्पष्ट उद्देश्य थे—

महाविद्रोही रणक्लान्त
आमि सेइदिन हवो शान्त
जवे उत्पीडितेर क्रन्दन-रोल आकाशे वातासे ध्वनिवे ना
अत्याचारीर खड्ग-कृपाण भीम रणभूमे रणिवे ना

—'मैं महाविद्रोही रणक्लान्त होकर उसी दिन शान्त हूंगा जिस दिन न तो उत्पीडित की क्रन्दन-ध्वनि आकाश मे गूंजेगी और न अत्याचारी का खड्ग तथा कृपाण भयकर होकर रणभूमि मे दिखाई देगा । मैं विद्रोही रण-क्लान्त होकर उसी दिन शान्त हूगा ।

इस प्रकार यह तो सत्य हो जाता है कि काजी नजरुल के विद्रोह का उद्देश्य अत्याचार का अन्त कर देना था, पर अभी लक्ष्य वहुत दूर था, इस कारण उस पर जोर नही डाला जा रहा था । अभी तो विद्रोह पर ही जोर था । विद्रोह की चडी जग तो जाय, फिर देखा जायगा । विद्रोह के लिए विद्रोह के भ्रम का और भी एक कारण था । वह यह कि जिधर देखो उधर सडी-गली पद्धतियां थी, राजनीति मे गुलामी थी, समाज मे रूढि तथा गतानुगतिकता का वोल-वाला था । स्वयं ईश्वर जो था, वह भी धनियों के इशारे पर नाचनेवाला था ।

उनकी कविता मे भाषागत चमत्कार इतना अधिक है कि कुछ लोगो का यहातक कहना है कि उनसे भावो की गहराई की आशा करना व्यर्थ है । जर्मन के महाकवि गेटे ने वायरन के विषय में कहा था कि जवतक वायरन सोचते नही हैं, तभी तक ठीक है, पर जिस घडी सोचने लगते है, उनका वचकानापन खुल जाता है । श्री बुद्धदेव वसु का कहना है कि यही वात काजी नजरुल पर भी लागू होती है । उनके अनुसार नजरुल तथा वायरन मे और भी समता है । "उन्हीको तरह नजरुल की प्रतिभा ऐश्वर्यशालिनी है, पर उसपर भरोसा नही

किया जा सकता। न मालूम वह कब धोखा दे जाय। उनमे वही लट्ठमारपन है, वही रुक-रुककर चलनेवाला करीब-करीब स्वाभाविक प्रवाह है, बिना परिश्रम की अनायास प्राप्त कारीगरी है, अनायास प्राप्त और लापरवा। सर्वोपरि विचारों की वही शीर्णता है।" पच्चीस साल तक वह प्रतिभा के वरदपुत्र की तरह साहित्य-गगन पर चमके, पर उनमे प्रौढ़ता नही आई। उनकी रचनाओ के क्रम मे विकास का कोई क्रम दृष्टिगोचर नही होता। उन्होने बीस साल की उम्र मे जो लिखा, पैंतीस साल की उम्र मे भी उसमे कोई फर्क नही आया।

उनकी किसी-किसी कविता मे इजरायल, इसराफील, कयामत आदि इस्लामी पुराण के व्यक्तियो, वस्तुओ तथा घटनाओ का उल्लेख है, किन्तु इससे उनकी कविताओ का खस्तापन बढा है, न कि घटा। वह ऐसी उपमा, उपमेयो को लाकर बंगला मे खपा देते हैं कि वह तनिक भी पृथक् ज्ञात नही होते। उनकी सौ मे निन्यानवे कविताओ में कोई ऐसी बात नही है, जिससे यह मालूम हो कि वह मुसलमान कुलोत्पन्न भी हैं। उनकी कविता की जाति साम्प्रदायिक शब्दो मे वर्णनीय नही है। यदि उसकी कोई जाति है तो वह है आधुनिक तथा विद्रोही।

पर काजी नजरुल को केवल विद्रोह का कवि कहना ठीक नही होगा। यद्यपि उन्होने लिखा है—

के बाजावे बांशी ?
कोथा पावो अनिन्दित सुन्दरेर हासि ?
आजो शुधु आगमनी गाहिछे शानाई,
ओ केनो कांदिछे शुधु नाइ, नाइ नाइ।

—कौन बासुरी बजाये ? मैं कहा से अनिन्दित सुन्दर की हँसी लाऊं ? आज भी शहनाई केवल आगमनी ही गा रही है, मानो उसने इसीकी रट लगाई हो कि नही है, नही है।

हम नीचे उनकी 'सिन्धु' नामक कविता का कुछ अंश उद्धृत करते है—

हे क्षुधित बन्धु मोर तृषित जलधि
एतो जल बुके तवो, तबु नाहि तृषार अवधि।
एतो नदी, उपनदी तव पदे करे आत्मदान,
बुभुक्षु, तोबु कि तव भरिलो ना प्राण।

दुरन्त गो महावाहु
ओगो राहु
तीन भाग ग्रसियाछ, एक भाग बाकी,
सुरा नाई—पात्र हाते कांपितेछे ताकी।

—हे मेरे क्षुधित मित्र, तृषित जलधि, तुम्हारे हृदय मे इतना जल है, फिर भी प्यास की कुछ सीमा नही है। इतनी नदिया तथा उप-नदिया तुम्हारे चरणो मे आत्मदान करती है, किन्तु हे बुभुक्षु, फिर भी क्या तुम्हारा दिल न भरा ? हे दुरन्त महावाहु, हे राहु, तुमने तीन भाग तो ग्रस लिया, अब एक ही भाग बाकी है। शराब नही रही, इसलिए हाथ मे पात्र लेकर साकी कापता है।

समुद्र पर बहुतो ने लिखा है, किन्तु निम्नलिखित पक्तियो मे फिर भी कुछ विशेष नई बात है—

मन्थन-मन्दार दिया दस्यु सुरासुर
मथिया लुंठिया गेछे तव रत्नपुर,
हरियाछे उच्चैःश्रवा, तव लक्ष्मी, तव शशीप्रिया
तारा सब आछे आज सुखे स्वर्ग गिया।
करेछे लुन्ठन,
तोमार अमृत-सुधा मार जीवन तो।
सव गेछे आछे शुधु क्रन्दन कल्लोल,
आछे ज्वाला आछे स्मृति व्यथा-उतरोल।
उर्ध्वे शून्य, निम्ने शून्य, शून्य चारिधार
मध्ये कांदे वारिधार, सीमा हीन रिक्त हाहाकार
हे महान हे चिर बिरही
हे सिन्धु, हे वन्धु मोर, हे मोर विद्रोही
सुन्दर आमार,
नमस्कार।

—मन्दार रूपी मथनी से डाकू-सुरासुरो ने तुम्हारे रत्न-पुर को मथकर लूट लिया है, तुम्हारा उच्चैःश्रवा हर लिया, तुम्हारी लक्ष्मी हर ली, तुम्हारी शशि-प्रिया को भी हर लिया। वे सव तो स्वर्ग मे जाकर सुख से हैं। उन्होने तुम्हारी सुधा भी हर ली। सब चला गया, केवल क्रन्दन-कल्लोल ही रह गया। केवल

ज्वाला शेष है तथा व्यथा से उतावली स्मृति मौजूद है। ऊपर शून्य है, नीचे शून्य है, चारों तरफ शून्य है, बीच मे पानी की धारा रिक्त हाहाकार बनकर रोती है। हे महान्, हे चिर विरही समुद्र, हे मेरे मित्र, हे मेरे सुन्दर विद्रोही, तुम्हें नमस्कार है।

काजी नज़रुल की कविता की यह विशेषता मालूम देती है कि उसमे गति भी है, ओज भी है, किन्तु कोई उद्देश्य नहीं। उनकी विद्रोही कविता इसी प्रकार की है। काजी नजरुल विद्रोही जरूर हैं, किन्तु उनके मन में विद्रोह का कोई स्पष्ट उद्देश्य न होने के कारण उनका विद्रोह अक्सर केवल साहित्यिक पंर फटफटाना-मात्र रह जाता है। नजरुल की एक कविता है—'देखवो एवार जगतटाके' याने 'अब दुनिया देखूगा'। इस कविता मे कवि कहते हैं कि वह अब घर मे बन्द नही रहेंगे, वह अब दुनिया देखेंगे, 'कैसे वीर मल्लाह डूबकर समुद्र के अन्दर से मोती ले आता है, कैसे साहसी लोग दूर आकाश की ओर उड़ जाते है, कैसे और किसके नशे मे लाखों की संख्या मे लोग मरते हैं, किसके अभियान मे लोग हिमालय की चूडा में जाना चाहते हैं', इत्यादि कवि जानना चाहते हैं। वह अब पिजरे में बन्द नहीं रहना चाहते, वह इनसब बातो को दुनिया घूमकर देखना चाहते हैं। वह पाताल फाड़कर नीचे उतरना चाहते है तथा फोड़कर आकाश मे उठना चाहते हैं। 'इतना होने पर भी सच बात तो यह है कि यह समझ में नहीं आता कि कवि चाहते क्या हैं', नतीजा यह है कि ऐसी कविता का या तो आध्यात्मिक या छायावादी रहस्यवादी अर्थ लेना पड़ेगा।

हम समझते हैं इस अस्पष्टता के लिए नज़रुल को दोषी ठहराना ठीक नही होगा। सचमुच बात तो यह है कि नजरुल तथा उनके साथी विद्रोह करना चाहते हैं, किन्तु क्या करना चाहते है, यह इन्हे पता नहीं। तोड़ना, फोड़ना, फाड़ना शब्द के अधिक इस्तेमाल से ही कोई क्रान्तिकारी या आधुनिक नही हो सकता।

काजी नज़रुल ने प्रेम और विरह पर भी अनेक गीत लिखे हैं, और उनकी संख्या हजारों तक पहुंचती है। उनका गला अच्छा था और वह संगीत के विशेषज्ञ थे। ग्रामोफोन कम्पनियों ने उनके गीतो से लाखो रुपये कमाये। झुमुर, भाटियाली, बाउल, गज़ल, ठुमरी, ख्याल, ध्रुपद, कीर्तन, श्यामा-संगीत तथा आधुनिक संगीत किसी शैली को भी उन्होंने अछूता नही छोड़ा। 'लीलायित

'चंचल, अचल परशने', 'शून्य ए वुके पाखी भोर फिरे आय' ये दो खयाल की शैली पर गाने तथा दरवारी कनाडा का 'वाजे मृदग वाजे', 'कि मुखे गृह रवो' कीर्तन प्रत्येक व्यक्ति की जवान पर चढ गये। केवल प्रचलित रागो पर ही नही, कई लुप्त सुरो का भी उन्होने पुनरुद्धार किया। कौशिकी सुर मे लिखित 'श्मशान जागिछे श्यामा, अन्तिम सन्ताने कोले दिते स्थान' तथा, शिवरजनी सुर मे 'हे पार्थ-सारथी, सजाओ—वजाओ पाचजन्य शखे' वहुत जनप्रिय हुए।

गीतो के क्षेत्र मे रवीन्द्रनाथ के बाद नजरुल का ही स्थान है। ग्रामोफोन-कम्पनियो के चक्कर मे पडकर उन्होने कई ऐसी चीजे लिखी, जिनका मूल्य सदिग्ध है, फिर भी वह अक्सर एक मानदड के नीचे नही गये। कुछ विशेषज्ञो का यह कहना है कि जहातक गीतो की सख्या का सवध है, वह दुनिया के किसी भी कवि से वाजी मार ले गये हैं। रवीन्द्रनाथ ने दो हजार गीत लिखे, पर नजरुल ने अपेक्षाकृत कम समय मे उनसे कहीं अधिक गीत लिखे। रिकार्ड के गाने मे तो नजरुल सवको वहुत पीछे छोड जाते है।

प्रेम की कविताओं मे नजरुल अपने युग के वातावरण से ऊपर न उठ सके, याने रोमाचवाद में ही रह गये। फिर भी उनका रोमाचवाद उच्चकोटि का है। उनमे कीट्स का चित्ररूप, वायरन का आवेग तो है, पर रवीन्द्रनाथ की गहराई का अभाव है।

रवीन्द्र-काव्य वगला-साहित्य की सवसे वड़ा सम्पदा है, पर काजी नजरुल का महत्व एक दृष्टि से उनसे भी अधिक है। वह यह कि वह सयुक्त वगाल के पुनरुद्धार मे सवसे वडी शक्ति हैं। शुद्ध काव्य-विचार मे भले ही यह वडी वात न समझी जाय, पर जीवन, सस्कृति, इतिहास भी वडी चीजें हैं। नजरुल पूर्व वगाल के राष्ट्रीय कवि हैं।

पाठको को यह जानकर अपार दु.ख होगा कि सयुक्त वंगाल का यह श्रेष्ठतम सास्कृतिक प्रतीक कई वर्षो से मस्तिष्क विकृति का शिकार है। इस मस्तिष्क-विकृति की भी वास्तव मे एक कहानी है। काजी नजरुल ने एक हिन्दू महिला से विवाह किया था। उस समय कुछ लोगो ने इस विवाह की निन्दा की थी। पर काजी नजरुल केवल नाम से ही मुसलमान थे। उनका यह विवाह वहुत सुखी रहा। वाद मे श्रीमती नजरुल को पक्षाघात हो गया। इसपर काजी नजरुल ने सारी चिकित्सा-पद्धतियो को आजमाया। पर अन्त मे कुछ न होता देखकर

गडा-तावीज और फिर तन्त्र-मन्त्र करने लगे। इन्हीके चक्कर मे उनका मस्तिष्क विकृत हो गया। और अब भी विकृत है।

: २२ :

इस युग के कुछ अन्य कवि

राधाचरण चक्रवर्ती

राधाचरण चक्रवर्ती रावीन्द्रीय मडल के एक कवि है, उनकी सभी कविताएं रहस्यवाद का पुट लिये हुए होती है। एक कविता लीजिये—

आकाशेर मेघरन्ध्रे अंधकारे तुमि चेये थाको
तारा होये।
आंखिर पलकहारा होये
तुमि मोरे डाको
आभासे इंगिते शत डाके—
आमि थाकि क्षुद्रतार सीमा नागपाशे
धरणीर एक पाशे
बांधा शत पाके
चारिदिके स्वार्थ-कोलाहल
उच्छृंखल
संग्राम संघात
घात प्रतिघात
तोबु माझे माझे आसे काने
तबो डाक—उदास करिया देय प्राणे।

—आकाश के बादलो के छेद से अधकार मे तुम मेरी ओर नक्षत्र होकर देखते हो, पलक नही मारते। तुम मुझे पुकारते हो, आभास से, इशारे से, सैकडो पुकार से। मैं क्षुद्रता की सीमा नागपाश मे सैकडो बधनो से बंधा हुआ रहता हूं। चारो तरफ स्वार्थ का कोलाहल है, उच्छृंखलता है, संग्राम-संघात है, घात-प्रति-

घात है। फिर भी बीच-बीच मे तुम्हारी पुकार आ ही जाती है, तुम्हारी पुकार प्राणो को उदास कर देती है।

चारिदिके कामना-अप्सरी
खेले लुकोचुरि-खेला करतले मोर दुइ चक्षुचेपे धरि
दृष्टि रोध करि ;
तबु माझे माझे जेनो अंगुलिर फाके
आंखिर किरण तबो आसि मोर लागे
नयनेर आगे
आलोहित रागे

—चारो ओर कामना-अप्सरी मेरी दोनो आखो को बद कर मुझसे लुका-छिपौवल खेलती है। मेरी दृष्टि रुद्ध कर, फिर भी बीच-बीच मे उगलियो के बीच से तुम्हारी आख की किरणे जैसे मुझे आखो के सामने लाल-लाल दिखाई दे जाती हैं।

जावो, जावो, तोबु आमि जावो
हे अनंत बलो बलो आमि तोमा पावो
... ...
हे असीम तोमार माझारे भेसे जावो चुपे चुपे

—जाऊंगा-जाऊगा, फिर भी मैं जाऊगा। हे अनत, तुम कहभर तो दो, तुम मुझे मिलोगे।

सुधाकान्त राय चौधुरी

सुधाकान्त राय चौधुरी कोई बडे कवि नही हैं, किंतु फिर भी उनकी एक कविता 'मुक्तिर खेला' हम पाठको के सामने उपस्थित करते है। इसमे जेल मे रहनेवाले एक कैदी के गहरे भाव चित्रित किये गए है :

रुद्ध मम चित्त नित्य कांदे बंदीशाले
तोबु वातायन-द्वार-पथे नव प्राते
जे आलोक जागे पूर्वदिगन्तेर भाले
आभाखानि तार लागे आसि मोर माथे।

पिंजरे राखिया मोरे संकीर्ण सीमाय,
केनो सुदूरेर पाने दृष्टि मोर टानो,
केनो चित्तपाखि जेथा क्लांति ते झिमाय
अरण्येर विहगेर गीतध्वनि आनो।

इत्यादि

—वन्दीशाला मे मेरा रुद्ध चित्त नित्य रोता है, फिर भी रोज़ सवेरे जगने के रास्ते जो रोशनी पूर्व क्षितिज के ललाट मे जागती है, उसकी आभा आकर मेरे सिर पर लगती है। मुझे सकीर्ण सीमा मे पिंजरे मे रखकर क्यो सुदूर की ओर मेरी दृष्टि को खींचकर तरसाते हो? जहां मेरी मन-चिड़िया थकावट से सोती-सी है, वहां जंगली चिड़ियो की गीत-ध्वनि क्यो लाते हो? मै तो पथरीले दुर्ग में वन्दी हूं, फिर मेरे श्रावण के द्वार मे वार-वार अपने उद्दाम गीत की पुकार से क्यो खटखटाते हो, और इस प्रकार हृदय मे दुरंत दुर्वार मुक्ति का वेग क्यो ला देते हो?

जेल पर वहुत-सी कविताएं लिखी जा चुकी हैं, लेकिन इसमे कैदी के अतर की गहरी वेदना को भाषा दी गई है।

एक और कवि की कविता देकर हम इस दौर को समाप्त करते है।

सुरेन्द्रनाथ मैत्र

सुरेन्द्रनाथ मैत्र की इस कविता का नाम 'वात्सल्य' है। भाषा तथा छद मे वह रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से ओत-प्रोत होते हुए भी इसकी कल्पना मे नवीनता है। हम केवल पहला वद उद्धृत करेंगे, शेष का अनुवाद भर देंगे।

खेला घरे शिशु खेला करे
धूलिर फाटल-मेघे जेनो चांदिमार सुधा झरे
हासि-ज्योत्स्ना भरा मुख तार
सेई आलो सेई हासि जननीर स्नेह नीलिमार
अतल जलधि-वक्षे आलोकेर शुभ्र आलिपना
आंकिछे कत ना
उच्छल तरंग शिरे शिरे
आनंदेर सुमंद समीरे

—खेल के घर मे बच्चा खेलता है, धूल के फटे हुए बादल मे जैसे चन्द्रमा की सुधा टपक रही है। उसके चेहरे पर हँसी की ज्योत्स्ना है। यह रोशनी, यह ज्योत्स्ना जननी के स्नेह-नील अतल जलधि के समान वक्षस्थल मे कितनी ही तरह की शुभ्र-आल्पना की सृष्टि करती है—उसकी चंचल तरगो के ऊपर-ऊपर आनंद की सुमंद हवा मे।

—दूर से कवि अकेला बैठकर इकटक देखता रहता है कि धरणी की धूल पर यह शिशु-शशि कैसा-कैसा खेल खेलता रहता है, और साथ-ही-साथ देखता रहता है कि स्नेह के सागर मे किस प्रकार की लहरे उफनती है। ज्योत्स्नारूपी अमृत मे वह गलकर रह जाता है। जरा-सी वह धूल लिपटी हुई देह समुद्र के भरपूर स्नेह को दीप्त करता है।

: २३ :

आधुनिक कविता

कहापर आधुनिक साहित्य का अन्त होकर अति-आधुनिक युग का प्रारम्भ होता है, यह कहना बड़ा कठिन है। फिर यूरोपीय साहित्य मे जिसे हम आधुनिक कहेगे उसीको बहुत-कुछ हद तक हमे बगला मे कई कारणो से अति-आधुनिक कहकर परिभाषा करनी पड रही है। बगला मे इस प्रकार परिभाषा होने में गडबडी का कारण यह हो रहा है कि रवीन्द्रनाथ की रचना का एक अश तो यूरोपीय अर्थों में भी आधुनिक है, किन्तु बाकी के लिए हम यह बात नही कह सकते, साथ ही उनको हम प्राचीन या अन्य किसी पर्याय मे नही डाल सकते। सुप्रसिद्ध समालोचक अजितकुमार चक्रवर्ती ने ठीक ही लिखा है कि विश्वमानविकता मे रवीन्द्रनाथ बालजाक, ब्रानिंग, ह्यूगो आदि किसी लेखक से उतरकर नही हैं, किन्तु उनकी चरित्रसृष्टि मे न तो वह विचित्रता है, न वास्तविकता, न अभिज्ञता का स्तरपर्याय, न उत्थान-पतन की लहरे, न पापपुण्य का घातप्रतिघात। ये ही विशेषताएं हैं, जिनसे यूरोपीय साहित्य तरंगित, फेनायित तथा विक्षुब्ध हो रहा है। इसलिए कविता, विशेषकर गीतिकविता, मे जहां वस्तु से कोई वास्ता नही, रवीन्द्रनाथ अतुलनीय हैं। इसलिए कहानियो मे

भी जहां घटना से कही बढ़कर महत्वपूर्ण घटना का आन्तरिक सुर होता है, वे अपना सानी नही रखते। रूपक-नाट्य मे भी रवीन्द्रनाथ को इसी कारण सफलता मिली है।

अवश्य इस युग मे मौजूद रहने के कारण आज के जीवन की सैकड़ो समस्याए रवीन्द्रनाथ की अनुभूतिशील वीणा को वार-वार छू गई हैं। जिन कवियों को हमने रवीन्द्रनाथ के वाद गिनाया है वे भी इन विश्वव्यापी समस्याओं के महाप्लावन से नही वच सके, फिर भी उनपर उनका विशेष प्रभाव पड़ा, यह कहने के लिए कोई कारण नही। वात यह है कि "वंगला साहित्य मे अवतक मुख्यतः भाववाद का ही वोलवाला रहा। वंकिम की कल्पना में एक वड़े आदर्श का भाव है. रवीन्द्रनाथ की कल्पना मे वस्तु तथा भाव की एक समन्वयचेष्टा है, और जिनको हम भारतीय उपन्यासकारो में सवसे ज्यादा प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी समझते हैं, वे भी विश्लेषण करने पर वस्तुवादी नही पाये जाते, वल्कि उनके उपन्यासो मे वास्तविकता का संवेदनमय इसलिए आत्मतान्त्रिक रूप मिलेगा।" मोहितलाल ने इसके वाद लिखा, "वंकिमचन्द्र की कल्पना मे वास्तविकता एक वाधा के रूप नही थी, उनकी कल्पना थी सम्पूर्ण निरकुश और वेरोकटोक,[1] रवीन्द्रनाथ की कल्पना में वास्तविकता रूपान्तरित हो गई है, मानो वास्तविकता की वास्तविकता ही लुप्त हो गई है। शरत्चन्द्र की कल्पना-वास्तविकता की समस्या जटिल हो चुकी है, वास्तविकता के लिए एक प्रवल आवेग की सृष्टि हुई है। इस त्रिधारा से शायद वंगला-साहित्य का वस्तुवाद खतम हो गया। इसके आगे जो साहित्य होगा, उसमे वास्तविकता के साथ वास्तविक रूप से निपटना पड़ेगा।"

आधुनिक शब्द एक तुलनात्मक शब्द है। जो चीज कल आधुनिक थी, आज उसका प्राचीन कहलाना स्वाभाविक है। इसमे विना वात तर्क करने अथवा झगड़ने की जरूरत नही। सच वात तो यह है कि इसमे हमें खुशी ही मनानी चाहिए। "कभी उन्नीसवी सदी भी तो आधुनिक थी, किन्तु वीसवी सदी में उसकी यह आधुनिकता मान्य कैसे हो सकती है? फलस्वरूप जो भी प्राचीन संस्कार युग-धर्म के पैरों मे वेड़ी डालकर उसकी गति को कुंठित करता है, उसे कुसंस्कार

[1] आधुनिक वंगला साहित्य, पृ० २७०

आख्या दी जा सकती है, और गति के पथ को रुद्ध करने के कारण वह निन्दनीय तथा वर्जनीय है। हमारे मन की पृष्ठभूमि मे विभिन्न भवरो के जरिये से युग-युग तक जो कुसंस्कार पुजीभूत हुए है उनके प्रभाव से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। सीमित संस्कारो मे ढके हुए कुहरे मे साहित्यदेव का जो विकृत रूप हमारी आखो के सामने आता है उसीकी पूजा मे हम तन्मय हो जाते है, इस प्रकार हम अपनी मोहतन्द्रा पर शान्त-समाहित अवस्था समझने का भ्रम कर डालते है।"[1]

आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य मे उसके ध्येय, आधेय तथा रूप मे परिवर्तन होना अनिवार्य है। फिर भी इस अनिवार्य भवितव्यता को कभी के क्रान्तिकारी और उस समय के बड़े-बूढो ने रोकना चाहा है, फलस्वरूप एक संघर्ष, तूफान तथा बातो की मारकाट शुरू हो गई है। यह एक अजीब बात है कि जिस क्रान्तिकारिता या विचार-स्वातंत्र्य की बदौलत वे साहित्य मे एक नये युग के प्रवर्तक हुए, उसीका अवलम्बन कर जब दूसरे उनसे भी आगे जाना चाहते है तो वे विधि-निषेधो की एक चीन की दीवार खडी कर उन्हे रोकते है, और जब इसपर भी ये नये मत-वाले नही मानते तो उन्हे तरह-तरह से गालिया दी जाती है। "यहां तक कि लेख के चरित्र को छोडकर लेखक के चरित्र पर हमले किये जाते हैं।" एक नवीन पथी बंगाली समालोचक ने लिखा है—

"राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ये भी एक जमाने मे अर्वाचीन समझे जाते थे। आधुनिकता के अपराध मे उस जमाने में उनकी प्रचुर निन्दा होती थी, उनको बहुत-से सामाजिक निर्यातन सहने पड़े। बंकिमचन्द्र, माईकेल, नवीनचन्द्र आदि को सामाजिक निर्यातन का सामना करना पडा था, किन्तु निर्यातित होने का दुःख एक है और प्राचीन होने का दुःख दूसरा है। अभी हाल मे रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध मे एक ऐसी ही शोकप्रद घटना हुई है। जो नारा दिया जा रहा है, वह गलत है। रविबाबू का इस बात पर दुखी होना स्वाभाविक है कि अब उनका नाम लोग नवीनो की वही से काटे दे रहे हैं। उनके दुःख को हम समझते है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के चेलो द्वारा किये गए पुनर्जन्म के उत्सव हम नही समझते। रविबाबू ने नवीन का विजयगान किया है, उसके

[1] प्रेमेन्द्र विश्वास—आधुनिक बांग्ला गल्प

लिए उनको गालिया भी यथेष्ट दी गई, किन्तु आज यदि उन्हीको प्राचीनता के शिविर मे ढकेल दिया जाय तभी तो हम यह कह सकते हैं कि नवीनता की पुकार सत्य है। बड़े भारी आधुनिक तथा विद्रोही शरतचन्द्र प्राचीन की श्रेणी में जाकर मरे, यह तो उनके विप्रदास की परिणति से ही स्पष्ट है। फिर भी इसमें रोने-धोने की बात क्या है, यह हमारी समझ मे नही आती। यदि प्राचीन ही सब जगह पर अपना अधिकार रक्खे तो नूतन को जगह कहां मिलेगी ? फिर तो हमे सबसे पहले जीव-विज्ञान को झूठा करार देना पडेगा। यदि पिता ही चिर-काल तक मौजूद रहे तो सन्तान की जरूरत क्या है ? फिर यदि पुत्र हुबहू पिता की ही तरह नही हुआ तो इसपर हम विलाप क्यो करे। फिर मनुष्या-वतार को क्यों, मीनावतार को ही पानी चढाने से काम चल जाता।"

अति-आधुनिक साहित्य पर तरह-तरह के आक्षेप किये गए है। कहा जाता है कि अति-आधुनिक साहित्य छाग-साहित्य है, प्राचीन साहित्य रामायण है तो यह कामायण है। अति-आधुनिक कविता को कामोद्दीपक तथा शरीर की पूजा करनेवाली वासन-कलुषित भी कहा गया है। मै समझता हूं यह बिल्कुल झूठा तथा बेबुनियाद लाछन है। बाइबल, रामायण, महाभारत से आज की कविता अधिक अश्लील है, यह कहना गलत है। बगला मे कृत्तिवास की जो रामायण या काशीरामदास का महाभारत है, उन्हे कोई भी अतिनीतिमान अपने लड़के को नही दे सकता। सच बात तो यह है कि आज की अश्लीलता कम है। रहा यह कि अति-आधुनिक साहित्य मे शरीर को उसका उचित स्थान दिया गया है। हां, कही-कही कुछ अति भी हुई है, यह हम मानते है, और यह स्वाभाविक ही है। आधु-निकतम मनोविश्लेषण शरीर और मन की एकमेवाद्वितीयता की ही दलील को पुष्ट करता है। ऐसी हालत मे शरीर पर से आंख हटाकर कल्पना की धूमिल रगीन धरा पर विचरण करना कभी वाछनीय नही हो सकता। अवश्य ही दुर्नीति का प्रचार करना अति-आधुनिक साहित्य का लक्ष्य नही हो सकता और न है। हा, जिन बातो को अबतक हमारे समाज के नीतिवान साहित्यिको ने केवल अस्वीकार करके ही उडा देना चाहा था, किन्तु फिर भी जो थी, और जिनका नतीजा बराबर हमारे सामने आता रहता था, उनको अति-आधुनिक साहित्य ने सबके सामने लाकर रख दिया है। यही हमारे बुजुर्गो के निकट दुर्नीति है। अति-आधुनिक साहित्य को कुछ बगाली समालोचको ने बाथरूम

साहित्य याने 'गुसलखाना साहित्य' कहा है। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि अति-आधुनिक अपने गुसलखाने को हमारे प्राचीनों के रसोईखाने से अधिक साफ-सुथरा रखते हैं, इसलिए यह कोई विशेष गाली नहीं है।

वास्तव मे बात तो यह है कि ये सब बाते इसलिए उड़ाई जाती है कि प्राचीन अपनी गद्दी पर कायम रह सके, इसी कारण यह विरुद्ध प्रचार है।

प्राचीनो की तरफ से वकालत करते हुए कवि रवीन्द्र कहते हैं—"विधाता की सृष्टि में जो पुनरुक्ति है, वही चिरसत्य है। प्राचीन को लेकर ही विधाता चिरकाल से इस पृथ्वी मे इन्द्रजाल की रचना करते आये हैं, इसपर यदि उन्हे लज्जा न हो तो..."

बीच ही मे बात काटकर नवीन कहता है—"विधाता को भले ही लज्जा न हो, किन्तु मनुष्य को लज्जा है। मनुष्य का साहित्य, शिल्पकला, भास्कर्य, हमेशा नया ही रूप लेता रहा है। प्रागैतिहासिक युग में एक चमेली जैसे फूलती थी आज भी वैसे ही फूलती है, परन्तु फिर भी विधाता की कला मे बट्टा नही लगता, किन्तु उस युग का मनुष्य जैसी तस्वीरे खीचता था आज भी यदि वह वैसी ही खीचे तो आज उसके लिए लज्जा की कोई सीमा न रहे, प्रतिदिन नई सृष्टि करने मे ही उसकी कला की सार्थकता है।"

हमारे बुजुर्ग जब सभी बातो मे हार जाते है तो वे कहते है, आखिर यह तुम्हारा अति-आधुनिक साहित्य आया कहा से, आखिर तुम्हारे बाप तो हम ही है। इसमें कोई सन्देह नही कि ऋण है, किन्तु ऋण कितना? फिर यदि अब के साहित्यिक उन्नीसवी शताब्दी के साहित्य के ऋणी है तो क्या वे किसी और के ऋणी नही हैं। कविवर कहते है, वाल्मीकि आये थे तभी उनका आना सभव हुआ, नवीन यहापर तड से पूछ बैठता है वाल्मीकि का आना किसकी बादौलत सभव हुआ? फिर नवीन स्वय ही कहता है, "बच्चा मां से चलना सीखता है, किन्तु चलता है वह अपने ही जोर से। जिस रहस्य की खान से आदिम कवि ने प्रेरणा पाई थी उसीसे अति-आधुनिक प्रतिभाशाली कवि भी प्रेरणा पाता है। हम अतीत काल के गर्भ से आये है, इसे हम अस्वीकार नही करते, किन्तु मा के गर्भ से बेटा निकला है, केवल इसी तत्व पर यदि मा बेटे को हमेशा चलाना चाहे तो वह एक विभ्राट का रूप धारण करे। भूतकाल मनुष्य की अवचेतना मे रहे तो ठीक है, यही उसका यथार्थ स्थान है, किन्तु इसके बजाय कि पर्दे के

पीछे से चुपचाप अपना भी प्रभाव डाले, वह हमारी सारी चेतना को आच्छन्न कर ले, यह एक भयंकर बात ही नहीं, दैवदुर्विपाक होगा। यदि रवीन्द्रनाथ को समझने के लिए ईश्वर गुप्त, और ईश्वर गुप्त को समझने के लिए काशीराम दास को और काशीराम दास समझने के लिए अशोक की शिलालिपि पढ़नी पड़े तो बस हो चुका।"[1]

साहित्य मे तथा सर्वत्र इस बात के लिए अधिकतर मारकाट हुई कि गद्दीदारों ने हमेशा मकानों की छतों से यह दावा किया कि आखिरी पैगम्बर वे ही है, उन्होंने जिस सत्य को पा लिया, वही सत्य का चरम तथा परम विकास है। यही तो गलती है। यदि उनके समय मे विकास होता था तो क्या वजह है कि उसके बाद विकास न होगा। इस दावे के कारण ही नवीन और प्राचीन में बराबर साहित्य में तुमुल संग्राम हुआ है। शायद यह नवीन और प्राचीन, गद्दीदार और गद्दी के अधिकारी का संग्राम ही चिरन्तन सत्य है।

हम कई बार लिख चुके हैं कि बंकिम कहिये, माइकेल कहिये, द्विजेन्द्रलाल कहिये, रवीन्द्र कहिये, इनमें से सभी मध्यवित्त श्रेणी के साहित्य के रचयिता थे। उन्हीकी भावुकताएं, आदर्श तथा वास्तविकता उनका उपजीव्य था। एक नवीन साहित्यिक की भाषा मे सुनिये,- "साहित्य अबतक धनी तथा विलासियो की जयगाथा से परिपूर्ण था। राजा-नवाबो की प्रशस्ति तथा कहानी से ही उसका काम चलता था, यद्यपि आज जनता का भी वहां स्थान होने लगा है, किन्तु इतने ही से हम सन्तुष्ट नहीं हो सकते, हमे इनमे भी नीचे उतरकर उसे जहां अपमान और अत्याचार हो रहा है, उन सर्वहाराओ में ले जाना पड़ेगा। आज दुनिया के कारखाने और जमीनो के मालिक एक तरफ हैं, वे हैं पूंजीपति और ताल्लुकेदार, दूसरी तरफ है किसान और मजदूर, ये सर्वहारा हैं। यह वर्ग-संघर्ष आज बहुत ही स्पष्ट है और नजदीकी चीज है। कुछ नही यदि गहराई से अध्ययन किया जाय तो ये ही राष्ट्र, ये ही जाति हैं। साहित्य का काम अब यह होगा कि वह इन किसान-मजदूरो की सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना को जगावे। वही साहित्य वास्तव मे राष्ट्रीय साहित्य होगा।" नवीन युग के नवीन समालोचक फिर कहते हैं—"यह जो साहित्य है, इसमें संभव है, त्रुटियां हों, रहे। युग-युगान्तर

---

[1] यह नवीन श्री जैनेन्द्र विस्वास है।

के बन्धन को एक दिन मे तोडने चले है, कुछ तो टूटेगा। सीमित सस्कारो के संकीर्ण दायरे मे शान्ति भी है, शृंखला भी, किन्तु वहा जीवन की वह चचलता कहा और मुक्ति का आनन्द कहा?"

इसमे सन्देह नही वह नई चीज है। एक जमाने मे अर्थात् बीस-पच्चीस वर्ष पहले रवीन्द्रनाथ को अधिक-से-अधिक अपनाना ही बंगला लेखको तथा कवियो कि का आदर्श था, किन्तु अब उनसे अधिक-से-अधिक अलग हटना ही मानो बहुतो का आदर्श हो रहा है। इस प्रयास मे कुछ लोगो ने अति कर दी है। नतीजा यह है कि वे जिस बात से बचना चाहते थे वे उसीके शिकार हो गये है। वे कृत्रिम हो गये तथा अवास्तविक भी हो गये। फिर भी यह एक नवीनता है। बगला का अति-आधुनिक गद्य तथा पद्य साहित्य धीरे-धीरे जनता का साहित्य शायद बने, किन्तु अभी वह जनता का साहित्य नही है। ठीक-ठीक कहा जाय तो साहित्य अभी धनी, विलासी मध्यवित्त श्रेणी से उतरकर अब निम्नमध्यवित्त श्रेणी मे उतरा है।

प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव वसु, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त, यह तीन अति-आधुनिक साहित्य के त्रयी विशेषत. शहर की निम्नमध्य वित्त श्रेणी की ग्लानि, दुख गरीबी के ही चित्रकार हैं। हां, शैलजानन्द मुखोपाध्याय ने कोयले की खानो के कुलियो को लेकर कुछ अत्यन्त शक्तिशाली साहित्य की रचना की है, किन्तु बस। फिर भी ये अति-आधुनिक लेखक जब कुलियो को लेकर भी साहित्य रचना करते हैं तो उनको एक-एक व्यक्ति के रूप मे देखते है, उनकी सामूहिक समस्याओ पर वे कम रोशनी डालते है। याद रहे कि बजाय दुर्गेशनन्दिनी के यदि हम कुलीकुमारी को लेकर गल्प, कविता लिखे तो वह अनिवार्य रूप से जनता का साहित्य नही होगा, हम यदि प्रेमिका के द्वारा प्रेमी को बजाय चाकलेट के बक्स या फान्टेन पैन उपहार रूप मे दिलवाने के तेल की जलेबी या भब्बेदार नाडा दिलवाये तो उससे साहित्य में एक नवीनता जरूर आ जाती है, इसका हम स्वागत करते हैं, किन्तु केवल इन्ही बातो से यह साहित्य जनता का साहित्य पदवाच्य नही हो सकता। जनता का साहित्य वह है जो जनगण की आशा, आकाक्षा, भय, त्रास, हर्ष, आनन्द को रूप दे। दु.ख की बात है कि अभी ऐसा साहित्य कम है। इस बात के लिए दोष हमारे लेखको का है। वे ऐसी श्रेणी के है कि वे इन बातो को समझ नही पाते, जनता की आत्मा तक उनकी पैठ नही

है। रवीन्द्रनाथ ने 'चार अध्याय' नामक पुस्तक में राष्ट्रीय चेतना को चोट पहुंचाकर अपनेको पुलिसमैन की श्रेणी में ला दिया है, यह एक नवीन समालोचक ने लिखा है।

बंगला के अति-आधुनिक साहित्य मे प्रतिभा का अभाव नही है, किंतु जनता के साहित्य की सृष्टि के लिए जिस साहस की जरूरत है वह शायद आज के लेखको मे प्रचुरता से मौजूद नही है। इस साहस के अभाव का एक बाह्य कारण भी है, वह यह कि सरकार के प्रहार से ये डरते रहे। मै यह नही कहता कि आज का उपन्यास या कविता केवल राजनीति की चेरी हो जाय, किन्तु यह जरूर है कि आज की जनता के सामूहिक जीवन मे राजनीति को एक विशेष महत्व प्राप्त है। यह बात साहित्य मे झलक जानी चाहिए। यदि ऐसा न हो सका तो कहना पडेगा कि साहित्य चाहे कितना भी समृद्ध हो, वह वास्तविकता से परे एक कल्पना-विलास मात्र है। राष्ट्रीयता की तरह श्रेणी-सघर्ष भी एक वास्तविकता है। मजदूर-किसानवर्ग अपनी युग-युग की उदासीनता छोड़कर जिस तरह अपने शोषको के विरुद्ध विद्रोह मे उठ खडे हो रहे है, वह आज एक वास्तविकता है। नये युग के लेखक को इस सघर्ष को भी प्रतिबिम्बित करना पडेगा। राम, श्याम, यदु, मधु की प्रेमलीला से यह कही बढ़कर वास्तविकता है, बल्कि ठीक कहा जाय तो यह वास्तविकताओ में वास्तविक है। एक वस्तु-वादी लेखक भला इनसे मुह कैसे मोड़ सकता है!

हमने ऊपर जो कुछ कहा वह तो साधारण रूप से साहित्य के विषय मे कहा, किन्तु हमारा सम्बन्ध विशेष रूप से कविता से है। हम पहले देखे कि यूरोप मे आधुनिक साहित्य ने अपने सामने क्या काम रक्खे है, श्री अजितकुमार चक्रवर्ती ने इनको यो गिनाया है—

१. सामाजिक न्याय-समाज के अन्तर्गत प्रच्छन्न या प्रकट अन्याय तथाकथित उच्चश्रेणी के सर्वेसर्वापन तथा उत्पीडन के प्रति विद्रोह। विक्टर ह्यूगो ने अपने 'ला मिजराबल' (Les miserables) नामक प्रसिद्ध उपन्यास मे इस पर्याय का सूत्रपात किया है। टालस्टाय की कहानियो मे भी इसको हम कहीं-कही प्रत्यक्ष करते है किन्तु इब्सन के नाटको मे ही आकर हम इसको असली रूप मे पाते है। उदाहरण स्वरूप 'समाज के स्तभ' (Pillars of Society) लिया जाय, इसने कान्सल बनिक अपने पापो का बोझ दूसरो पर कितनी ही चालाकी तथा फरेबो के द्वारा

लादने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा। आधुनिक समाज के स्तम्भो की नीव इसी प्रकार दुर्वल है। वर्नार्ड शा तथा गाल्सवर्दी इव्सनवादी हैं।

२. समाज-विज्ञान, जीव-विज्ञान आदि के नये-नये आविष्कार कला के वाहन बनाकर दिखलाये गए हैं। जैसे एक वात लीजिये वशानुक्रम। इसको अवलम्बन कर इव्सन का 'प्रेत' (Ghost) हौप्टमैन का 'अग्निकाड', (Conflagration) पिनेरो का 'शाहखर्च', (Profligate) आस्कार वाइल्ड का लेडी विन्डरेमेयर के भक्त (Lady Windermere's fan) लिखा गया है।

३. पाप का विश्लेषण—अस्वाभाविक, अस्वस्थ तथा प्रतिसामाजिक अपराधो का विश्लेपण। इस श्रेणी मे जोला आते है, इनसे भी वढकर है डास्टयएफस्कि का 'अपराध और सजा' (Crime and Punishment) और 'मूर्ख' (The idiot) उपन्यास, स्ट्रीन्डवर्ग का 'पिता' (Father), 'मृत्यु का तांडव' (Dance of death), हौप्टमैन का 'साथी क्रैम्पटन' (Colleague Krampton), 'समझौता' (Reconciliation) वर्नार्ड शॉ का 'श्रीमती वारेन का पेशा' (Mrs Warren's Profession) और क्रियो का अर्द्धदेवता (Demi God), 'वस्तुए' (Goods), 'मातृत्व' (Maternity) आदि।

४. श्रेणी-संघर्ष—गाल्सवर्दी, हौप्टमैन, वर्नार्ड शा आदि मे इसका प्रमाण मिलेगा। गाल्सवर्दी के 'सघर्ष' (Strife) नाटक मे अध्यक्ष जॉन एंथनी और मजदूरो के नेता रावर्ट्स का विरोध दिखलाया गया है। पूजीपति एंथनी समझता है कि पूंजीवाद की ही वदौलत समाज उन्नति कर रहा है, इसलिए मजदूरो की माग मे उसे कुछ सत्य नही दिखाई पड़ता। हौप्टमैन का 'जुलाहे' (Weavers) इसी श्रेणी का नाटक है। वर्नार्ड शॉ का 'विधुर के घर' (Widower's houses) इसी श्रेणी मे आता है।

५. परिवार तथा पारिवारिक सम्बन्धो का विश्लेपण-इस श्रेणी में इव्सन का 'लिटिल इयोल्फ' (Little Eyolf) स्ट्रीन्डवर्ग का 'पिता' (Father) तथा 'जोडनेवाली कडी' (The Connecting link), हौप्टमैन का 'चूहे' (The rats) आदि है।

६. स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्वन्ध का विचार। इसमे—

(क) मिथुन-प्रेरणा की लीला—इसमे स्ट्रीन्डवर्ग का 'काउन्टैस जूली' (Countess Julie). चैकोफ का 'चचा वान्या' (Uncle Vanya)

बर्नार्ड शा का 'फिलैण्डर्स' (Philanders) आता है।

(ख) विवाह-सम्बन्धी समस्या—इसमे इब्सन की 'सागर की नारी', (Lady of the sea) 'गुड़िया-घर' (Doll's house), टाल्स्टाय का 'क्रूजर सोनेटा' (Kreutzer Sonata), गाल्सवर्दी का 'भगोड़ा' (The Fugitive), शॉ की 'परिणय' Getting Married इत्यादि।

(ग) स्त्रियो की आर्थिक तथा सामाजिक स्वाधीनता का प्रश्न—उदाहरणत. इब्सन का 'गुडिया-घर' (Doll's House) ब्रिओ का 'स्वावलम्बी नारी' (The woman on her own) आदि हैं।

स्पष्ट है कि ऊपर साहित्य के जो क्षेत्र अजितबाबू ने गिनाये है वे मुख्यतः गद्य-साहित्य के बारे मे लागू हो सकते है, किन्तु इससे कविता के क्षेत्र का भी अनुमान किया जा सकता है। एक बात इस सम्बन्ध मे याद रखने योग्य है कि आज की कविता कहां खतम होती है, यह कहना मुश्किल है ; क्योकि गद्य और पद्य का जो भेद पहले मान्य था वह अब विलीन-सा हो रहा है। आज की कविता मे अक्सर छन्द (याने जिसे किसी नियम में लाया जा सकता है) नहीं रहता। हिन्दी मे लोगो ने इसको रबड़ छन्द कहा है। एक बात सिर्फ इसमें देखते है कि यह कुछ सीढी की तरह लिखा जाता हे। कोई-कोई नवीन कवि ऐसे पहुचे हुए है कि उनका कोई मतलब समझ मे नही आता, शायद लेखक स्वयं आकर समझाये तो समझ मे आये।

आधुनिकतम कविता किसी वाद के विवाद मे पडी नही रह सकती, समग्र जीवन ही उसका क्षेत्र है। अंग्रेजी मे 'रूपर्ट ब्रूक' (Rupert Brooke) एक कवि हो गये हैं। उन्होंने युद्ध ही पर लिखा है। किप्लिग एक तरह से साम्राज्यवाद के कवि थे। इसी प्रकार मैं समझता हूं, जो भी लहर देश मे उठे, उसका एक-एक कवि होना चाहिए। अवश्य ऐसे भी कवि होगे, जो इन सबके केन्द्र-बिन्दु को लेकर कविता लिखेगे।

हमने इस दौर मे अबतक केवल एक निबन्ध के रूप मे साधारण तौर पर इसलिए लिखा है कि अभी बंगला में अति-आधुनिक साहित्य का रूप स्पष्ट नही हुआ, शायद यह तबतक स्पष्ट न हो जबतक कि उसमे कोई रवीन्द्रनाथ या शरच्चन्द्र पैदा न हो। फिर भी एक बात इस साहित्य मे सर्वत्र स्पष्ट है कि अब कवि तथा लेखक रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त होना चाहते हैं। पाश्चात्य-

साहित्य मे इस समय रूसी-साहित्य का वंगला के लेखक वहुत अध्ययन करते हैं। इससे मालूम हो जाता है कि रवीन्द्र-प्रभावमुक्त साहित्य का रुझान किस ओर है। अव हम रवीन्द्र और अति-आधुनिक काल की गोधूलि के समय की वगला कविता के कुछ उदाहरण पाठको के सामने उपस्थित करेंगे।

मोहितलाल मजूमदार

मोहितलाल मजूमदार वगला के अच्छे कवि तथा समालोचक हैं। उनको शायद हम इस दौर मे स्थान न देकर इसके पहले के दौर में ही पेश रखते, क्योंकि रवीन्द्रनाथ से स्वतन्त्र होने की चेष्टा करने पर भी वह उसीके दायरे में रह गए हैं। उन्होने एक कविता 'कालापहाड़' के नाम से लिखी है, वह नि संदेह एक अति-आधुनिक कविता है। इस कविता का यदि हम अग्रेजी में अनुवाद करते तो इसका नाम मूर्तितोड़क देते। पाठकों को मालूम होगा कि कालापहाड़ एक प्रसिद्ध मूर्तिभजक था। कवि ने कालापहाड को एक कट्टर नौमुस्लिम चित्रित न करके एक क्रान्तिकारी तथा कुसंस्कारों के विरुद्ध जिहाद करनेवाला रखते चित्रित किया हैं। कालापहाड़ कवि के निकट वह शक्ति है, जो किसी चीज के अन्दर से पैदा होकर उसकी भलाई के लिए उसपर चोट-पर-चोट करती है।

वंश जाहर वलि जोगाइलो यूपे, युगे-युगे, भयविभल—
जागियाछे तारि वीर सन्तान हुंकारे भरि जलस्थल।

—"जिसने पुश्त-दर-पुश्त युग-युग तक भयविह्वल होकर यूप मे बकरा भेजा, आज उसीकी वीर सन्तान जलस्थल को भरकर जगी है। उसके रास्ते मे पहाड सिर झुकाकर सिजदा करता है, उसके कटाक्ष से सूर्य अस्त हो जाता है, उसके खड्ग में स्थिर विजली है, उसके आने से जो धूल उडती है, वही मानों उसकी ध्वजा है और वह एक वादल की तरह है। लो, वह आ रहा है, दुन्दुभि कडकड़-गड़गड वज रही है। क्या इतने दिनों वाद सुरासुरजयी वह युगावतार—कालापहाड़ उठा ?'

पाषाण पुरीर खिल खुलि जाय, दूर हते सुनि हुं हुकार
पूजावेदीमूले हेमतैजस झंकार करे आशंकार

—"पाषाण पुरी की सिटकनियां दूर से उसकी हुकार सुनकर खुल जाती है, पूजा की वेदी के सोने के वर्तनो से आशका की झंकार निकलती है। विराट मन्दिर के जगी कब्जे स्वयं निकलकर भाग-से जाते हैं, अंधेरे गह्वर मे हाहाकार

छा जाता है और मूर्ति के पत्थर आप-से-आप टुकड़े-टुकडे हो जाते हैं। पुजारी-पंडे झंडे उतारकर आंगन में पटखनी खाकर गिर पड़ते है। सुनो, वह नगाड़ा वजाते हुए आ पहुंचा कालापहाड़।"

वनफूल उर्फ वलाईचांद मुखोपाध्याय

'वनफूल' एकमात्र आधुनिक वंगला लेखक तथा कवि है, जो अपने उपनाम से ही परिचित हैं। ये एक प्रमुख उपन्यासकार, कहानी-लेखक तथा नाटककार भी हैं। इनकी कविताओ का छन्द तथा भाषा सुन्दर होती हैं। मुख्यतः उन्होने हास्यरस की कविताए लिखी हैं। नीचे 'छात्री ओ छात्र' नामक एक कविता दी जाती है।

छात्री ओ छात्र
चिरकालइ हय तारा
निन्दार पात्र
पड़ाशोना व्यापारेते मन नाइ कारु वा
वेशविन्यासे केऊ चकचके चारु वा
आधुनिकमना केह सिनेमार भक्त
खद्दरधारी कारो मतामत शक्त
केऊ भारी भीतु-भीतु, केऊ भारी क्षात्र,
छात्री ओ छात्र।

—"छात्राएं और छात्र हमेशा वेचारे निन्दा के पात्र होते है। पढने-लिखने में किसीका मन नही लगता, कई वन-ठनकर वडी टीमटाम से रहते हैं, कई नये फैशन के है तथा सिनेमा के भक्त है, कोई खद्दरधारी है, उनकी राय वड़ी कठिन है, कोई डरपोक हैं तो कोई क्षात्र है। छात्राएं और छात्र।"

इस कविता का जो कुछ कवित्व है, वह छन्द मे ही होने के कारण अनुवाद देना उचित नही लगा।

सजनीकान्त दास

सजनीकान्त दास एक विख्यात आधुनिक कवि हैं। उन्होने प्रेम के देवता को जैसे सम्वोधन किया, उसमे कुछ पक्तिया ऐसी है कि उन्हे पढ़कर कुछ पाठको को

शायद विचित्र लगे। हम केवल उन्ही पंक्तियो को उनकी विचित्रता के लिए देते है :

> मृत सागरेर चारि पाडे आज आमरा कोरेछि भीड़
> भीड़ करियाछि गाढ़ तिमिरेर तीरे
> कांदितेछि अनाहारे—:
> रुटी नई प्रभु, मोछेर टुकरा नाई।
> तुमि एसो-एसो, ए मृत सागर पाये हेंटे हओ पार,
> भास्वर देहे दांड़ाओ अन्धकारे।
> क्षुधित जनेरे रुटी दाओ, जल दाओ,
> प्रेम दाओ प्रभु, तोमार अमर प्रेम।
> धन्य कोरेछो मानुषे एकदा मानुषेर रूप धरि
> से मानव मरियाछे
> तोमार परशे मृतेरा लोभुक प्राण

—"मरे हुओं के सागर की चारो दिशाओ में आज हम जमा है। हमने गाढ़ अन्धकार के तीर में भीड की है। हम अनाहार से रो रहे है। हे प्रभु, रोटी नही है, मछली का टुकड़ा नही है। तुम आओ, आओ, इस मृत के सागर मे पैदल चलकर पार होकर आओ। अंधेरे मे भास्वर देह से खडे हो जाओ। भूखों को रोटी दो, पानी दो, प्रभु प्रेम दो—अपना अमर प्रेम। एक जमाने मे तुमने मनुष्य का रूप धरकर मनुष्य को धन्य किया था। वे मानव, जिनमे तुम पैदा हुए थे, मर गए है, मरे हुओ को तुम्हारे स्पर्श से जीवन मिले।"

इस कविता का भाव तथा भाषा सब रवीन्द्र-सत्येन्द्र से पृथक् है। स्वप्नलोक की अस्पष्टता इसमें नही है। इसमे है तेजस्वी परुष वास्तविकता। जरा कवि के साहस को देखिये। वह प्रेम के देवता से पुष्पक विमान या गरुड पर न आने को कहकर पैदल आने को कहते हैं। फिर उनसे शिकायत यह नही करते कि आजकल की कालेज-किशोरिया प्रेम नही चाहती, मोटर चाहती है, बल्कि कहते है, रोटी नही है, मछली का टुकडा नही है। वह उनसे प्रेम नही मांगते, बल्कि मांगते है रोटी, पानी, फिर सबसे पीछे प्रेम मागते है। 'मनुष्य केवल रोटी से नहीं जीता' की कैसी नई व्याख्या है।

कहा जा सकता है कि यह कोई कविता नही है। विचार्य है। हमने पहले

ही कहा, एक नई धारा पैदा हो चुकी है, किन्तु जबतक कोई महान् प्रतिभा पैदा नही होती, जो अपनी आत्मा के अन्दर इस नई धारा का परिपाक कर उसको एक कलामय रूप देने मे समर्थ हो, तबतक यही सन्देह होता रहेगा। फिर रवीन्द्रनाथ को भी तो पूर्ण तरीके से समझने मे समय लगा था।

रवीन्द्रनाथ मैत्र

श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र कुछ बडी मार्मिक कहानियो के लेखक के रूप मे प्रसिद्ध हुए थे, किन्तु उनकी कविताओं मे भी हम एक आधुनिक की आत्मा को स्पंदित होते हुए पाते है। वह बडे जोरो से लिखते है :

धरणीर बुके
धूलाय लभेछि जन्म, देवत्वेर नाहि अहमिका
सब अंगे माखि धूलि, आंकि भाले पंक जयटीका।
पथ वाहि चलि गर्व-सुखे
स्वर्गपाने तुलि अश्रु सिक्त समुज्वल मुखे।

"धरणी की छाती पर धूल मे हमारा जन्म हुआ है, देवत्व की अहमन्यता मुझ में नही है। सब अगो मे धूल लिपटा लेते है, ललाट पर कीचड़ का जयटीका लगाते है। हम गर्व तथा सुख से रास्ते मे चलते है, स्वर्ग की ओर हमारा सिर उठा रहता है और मुख अश्रुसिक्त समुज्वल होता है।"

दंभभरे खरदृष्टि हाने
जाहारा वांड़ाये दूरे नाहि चाहि ताहादेर पाने
वांड़ाये माटिर परे स्वरगेर करे अभिनय
तारा—मोर नय, केह नय।

—"जो लोग दूर से खडे-खडे घूरते हैं, हम उनकी ओर नही देखते। जो लोग दूर खड़े हैं, हम उनकी ओर नही देखते। जो मिट्टी पर खडे रहकर स्वर्ग का अभिनय करते है, वे हमारे नही है, नही, वे हमारे कोई नही होते।"

कवि वेदना से ही अपनी अनुप्रेरणा लेते है, वह कहते हैं :

धरणीर जन्मतिथि हते
मानुष भासिया चले दु:खज्वाला वेदनार स्रोते
शंका ओ संशय द्विधा लज्जा भय संघाते फेनिल
... ...

जतो वेदनार हाहा डुबे जाय केह नाही सोने
आमि कान पाति
सुर खुंजि तारे माझे, ताइ दिये गान मोर गांथि

—"धरणी की जन्मतिथि से ही मनुष्य दु:ख-ज्वाला की वेदना के स्रोत मे वह चलता है । वह स्रोत भी कैसा है कि शका, संशय, द्विधा, लज्जा तथा भय के संघात से फेनिल । वेदनाओ के जितने हाहाकार डूब जाते हैं, उन्हे कोई नहीं सुनता, मैं कान खड़े कर उन्हे सुनता हू, उनमे सुर खोजता हू तथा उन्हीसे अपना गान पिरोता हू ।"

कवि मनुष्य को रक्त, मांस, अस्थि तथा भ्रान्ति से बना पाते है । थोड़ा-बहुत इस जीवन मे सुख शायद होता, किन्तु उसके बीच में जाकर मृत्यु को बैठा दिया गया है । मरीचिका के लिए दौड़ जारी है, कवि भी दौड़नेवालो के हाथ-मे-हाथ डालकर दौड़ रहे हैं । कवि ने कभी कोई गान नही सुना, आनन्द कहा है, उसका सन्धान नही पाया है, देवतागण लाखो पहरेदारों के बीच लोहे की दीवारो से घिरे रहकर भंवरहीन मन्दाकिनी के किनारे, चिरश्याम पारिजात के नीचे बैठकर, आनन्द-अमृत का जो दौर चलाते है कवि उसके स्वाद से परिचित नही । युग के बाद युग आता है, किन्तु कवि वही एक भाषा तथा अपूर्ण अतृप्त साध पेश करते हैं । चारो दिशाए प्रवचित पिपासा के हाहाकार से भर उठती हैं । कम्पमान करो से प्याला गिर पडता है, इसपर कवि आर्त्तनाद करते है, पानी समझकर मुट्ठियो से पागल बालू खोदते है । उसीके ताल पर कवि छन्द बनाते है, उसीसे गान बनाते है ।

नि:सदेह यह एक नया जगत है ।

रवीन्द्रनाथ मैत्र से बंगला साहित्य को बडी आशाए थी, किन्तु ३६ साल की उम्र मे ही उनकी मृत्यु हो गई । ऊपर की कविता केवल एक उच्छ्वास भर न थी । उन्होने बराबर अपने जीवन में उन्हींकी सेवा की, जिनको कोई टका सेर नही पूछता और उन्हींके विषय मे लिखा । जिन पिछड़े हुए पतितो की अवरुद्ध वेदना भीतर-ही-भीतर दम घुटकर रह जाती थी, उनकी उस वेदना को भाषा देकर सुलगा देना उनकी लेखनी की विशेषता रही ।

प्रेमेन्द्र मित्र

प्रेमेन्द्र मित्र बंगला के बहुत बड़े प्रतिभाशाली कवि तथा उपन्यासकार है,

उनके सम्बन्ध में एक ज्ञातव्य वात यह है कि काशी मे उनका जन्म (सन् १६०४) हुआ। उन्होने स्वयं ही कहा है :

आमि कवि जतो कामारेर आर कांसारिर आर छुतोरेर
मुटे मजुरेर
आमि कवि जतो इतरेर

—"मै लोहारो ठठेरो का, वढइयो का, कुली तथा मजदूरो कवि हूं, मैं सव इतरो का कवि हूं।"

बुद्धदेव वसु ने प्रेमेन्द्र के सम्बन्ध में जो लिखा है वह ध्यान देने योग्य है। वह लिखते है, "प्रेमेन्द्र की कविता उनकी स्वकीयता के द्वारा उज्ज्वल है। उनकी कविता दुनिया की छोटी-से-छोटी चीज से लेकर मनुष्य के भाग्यविधाता के चरण-प्रान्त तक विस्तृत है। पुराने अखवार, भाडे के मकान से लेकर सीमाहीन आकाश में घूमते हुए ग्रह-उपग्रहो तक उनकी गतिविधि है। उनकी रचना-रीति ओजस्वी है, भाव-प्रगाढता के गतिवेग से वह स्वय ही तीक्ष्ण हो जाती है। मनुष्य की व्यर्थता, हीनता तथा दुर्वलता के सम्वन्ध मे गहरी चेतना ही उनके काव्य का मूल सूत्र है। मनुष्य के घर में उनका देवता जन्म लेता है, किन्तु घटनाओ के संघात से ज्ञात होता है कि देवता कही नही है।"

आज
विकृत क्षुधार फांदे वन्दी मोर भगवान कांदे

—"आज विकृत भूख के जाल में कैदी होकर मेरा भगवान् रोता है।"

आधुनिक गणतान्त्रिक भाव उनकी कविता मे स्पष्ट है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता 'महासागरेर नामहीन कूले' नीचे दी जाती है :

महासागरेर नामहीन कूल
हतभागादेर वन्दरटीते भाई,
जगतेर जतो भाङा जाहाजेर भीड़।
माल वये-वये घाल होलो जारा
आर जाहादेर मास्तुल चौचिर
आर जाहादेर पाल पुड़े गोले
वुकेर आगुने भाई
सव जाहाजेर सेई आश्रय-नीड़

—"महासागर के नामहीन किनारे पर अभागो के वन्दर मे दुनिया के कितने ही टूटे जहाजो की भीड़ है। जो माल ढोते-ढोते टूट गये, जिनकी मस्तूलो के धुर्रे उड गये, जिनके पाल सीने की आग से जल गये, उन सव जहाजों का यह आश्रय-नीड है।

"वडे-वडे अथाह कालेपानियो को मथकर, नमकीन पानी मे डूवते या नहाते, डूवे पहाडो के धक्को' को निगले हुए तथा आधी से झकझोरे हुए जितने लवेजान जहाज वेकार हो चुके हैं तथा जिनके अजर-पजर ढीले हो चुके हैं, उन सव वेकार निष्प्रयोजनीय जहाजो की भीड़ इन अभागो के वन्दर मे है।

"भाई, दुनिया मे वडी कडी चौकीदारी है। यहा सौदागर भी वडा होशियार है। जिसके पतवार अव पानी मे कुछ कर नही पाते, उन्हे चुपचाप हट जाना पडता है। जिसके कमर का जोर घट गया, जिसकी लकड़ी मे घुन लग गया, जिसका कलेजा फट गया या जन्मभर के लिए जो जख्मी हो गया, सौदागर की जेटियो मे वहियो मे ढूढकर जिनका कही स्वामी नही मिलेगा, उन जहाजो को महासागर के इस नामहीन किनारे पर अभागो के वन्दर मे कोई भी पा सकता है। यहां उन्ही सव टूटे जहाजो की भीड है।

"जिनकी रीढ़ टेढी हो गई और रस्से टूट गये, कब्जे और कल विगड गये, जिनका सव ठाठ जाता रहा, झंडा नीचा हो गया, जोड खुल गया, छेदो के मारे जिनमें अव तैरते रहने की सामर्थ्य नही रही, उन सव अभागे असमर्थो तथा निर्वासितो की यहा भीड़ है।"

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय एक ऐसे कवि है जो दो युगों की गोधूलि में रहते हैं। कभी उनका कदम इस युग मे रहता है तो कभी उस युग में। 'आजो जारा मरे नाई' कविता मे वह मृत्यु पर एक अजीवोगरीव दृष्टि डालते है। वह मृत्यु को अनिवार्य पाते है, हर घडी वह जैसे मनुष्य का खून पीने के लिए उद्यत है। ऐसी परिस्थिति मे जो लोग जीते है, कवि उनके ललाट पर अमृत का जय-टीका अंकित कर देते है। यही तो पुरुषार्थ है—

आजो जारा मरे नाई, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाले
समिध संग्रहे व्यस्त, झंझाक्षुब्ध दिक्चक्रवाले

उत्कर्ण होइया आछे प्रत्यासन्न आह्वानेर लागि,
दुर्विषह दिवसेर ग्लानि ढाके अन्ध निशा जागि
विस्फारित नेत्रपाते तारा देखे नव सूर्योदय
तादेरि निर्भीक कंठे विश्व प्राण लभिवे अभय।
आजो जारा मरे नाइ मरिबार सहस्र कारणे,
खुंजिया पेयेछे वाणी धिक्कृत एक जीवन-धारणे
अकरुण वंचनाय अवहेलि गनिछे प्रहर
सहस्र लांछना माझे तुलितेछे हासिर लहर,
मरिया न मरे तारा, अनिवार्य मृत्यु पथगामी
रुधिराक्त चक्रनेमि तादेरि इंगिते जाए थामि'
आजो जारा मरे नाई, मरिवे ना तारा कोने काले
अमृतेर जयटीका चिरांकित ताहादेरि भाले

—"आज भी जो लोग नहीं मरे है, प्रज्वलित मृत्यु-यज्ञशाला मे समिधा संग्रह करने में व्यस्त हैं, आंधियों से क्षुब्ध क्षिति मे आनेवाली पुकार के लिए उत्कर्ण हैं, वे असह्य दिन की ग्लानि अन्धेरी रात जागकर ढकते हैं। फिर भी आंखों को विस्फारित कर वे नया सूर्योदय देखते है, उन्हीके निर्भीक कठ से विश्व को अभय प्राप्त होता है।

"मरने के सहस्र कारणों से भी आज जो नही मरे, इस धिक्कृत जीवन को धारण करने के लिए उन्होने वाणी खोज पाई है। जब अकरुण वंचनाएं आती हैं तो वे धैर्य धारण कर पहर गिनते हैं, सहस्र लाछनाओ मे वे हँसी की लहर पैदा कर देते है, वे मरकर भी नही मरते, उनके इशारे से मृत्युपथगामी रुधिराक्त चक्रनेमि ठहर जायगा। जो आज भी नही मरे वे कभी भी नही मरेंगे, अमृत का जयटीका हमेशा उनके ललाट पर अंकित है।"

इसका सारांश यह है कि आधुनिक कवि मृत्यु की वास्तविकता को समझता है, फिर भी वह आशावादी है।

अचिंत्यकुमार सेनगुप्त

अचिंत्यकुमार बंगला के बहुत शक्तिशाली लेखको मे हैं। वह बंगाल सरकार के न्याय-विभाग मे नौकर रहे, फिर भी वह साहसी लेखको मे समझे जाते हैं।

इनकी शैली तेजस्वी तथा व्यक्तित्व-व्यजक, दृढता की द्योतक तथा अनायास है। उपमा, व्यंजना तथा वर्णन मे वह पूर्णतः स्वतन्त्र है। वह कवि के अतिरिक्त उपन्यासकार तथा कहानी-लेखक हैं। प्रकृति और मानव दोनो से उनका सम्बन्ध है, उनकी कविता मे प्रकृति प्रकृति के लिए इस प्रकार की प्रकृति-पूजा नहीं है, वल्कि मानव और प्रकृति को एक ही चीज के दो पहलू करके दिखलाया गया है। प्रकृति उनके निकट अर्थमयी इस कारण है कि वह मानवीय है। वह कहते है—

आमार परान मुखर कोरेछे सिन्धुर कलरोले
प्रभंजनेर प्रतिपदपाते आमार परान दोले
आमार पराने भाई
कोटी मानवेर अश्रुजलेर जोयार शुनिते पाई
सूर्येर वुके की भूख जागिछे आमार परान जाने
कीटेर पाखार अस्फूटतम वेदना आमारे हाने
आमार पराने भरा
ए पथचारिणी वसुंधरार अकारण घुरे मरा।

इत्यादि

—"मेरी आत्मा समुद्र के कलकल नाद से मुखर है, वायु के प्रति पदक्षेप से मेरा हृदय आन्दोलित होता है। अपनी आत्मा में करोड़ो मनुष्यों के अश्रु की वाढ सुन पाता हूं। सूर्य के हृदय मे कौन-सी भूख है, मेरी आत्मा जानती है, एक कीडे के डैने की अस्फुटतम वेदना मुझे दुखी करती है। मेरी आत्मा मे पथ-चारिणी वसुन्धरा का अकारण घूमना भरा है। वनानी की वीणा मे मेरा व्याकुल प्राण शब्द कर उठता है। घास की सभा मे मेरा प्राण हरा हो जाता है, मेरे प्राण मे प्रत्येक पुष्प का रग-विरगा जादू सिहर उठता है, मेरे ही प्राण को निचोड़ निचोड़कर आकाश नील हो गया है। कहीपर कुछ खाली नही रहा, मेरे प्राणों मे विश्व-वेदना का छत्ता जमा है। दीर्घ श्वास की दरिया उसमें आन्दोलित हो रही है, मरुभूमि की शून्यता, अन्धकार की कातर व्याकुलता, गिरी हुई कली की व्यथा वहां है। मेरे प्राणो में युगान्तर की मृत्यु की निशा मूर्च्छित है।"

सच वात तो यह है कि इस कविता मे कुछ ऐसी वाते है, जो रवीन्द्रनाथ का स्मरण दिलाती हैं।

अन्नदाशंकर राय

अन्नदाशंकर राय का जन्म उडीसा के ढेंकानल राज्य में हुआ। विलायत में आई० सी० एस० पढ़ते समय इन्होंने पहली पुस्तक लिखी। भाषा इनकी विशेष रूप से सुन्दर है। मालूम होता है जैसे एक-एक शब्द के पीछे साधना है। साहित्य मे ये देवत्व का नहीं मनुष्यत्व का नारा वुलन्द करते आये। कवि से ये कहीं वडे कहानीकार तथा उपन्यासकार हैं। इनका एक उपन्यास 'सत्यासत्य' अढाई हज़ार पृष्ठों मे समाप्त हुआ है। एक कविता मे वह कवि को अपनी तस्वीरों की झोली प्रकृति से भर लेने के निमित्त पुकारते हैं—

ओरे कवि तोर छविर पसरा
नरिया लइवि आय
उत्सवमयी साजियाछे धरा
वसन्त नाटिकाय
आज पेये जावि जाहा चाय मन
एतो मिठा लागे भानुर किरण
पाखिदेर सने वने समीरण
एतो शीष दिये जाय

—"अरे कवि आकर अपनी तस्वीरो की झोली भर लो, वसन्त नाटिका में पृथ्वी उत्सवमयी हो रही है। आज जो चाहोगे सो ही मिलेगा, सूर्य की किरणें इतनी मीठी लगती हैं। वन मे चिडियो के साथ पवन सीटी देता जा रहा।... कहीपर एक भी वादल नहीं, सव वादलो ने छुट्टी ले रक्खी है, नावो का इधर-से-उधर जाना वन्द है, इसलिए समुद्र स्थिर है। हमारे इस हरे द्वीप के किनारे पर उसीका पानी आकर छलकता हुआ लगता है, हमारे पैरो में उसका मुट्ठियो फेन लगता है। पेड़ो के पीले चेहरे पर तांवे के रंग का सुनहलापन दौड गया है, विदेशी नामवाले पक्षियो ने उसको चूमने के लिए घेर लिया है।"

प्रकृति में मनुष्य के हृदयावगों के आरोप का जो वर्णन है, वह कहते हैं हमेशा से कवियो की एक विशेपता रही है। हम चाहें तो इसे प्रकृति मे प्राण-

प्रतिष्ठा कह सकते हैं। नये कवि इसमे अपने पहलेवालो से पीछे नही है, किन्तु साथ ही वे इस पृथ्वी को, उसकी मिट्टी तक को, बहुत प्यार करते है। अन्नदाशंकर इसी कविता मे कहते हैं—

ए जे आमादेर सेई आदरिणी
सूर्यवदना सोनार मेदिनी एर
प्रति तिल चिनि चिनि चिनि
प्रतिटी अंगमय।

—"यह तो हमारी वही प्यारी सूर्यमुखी सोने की पृथ्वी है। इसके तिल-तिल तथा अग-अग को जानता हूं। बगला मैं जानता हू और चीनी एक ही तरह से लिखे जाने के कारण कविता मे और विचित्रता आ गई है।

अजितकुमार दत्त

अजितकुमार दत्त ने प्रेम पर सुन्दर सानेट लिखे है। सानेट लिखने के लिए शब्दो की जो मितव्ययिता तथा सारगर्भिता चाहिए, वह अजितकुमार दत्त मे है, फिर भी उनका विषय एक ही होने के कारण वह कोई बड़े कवि न हो सके। प्रेम पर लिखी हुई उनकी कविताएं आधुनिक हैं, इसमे सन्देह नही। एक सानेट मे आधुनिक की तिक्तता के साथ शुरू करते है—

नाहि जानि तथागत बुद्धेर वचन सत्य किना—
पुनराय जन्मलाभ आछे किना अदृष्टे आमार;
चार्वाकेर तिक्त वाणी, 'भस्मीभूत ए देहेर आर
पुनरागमन नाइ', सत्य किना से—कथा जानि ना

—"मालूम नही, तथागत बुद्ध का वचन सत्य है कि नही, मालूम नही फिर से जन्म पाना मेरे अदृष्ट मे है कि नहीं, यह भी नही मालूम कि चार्वाक की कडवी बात 'भस्मीभूत इस देह का पुनरागमन कहा' सच है कि नही। यदि यह जीवन अर्थ, यश या मान के बिना भी कट जाय तो मैं इनके लिए फिर जन्म लेना नही चाहता। मैं नये वस्त्र की तरह देह लेकर मोक्ष की आकांक्षा कर पृथ्वी मे नही आना चाहता।

"मै इस जीवन मे केवल तुम्हारा सुन्दर प्यार चाहता हू, मै तुम्हारा समुद्र की तरह स्नेह चाहता हू। मैं कविता मे उन्ही बातो का सग्रह करना चाहता हूं

जिसको किसीने कभी नही कहा, दूसरे भला तुम्हारी बाते किस प्रकार जानेगे ? इस जीवन मे तो तुम हो, तुम रहो, उसके वाद जव मैं मर जाऊगा तो तुम्हारा प्रेम मेरी कविता मे अमर होकर रहेगा।"

कवि को मौलिक रूप से हम रवीन्द्र-युग के कवियो से पृथक् कर नही सकते, अवश्य उनकी शैली मौलिक रूप से भिन्न है। दर्शन-प्रधान रवीन्द्रयुग से भिन्न इस शैली की क्रान्तिकारिता के कारण हम अजितवावू को अति-आधुनिक समझने के लिए वाध्य है। कवि का विषय अत्यन्त व्यक्तिगत प्रेम है, यह वही विषय है जिसे विद्यापति, चंडीदास, जयदेव ने अपनाया था, किन्तु विषय के प्रति रुख मे नूतनत्व है।

बुद्धदेव वोस

बुद्धदेव वोस इस समय के वंगला लेखको में वहुत शक्तिशाली है। कहानी उपन्यास, कविता, नाटक, समालोचना सभी क्षेत्र मे उन्होने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनका एक उपन्यास 'एरा आर ओरा' अश्लीलता के जुर्म मे जब्त हो चुका है। इस समय ये 'कविता' नामक कविता-विषयक पत्रिका के सम्पादक भी है। इनकी रचना मे इनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय पग-पग पर मिलेगा। यह आश्चर्य की वात है कि बुद्धदेव की पुस्तको का अभी हिन्दी मे अनुवाद नही हुआ। बुद्धदेव की 'शापभ्रष्ट' कविता वहुत लम्बी है, नही तो हम उसे यहांपर देते। हम 'आर किछु नाहि साघ' नामक उनकी कविता देते है। यह एक तरह से कवि की आत्म-कहानी है :

आर किछु नाहि साघ। जानि, मोर तरे नहे जयमाल्य
यशेर मुकुट
विश्वेर कविरा जतो ज्वलिछे नक्षत्र हये रजनीर
श्यामल-अंचले

—"मेरी ओर कुछ साघ नही है। जानता हूं, मेरे लिए न तो जयमाला है, न यश का मुकुट है। विश्व के कवि नक्षत्र होकर रजनी के श्यामल अंचल मे विराजमान है, वहां भी मेरा स्थान नही है। नील आकाश के नीचे मेरी स्तुति का गान नही मुखरित होगा...नर-चित्त के भक्ति-तीर्थ मे मेरा नित्य स्वर्ग नही है। मृत्यु का कड़वा कालकूट मेरा चरम भाग्य है। मैं जानता हूं

इक्कीसवी सदी की कोई सप्तदशी मेरी कविता को चादनी-स्नात जंगले के नीचे नही पढ़ेगी।

"फिर भी आज संगीत की जो लहर हृदय के हिम-सरोवर मे जग रही है वह केवल तुम्हारे लिए है। तुमको जो मैने सब अगो मे, मर्म मे, मन मे, प्राण मे पाया था, तुमको विरह के स्पन्दमान अन्धकार मे तथा मिलन वासर मे पाया था, यही बात मैं आकाश, धरणी, घास को तथा समुद्र के कान मे कहना चाहता हूं। इस परिपूर्णता का बोझ अकेले-अकेले मुझसे ढोया नहीं जाता, इसलिए हजारो मे अपनेको लाखो गानो मे बाटता फिरता हूं।"

पाठक यह देखेगे कि यह कविता अजितकुमार दत्त की कविता से भिन्न नही है। मैंने इस अध्याय के प्रारम्भ में कहा है कि कई कारणो से आधुनिक भारतीय साहित्य अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से खोज नही पाया है। यह जो कहा गया था कि हमारा काम इस जगत की केवल व्याख्या करना नही है, बल्कि उसे बदलना है, इस बात को हमारे यहां के लेखको ने अभी नही समझा है। हमारा साहित्य इसलिए वास्तविकता के पास आने पर भी वास्तविक नही हो पा रहा है। बुद्धदेव बोस मे लेखन-शक्ति है, सूक्ष्म दृष्टि है, भाषा का ऐश्वर्य है, फिर भी वह क़िसी तरह से ख्याली दुनिया मे रह-से जाते है।

बुद्धदेव मे इसी समझ या प्रेरणा का अभाव होने के कारण वह गुमराह होकर अश्लीलता की ओर गये। सौभाग्य से बुद्धदेव उधर से लौटे है, किन्तु अब भी वह राह खोज रहे है। बुद्धदेव की 'ब्याड' (मेढक) नामक एक कविता पाठकों के सामने अनुवाद मे प्रस्तुत की जाती है :

"वर्षा मे ही मेढक की पाचो उगलिया घी मे होती है। पानी बरसना बन्द हुआ ही है, आकाश तो चुप है, किन्तु मेढको का एक साथ लगाया हुआ नारा सुनाई पड रहा है। उन्मुक्त कठ का ऊंचा सुर आदिम उल्लास मे बज रहा है, आज न तो विच्छेद का न भूख का न मृत्यु का ही, भय है। घने बादल घास हो गये, स्वच्छ पानी मैदानो मे जमा है, उद्धत आनन्द-गान से उत्सव का दोपहर कटता है। स्पर्शमय वर्षा आई, नया कीचड़ कितना चिकना है। मेढक मानो स्फीतकंठ स्फीतस्कंध संगीत का शरीरधारी सप्तम है, अहा यह मेघ की हरी-हरी कान्ति कैसी चिकनी है। मेढक की दृष्टि काँच की तरह इकटक ऊपर की ओर लगी है,

अहा जैसे ध्यानमग्न ऋषि की तरह ईश्वर को खोज रहा है। पानी बरसना बन्द हो चुका, दिन खतम हो रहा है, स्तम्भित आकाश मे गम्भीर वन्दना-गान बज रहा है। ऊंची आवाज धीमी हो रही है, दिन की अब आखिरी सांसे चल रही है। अन्धकार शतच्छिद्र एकच्छन्दा तन्द्रा को बुला रहा है। आधी रात मे किवाड़ बन्द कर हम आराम से बिस्तरे पर लेटे है, स्तब्ध पृथ्वी मे केवल एकाकी उत्साही अक्लान्त एक ही सुर सुनाई पड़ रहा है, निगूढ मन्त्र का जैसे आखिरी श्लोक हो, मेढक का उच्चारित क्रोक, क्रोक, क्रोक।"

मेढक के विषय मे इतनी बड़ी कविता और उसे ईश्वरभक्त ऋषि बतलाना, यह एक आधुनिक कवि का ही काम है।

हुमायूं कबीर

हुमायूं कबीर को बंगाल के बाहर लोग मुसलमानो के एक राष्ट्रीयतावादी नेता और बाद को केन्द्रीय शिक्षा-विभाग के एक उच्च अधिकारी और मंत्री के रूप मे जानते है। कोई नही जानता कि वह बंगला के एक बडे कवि है। उन्होने अपनी कुछ कविताओ का अंग्रेजी में अनुवाद कर विलायत मे छपाया है, अच्छी-अच्छी पत्रिकाओ ने उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया है। प्रकृति को वह सुन्दर देखते है, किन्तु जब प्रकृति और मनुष्य के स्वार्थ मे संघर्ष होता है तो मनुष्यों का यह कवि प्रकृति को आडे हाथो लेने मे नही चूकता। बंगाल मे गगा की दो शाखाएं हो गई हैं—एक भगीरथी, दूसरी पद्मा। पद्मा इसके लिए मशहूर है कि अक्सर अपना पथ बदलती है, और जो भी गाव इत्यादि उसके रास्ते मे आ गये, उनकी खैरियत नही। इस प्रकार पद्मा प्रकृति का एक अद्भुत रूप है। कवि ने कई कविताएं इसीपर लिखी है। मालूम होता है, कवि को यह विषय उसी तरह प्यारा है, जैसे दर्दवाला दात जीभ को, इधर-उधर गई और उस दात के पास पहुंच गई। हम इस कविता के कुछ अश नीचे देते हैं—

बहुदिन परे आजि रोगजीर्ण आंखि दुटि मेलि
हेरिलाम तोरे।
श्रावणेर घनघटा एइ पुंज मेघेर आड़ाले
अपूर्व योगिनीवेशे मुक्तकेशे आसिया दांड़ाले
नयनेर आगे मोर। लुब्ध क्षुब्ध ऊर्मिराशि ठेलि
चलेछे गहिया शुधु—आविल सलिलराशि तव

नेचे ओठे मरणेर तांडव नर्तने नव-नव—
चिरमुक्ता—धरा दिबिनाकी कोनो डोरे ?
शैशव-जीवन हते तोरे आमि देखितेछि नदी
पाइनाको शेष।

—"बहुत दिनों बाद रोग-जीर्ण आंखो को खोलकर मैंने आज तुझे देखा। श्रावण की घनघटा इस मेघपुंज की आड़ मे तू एक अपूर्व योगिनी के वेश मे बाल खुली हुई हालत मे मेरे सामने खडी हो गई। क्षुब्ध, रुद्ध लहरो को ढकेलती हुई तू बह चलती है। तेरा आविल जल मरण के नये-नये ताडव-नर्तन मे नाच-नाच उठता है। हे चिरमुक्ता, क्या तू किसी भी डोरी से पकडाई नही देगी ? मैं बचपन से तुझे, हे नदी, देख रहा हूं, फिर भी तेरा अन्त नही पाता।

"कभी तो शरत के प्रातःकाल मे तू पूर्णवारि, शान्त और अचंचल है, कलकल-कलकल तेरा पानी चलता जाता है, कभी वैशाख की सन्ध्या मे यदि बादल गये तो प्रलय—नर्तनछन्द से तुम्हारा प्राण नाच उठता है, तब तुम्हारे सलिल से ध्वंसलीला का गीत निकलता है, उस समय तुम्हारे नयनो मे करुणा का लेश नहीं है।

"बाल रवि की किरणो मे, हे नदी, मैंने तुम्हारी फिर दूसरी ही हँसी देखी है, पूर्णिमा के प्लावन में तुम्हारे किनारे पर कास फूले है, अधीर पवन मे मादक पुष्पो की गध तैरती रहती है। तुम्हारी मुग्ध जलराशि फिर भी दौड़ती है। हृदय मे वनधान्य लेकर तथा दामन को वनपुष्पो से सजाकर सुहाग-लज्जा से पूर्ण एक किनारे से दूसरे किनारे तक मृदु वाणी होकर दौडती हुई जाती हो, जैसे किसीको प्यार करती हुई दूर जा रही हो।...आज फिर मैंने तुम्हारा यह क्या नया रूप देखा, भैरविनि की तरह बनी हुई हो, आकाश मे मेघो की घटा है।...अकस्मात् तेरा स्रोत सूर्य की किरणो से छुरी की तरह चमक उठता है, यह मानो तेरे हिंस्र दन्त तथा होठो पर कुटिल हँसी है, तेरे निठुर नयनो मे हत्या की साध बाघ की हत्या करने की इच्छा की तरह इस शान्त, स्मित आलोक मे स्पष्ट हो जाती है। तू प्रबल है, दुर्वार है, अत्याचारी है, श्यामशोभावाले देश को तोड-फोडकर पृथ्वी मे अपना झक्की पथ बनाती रहती है। तू किसीकी नही सुनती, फिर भी नर क्या करे, रोता है, किन्तु एक-दूसरे को सीने से लगाकर जीता है। बाहर विशाल विश्व अपने कठोर जाल को

रहता है, फिर भी मनुष्य बैठा रहता है, सब सुख तथा दुःखों मे आंखें ऊपर किये हुए।"

ऊपर जो कविता दी गई वह पुरानी है। 'पद्मा' नदी पर उनकी अपेक्षाकृत ताजी एक कविता नीचे दी जाती है :

दूरदेशे तोरे बहुदिन छिनु भुले
पद्मा मोर।
आवार श्राउने तोर कूले-कूले भाङन लेगेछे जोर ?
नेमेछे वर्षा घोर।
चरेर चिह्न धुये मुछे दिये
विपुल सलिल संभार निये
यौवन तोर बोये निये जास काहार दोर ?
के मनोचोर ?
पद्मा मोर।

"मेरी पद्मा, दूर देश मे तुझे बहुत दिनो तक भुलाकर था। फिर श्रावण आने से तेरे किनारे सब टूट रहे हैं, घोर वर्षा उतर आई है। सुखों का चिह्न धो-पोछकर, विपुल सलिल भार लेकर, अपने यौवन को बहाकर किसके दर पर ले जा रही है ? किसने तेरा मन चुराया है, मेरी पद्मा।"

प्रकृति और मानव का संघर्ष इस कविता में अधिक स्पष्ट है—

सबुज मायाय भरेछे दुकूल तवो
पद्मा मोर।
जलेर किनारे एसेछे दुर्वा नव
तोबु दया नाही नाही तोर ?
अतिथि शिशुरे शासास कि करि ?
निठुर प्रहारे उठिछे शिहरी
ठिकरि पड़िछे क्षुरधार स्रोत निरन्तर
देखिते कोमल तबु एतो तोर
हिया कठोर ?

—"हरी माया से तेरे दोनो किनारे भरे हैं, मेरी पद्मा। पानी के किनारे नई दूर्वा आई है और फिर भी तुझे दया नही है ? अतिथि और फिर बच्चे को इस

प्रकार कहीं दुत्कारा जाता है। तेरे निष्ठुर प्रहारो से वह हर घडी सिहर उठती है, तेरे क्षुरधार स्रोत मानो निरन्तर चटक रहे है। देखने मे तू इतनी कोमल है फिर भी तेरा हृदय इतना कठोर है, मेरी पद्मा ?"

कवि फिर पद्मा से पूछता है, "तेरे जीवन का दर्शनशास्त्र भला क्या है ? दुःख के दहन मे तू बार-बार मनुष्य का नकली-असली देखना चाहती है। जीवन की धारा मन्थर हो आती है, सत्य रोज के अभ्यास से याने रोज प्रयोग मे आने के कारण लुप्त हो जाता है, वही तेरी लीला ध्वस के उल्लास मे है। मेरी पद्मा, ध्वस के साथ ही सृष्टि का ताना-बाना है। तेरे किनारे के लोग हमेशा बद्दू ही रह गये, दो दिन के लिए किनारे पर घर बाधते है, फिर न जाने दो दिन बाद कहां चले जाते है ?"

'पद्मा' कविता मे कवि ने नदी को उपलक्ष्य कर मनुष्य-विरुद्ध प्रकृति को ही दिखलाया है। प्रकृति और मनुष्य का जो सघर्ष सृष्टि के आदि से चला आया है, उसीकी एक झलक इस कविता मे है, वही प्रकृति एक समय कितनी सुन्दर और दूसरे समय कितनी निष्ठुर है, यह इस कविता मे दिखलाया गया है, किन्तु साथ ही मनुष्य किस प्रकार जिद्दी है, प्रकृति ने जरा ढील दी कि आगे बढा, जरा तीव्र हो गई कि पीछे हट गया, यह बात पद्मा-किनारे मनुष्य के यायावर होने से दिखलाई गई है।

हुमायू कबीर अच्छे उपन्यासकार भी रह चुके है।

आशु चट्टोपाध्याय

आशु चट्टोपाध्याय की 'यौवन-धर्मी' नामक कविता मे हम इस युग के कवियो की मनोवृत्ति का पता पाते है। वह कहते है—

> आमरा यौवन-धर्मी-एई बिशो शतकेर तरुण तापस
> बांचार साधना कोरि—ठीकमतो बांचा जाके बले—
> रुटिनेर दास नई, बांधा पथे कोभु पथ चलिबोना,
> प्रथा के मानि ना मोरा, यदि सेई प्रथार पांचिले,
> मान्धातार आमलेर से प्रथार कठिन पाथरे
> माथा खुंडे मरे आत्मा असहाय, असह्य क्षुधाय

—"हम यौवन-धर्मी है, हम बीसवी सदी के तरुण तपस्वी हैं, जीने की साधना

करते है, याने ठीक तरह से जीना जिसे कहते है वह जीते है। हम बंधी-बंधाई चर्या के दास नही हैं, लकीर के फकीर हम कभी नही हो सकते। प्रथा को हम कभी नही मानते, भले ही प्रथा-रूपी दीवार के मान्धाता के युग के कठोर पत्थर मे असहाय आत्मा असह्य भूख मे सिर दे मारे।

"हम यौवन-धर्मी है। कौन कहता है कि हम अपने ही हाथ के वनाये हुए कुछ लोहे के यन्त्रों के गुलाम है? हम यन्त्र के प्रभु हैं, हम समूची पृथ्वी के मालिक है। अपनी ही इच्छा से हम सवकुछ तोड़ते तथा वनाते है। जीवन के सभी रास्तो मे हमारी अश्रान्त यात्रा है। जाड़ा, गर्मी, वर्षा में हम मैदान के अट्टहास है।

"हमे खाने को नही मिलता। हँसी आती है। हममें से कितने नही पाते। हम ईश्वर के समकक्ष है, हम भाग्य के नियामक हैं। हमने उत्सुक तगडे हाथों मे इस जीवन की पतवार पकड़ रक्खी है। हमें मालूम है कि हम कहां जा रहे हैं। हर समय हमारे पाल के लिए हवा रहती है, यदि कभी अन्यथा हो तो जानिये कि यह क्षणिक विलास है। हम अपने भाग्य को लेकर वीच-वीच में खेलते है।

"यदि मेरी कोई रात नारी के केश के गुच्छो मे मदिर मोह के स्वप्न मे कैदी हो, तो फिर दिन मे काम के आंगन मे मुझे पसीने से तर हँसी की आड मे पाओगे। यदि किसी दिन मुझे शाल वृक्ष के सिर पर मृदु वायु से हिलते देखो और मुझे नक्षत्र की टिमटिमाती धीमी रोशनी मे चुप वैठे देखो तो मुझे वुलाना मत, मैं उस समय विधाता के साथ वातें करता हूं।"

यह देखने की वात है कि इस कविता में देश की पराधीनता का कोई जिक्र नही है, यद्यपि यौवन-धर्म उन दिनों यदि कोई था तो उसका सवसे पहला कर्तव्य इसी ग्लानि के विरुद्ध संग्राम करना था। आधुनिक कविता यहीपर अति-आधुनिक नही हो पाई, क्या इसकी वजह डर था? कवि लोगो को इसपर सोचना चाहिए।

महीउद्दीन

कवि महीउद्दीन आधुनिक की सवसे वड़ी विशेषता को 'वुभुक्षा' कहकर व्याख्या करते है। उनकी आंखों में रूप-दृष्टि-तृष्णा है और हृदय मे तृप्तिहीन अनन्त वुभुक्षा है। उनकी समस्त इन्द्रिया रोकर दिन-रात कहती है कि वे भूखी हैं, भूखी हैं। वह कहते है—

जड़ेर जड़ता त्यजि जीव आमि जन्म कवे लभिलाम भवे
अनन्त सृष्टिर माझे भूमानन्दे ज्योतिष्केर आलोक आहवे
इत्यादि

—"जड की जडता त्यागकर मैं जीव इस दुनिया मे पैदा हुआ। मैने कहा, मैं जड़ हूं, जग गया हू, सीमाहीन शून्य को व्याप्त कर प्रतिध्वनि बन जगा हू, जगा हूं। निर्विकार निद्रा-जगत् मे मैं न मालूम थका हुआ मुसाफिर कबसे चूर होकर सो रहा था और मैं अपनी उन्मत्त गति का नृत्य-ताल भूल गया था।...मैंने इस विश्व की सराय मे पुकारा—भाई मैं वासना का भिखारी हू, रोशनी चाहता हू। छाया चाहता हू, आनन्द से पुलकित महाप्राण चाहता हू।

"जंगल काटकर मैंने सोने की नगरी बसाई हे। हिमालय की ड्योढी की ओर यात्रा की है, अगाध जलधि के बीच से मोती निकाला है। धन और रत्न से विपुल भंडार भर लिया है। अपने ही परिश्रम से मैंने इस भोग के विशाल ससार की सृष्टि की है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्रो के रहस्य की मैंने ही खोज की है, पाताल मे राज्य फैलाया, काव्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान की सृष्टि की। मैंने वंचित मानव के लिए साम्य, मैत्री, स्वाधीनता के गीत गाये है। मैंने भूख से व्याकुल-पीडित मानव के भूखे जठर के गीत गाये है, मैने निर्यातित निर्वासित के लिए फासी का फन्दा गले मे डालकर गीत गाये है।" इत्यादि।

अरुणकुमार मित्र

तरुण कवि अरुणकुमार ने 'लाल पर्चा' शीर्षक एक कविता लिखी है—

प्राचीर पत्रे पड़ोनि पड़ोनि इस्ताहार
लाल अक्षरे आगुनेर हलकाय
झलसाबे काल जानो ?
इत्यादि

—"क्यो जी तुमने दीवार पर चिपका हुआ लाल-पर्चा नही पढ़ा ? उसके लाल अक्षर आग की तरह रग लायेगे। (आकाश मे विरोध का उत्ताप घनीभूत होता है। पुरानी बातो की धार मुथरी हो गई है) युगान्त उत्कर्ण है। पढो जी, जरा लाल पर्चे को तो पढो।

"भीड़ मे भिड़कर खोजो तो सही, फौज तैयार है, हथियार से लैस। कड़ी

मुट्ठियों से जबर्दस्ती स्वर्ग छीन लेना है। क्या देवता भी इसे रोक सकते है ?"

यह कविता बहुत लम्बी है, इसको हम यही समाप्त करते है।

फुटकर कवियों की कविता

आगे हम कवि को विशेप महत्व न देकर यह दिखायेगे कि कैसे-कैसे विषय पर अमूल्य चट्टोपाध्याय नामक एक कवि किस प्रकार की उपमा का व्यवहार कर रहे है। देखिये, बंगला के पुराने दिवंगत कवि इस कविता को पढते तो शायद बहुत परेशान होते।

> मध्यरात्रे मिडल रोडे नैशब्दय झुलछे
> गरुर मांसेर मतो।
> नि शब्द, नि.शब्द रात्रि घन मेघे।

पहले तो बड़ी देर तक कविता मेरी समझ में नहीं आई, फिर मैंने सोचा कि इसका अंग्रेजी मे अनुवाद करूं तो शायद समझ मे आये, क्योंकि मैं जानता था कि आजकल के बहुत-से कवि अग्रेजी मे सोचते हैं।

अंग्रेजी मे सोचना इसलिए कहा गया कि, 'साइलेस' (नि.शब्दता) हैंग्स (झूलती) है। 'हैंग' शब्द हम समझ जाते है, किन्तु हिन्दी मे 'नि.शब्दता झूल रही है' यह उतना समझ में नही आता। यहां गोमास के साथ तुलना देकर कवि ने रात्रि की निस्तब्धता की वीभत्सता दिखलाई, इसलिए इस कविता की वाक्यरचनाशैली अग्रेजी की होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है, क्योंकि गोमांस का बडा टुकड़ा एक अंग्रेज की आखो मे वीभत्स नही, वल्कि रुचिकर है।

संजय भट्टाचार्य 'उद्य' नामक कविता मे धर्म को भी पूंजीपतियो का साथी वतलाते है :

> तोमादेर तलोयार
> झलमल करियाछे पृथिवीर रोदे;
> झलमल करियाछे
> तोमादेर मिनारेर चूड़ा।
> तादेर अनेक घाम
> अनेक चोखेर जल
> वहु रक्त

झुकायेछे पृथिवीर रोद,
तोमादर इतिहासे
कोनो स्मृति आसे नाइ तार
शुधु ऐसे गेछे वार वार
मिनारेर चुड़ा आर
झलमल बांका तलोयार।

—"तुम्हारी तलवारो मे तथा तुम्हारे मन्दिरो की चूड़ाओ मे पृथ्वी की धूप से चार चाद लगे हैं, किन्तु उनका पसीना, आसू तथा खून को इस पृथ्वी की धूप ने सुखाया ही है। तुम्हारे इतिहासो मे इनकी इन बातो का कुछ पता नहीं है, केवल तुम्हारी मीनारों की चूड़ा और चमकती हुई बांकी तलवारो का ही बार-बार उनमे आना-जाना हुआ है। स्वर्ग मे जो देवता आये वे भी बड़े कीमती थे। वे यदि कभी कृपा कर इस पृथ्वी पर आते हैं तो तुम लोगों की स्वार्थसिद्धि के लिए। उनकी भूख की तड़प, अपमृत्यु तथा मिट्टी की देह देवताओ के मन्त्र से और म्लान हो जाती है, तुम्हारे मन्दिरो की ड्योढी में उनका कोई चिह्न तक नही है, उनके लिए तो तुम्हारे देवता केवल मिट्टी भर हैं।"

आधुनिक मन की प्रतिक्रिया पलायनवाद, अरण्य मे लौट चलो या हम फिर से वर्वर हो जाय इन वातो मे हुआ है।

सन्तोपकुमार घोप कहते है—

तार चेये चलो कोनो खर्जुर-कुंजे
जेथा ओड़े शुधु सादा वालि धू धू प्रान्ते.
सार्थवाहीरा उष्ट्रेर पिठे चलेछे
पाये आंका पथ दूर दिगन्ते पालालो ?

—"इससे चलो, वल्कि कहीं खजूरो की कुंज मे चले, जहा केवल सफेद वालू वीरानों में उडता है, कारवा चले जा रहे है, पदचिह्न से अकित पथ जहां निरन्तर क्षितिज मे भाग जाता है।"

उंकि देवेनाको से खाने कखनो दैनिक
युद्धे कलाख चीना सैनिक मरेछे
सांहाइ-एते सांघातिक की घटलो
मालती, से सब जेने आमादेर लाभ कि ?

—"वहांपर दैनिक अखबार झांक भी नही सकते। वहां यह नही सुनना पड़ेगा कि कितने लाख चीनी सैनिक मरे है, शघाई मे सांघातिक क्या-क्या घटना हो रही है। मालती, यह सब जानकर हम लोगो को क्या लाभ है ?"

शहरेर पथे कोथाय मिछिल चलेछे
धर्मघटिरा कोयाय गुलि खेये मरलो
ना हय हलोई आश्रयहीन इहूदी
आमादेर नीड़ थाकलेई हलो अटूट

—"शहर मे कहा मजदूरो का जुलूस निकला, कहां हड़तालियो पर गोली चली, इनसे मेरा क्या वास्ता ? सारी दुनिया के यहूदी चाहे आश्रयहीन हो जायं, हमारा घोंसला बना रहे तो बस।

"वहा पथ चलते-चलते उन्मन बेकार युवक धनियो की मोटरों के नीचे छुट्टी नही पाते, फिर, हे मालती, कारखानो की चिमनी के धुएं से तुम्हारी चांदनी मैली भी नही होगी।

"बनियों और धनियो की लोभाग्नि, अन्याय तथा बारूद से हवा भर गई है, उधर जापान...हैं, न मालूम कब क्या गुल खिलावे। चलो, इससे खजूरो की कुज में चलो, जापान की साधु-चेष्टा सार्थक होने दो। हम एक-दूसरे को लेकर सुखी होंगे, भागे हुए के प्राण मे बारूद भला क्या असर करेगा।"

सच बात कही जाय तो यह प्रतिक्रिया है। आधुनिक के जीवन मे जो सैकड़ो समस्याएं है, उनसे घबराकर पलायनवाद का आश्रय लेना या बीते हुए स्वर्ण युग को लौटा लाने का स्वप्न देखना कोई आश्चर्य की बात नही है। ससार मे अन्याय है, किन्तु वह जबर्दस्त है, उससे लड़ना मुश्किल है। लड़ने पर खतरे हैं, जेल, कालापानी, फासी। ऐसी हालत मे इन काल्पनिक तथा बेखबर मतवादो के बालू मे शुतुरमुर्ग की तरह मुह छिपाकर बैठना आश्चर्यजनक नही। आज मध्यम श्रेणी के अच्छे-से-अच्छे बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार की अकर्मण्यता मे अपना जीवन खो रहे है। इसीको कहते है।विराट विश्वासघात। पढ़े-लिखे लोग सब-कुछ समझकर भी खतरो के कारण असली काम से जी चुराते है, यही विराट विश्वासघात का स्वरूप है।

सुभाषचन्द्र मुखोपाध्याय की एक कविता और देखिये। इसमें जमीदार के फटे हाल का वर्णन है। कैसे वह एक तरफ किसान तथा दूसरी ओर पूंजीवाद

की चक्की के दो पाट के बीच पिसकर खतम होते जा रहे है, उसको दिखलाया है।

कविता का नाम है 'अत.पर' । इस कविता मे छन्द का कही पता नही। हां, सीढी की तरह लिखी गई है। कविता यो है.

"सम्पादक को मिले

"महाशय—इधर-उधर मेरी कुछ जमीदारी है, लेकिन इस बुरे समय में उसे बचाना कठिन है। वश-परम्परा के अनुसार किंकर्तव्यविमूढ़ होकर जैसा ईश्वर चलाते है, वैसा ही चलता हूं। बरकन्दाज तावेदार है, लगान वसूल करने की सब तरकीबे उन्हे याद हे, फिर भी तीन साल से लगान कम वसूल हुआ। अदालत मे जाओ, कुछ होता नही। थोडी आय है सो भी रहन के फ़साद मे है। पता नहीं, अन्त मे भीख मागना बदा है या...। बेटा कलकते मे विद्या सीखते हैं, बोतल से उनका प्रेम है, यह पैतृक है...। विपत्ति एक ही नही, कुछ सच्चरित्र किन्तु बुद्धिहीन नौजवान निरक्षर किसानो को लेक्चर से मुग्ध करते हैं, इधर हम लोगो को काटो तो खून नही। क्या ये ही साम्यवादी है ? फिर भी शायद अदृष्ट का चक्का घूम जाय। अग्रेज प्रभुओ का हाल बुरा है, हमारे हाथ में राज्य-भार आयेगा, कोई ताज्जुब नही। पूजीपतियो का पौबारह है। विशेषकर भारतवर्ष के इकलौते नेता है गांधी। जितना रुपया लगता है, सब पूजीपति देते है। क्यो न दे, सोचते है, इसका नतीजा भविष्य मे अच्छा होगा। महाशय, जमीदारी जाय तो जाय। बनिये की मौलिक प्रतिभा देश के शिल्प मे मुक्ति पायगी। इस विषय मे पत्रपाठ (फौरन) मुक्ति चाहता हू।

निवेदक बंगचन्द्र पाल, ढाका"

मुझे डर है, बहुत-से लोग इसे कविता मानने को तैयार न होगे, किन्तु जो कुछ भी हो, यह भी एक धारा है।

रूस बहुत समय से एक बहुत ही बडे वाद-विवाद का विषय है। रूस बहुतों के लिए एक भयावह भूत-सा है। उसीपर श्री सुरेन्द्रनाथ गास्वामी ने एक कविता लिखी थी—

लाल जुजु एलो ऐ, हुशियार
दुनियार खोकाखुकु चेचामिचि कोरोनाको

चोख कान बुजे सब चुप करे शुये थाको
हुशियार

—इत्यादि

—"वह देखो लाल भूत आ रहा। हुशियार ! दुनिया के बच्चो, चिल्लाओ मर्त, आख-कान बन्दकर चुपकर सो रहो, हुशियार। हिटलर, मुसोलिनी, जापानी नोगुचि सब कहते हैं हुशियार। अंग्रेज, फ्रांसीसी सावधान होकर घूरते है, बच्चो को पकडने का झोला लेकर वह आया लाल भूत। हुशियार। बच्चो, सो जाओ, देर न करो, देखो वह विपत्तिसूचक लाल बत्ती। हुशियार। सफेद, काले, पीले सब बच्चे पडकर सो रहो। यहूदी भगाना है, ईसामसीह भी आर्य हो गये, स्वस्तिक ध्वजाधारी शान्ति-सेना पुकार रही है, वह आया लाल भूत, हुशियार।"

इस प्रकार आधुनिक कविता केवल नारी की पूजा मे या देवताओ की प्रशसा मे सीमावद्ध न रहकर मनुष्य के सभी क्षेत्रो मे सभी दिलचस्पियो मे अपने लिए रास्ता वना रही थी। शायद इस कारण आलंकारिकों की दृष्टि मे अव वह उतनी हद तक कविता नही रही, किन्तु अव वह जीवन के हरेक रन्ध्र मे अपनी जड को प्रविष्ट कराकर अपनेको सजीव वनाना चाहती है, साथ ही जीवन की मिट्टी को वह अधिक सामजस्यपूर्ण तथा उसको एक-दूसरे से सम्वन्धयुक्त वनाना चाहती है। यही इस युग की कविता की विशेषता है। हां, कही-कही इसमे अति हो रही है, यह मानता हू, किन्तु कोई भी वाढ जव आती है तो वह निकल जाती है। जव वाढ का पानी चला जाता है तो वह ऐसी मिट्टी छोड़ जाती है, उसीमे सोना फलता है।

: २४ :

आधुनिक बंगला उपन्यास

रवीन्द्रनाथ तथा शरच्चन्द्र के जीवन-काल मे ही यह आन्दोलन तो शुरू हो गया था कि वंगला-उपन्यास को इन दो महारथियो की प्रतिभा के क्षेत्र से मुक्त करके वाहर लाया जाय। इस सम्वन्ध मे भापा तथा रचना दोनो दृष्टियो से नवीन प्रयोग शुरू हो गये थे। फिर भी एक तो प्रतिभा के इन वरद-

पुत्रों की जकड़ से उपन्यास-साहित्य को मुक्त करना टेढी खीर थी, और दूसरे जिन लोगो ने इस काम को उठाया, उन्होने यूरोपियन, विशेपकर नार्वेजियन उपन्यासकारो का अनुकरण किया। इसलिए इनके प्रयासो से तत्काल ही कोई युगान्तरकारी नतीजे नही निकले। रवीन्द्रनाथ के उपन्यास मुख्यत: बिल्कुल रूढिवादी तो नही, पर नैतिक वातावरण को लेकर चलते थे। शरच्चन्द्र मे ऐसा कोई वन्धन नही था, फिर भी ऊपर से वह वन्धनहीन होने पर भी भीतर से प्राचीन मान्यताओ को सम्मान की दृष्टि से देखते थे, इसमे कोई सन्देह नही।

पर इन नये उपन्यासकारो ने प्रयोग शुरू किये। उन्होने इब्सन, क्नुट हैमसुन, चेखाफ, डोस्टोईएयफस्की, तुर्गनेव आदि लेखको को आदर्श मानकर एक नवीन शैली की सृष्टि करनी चाही। इनके प्रयास किसी भी क्षेत्र मे पूरे तरीके से सफल नही हुए, पर इस असफलता मे ही उन्हे कई तरह की नई शैली सृष्टि करने की सफलता मिली और वंगला-उपन्यास-साहित्य मे एक नवीनता का संचार हुआ।

वंगला साहित्य के क्षेत्र मे कुछ पत्रिकाओ ने साहित्य-निर्माण और युग को ढालने मे इतना अधिक कार्य किया है कि थोडे समय वाद लुप्त हो जाने पर भी वंगला साहित्य मे उनका नाम अमर रहेगा। ऐसी पत्रिकाओ मे वकिमचन्द्र का 'वंगदर्शन', सुरेशचन्द्र समाजपति का 'साहित्य', रामानन्द चट्टोपाध्याय का 'प्रवासी', रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'विचित्रा' वहुत उल्लेखनीय हैं, पर इन सवसे महत्वपूर्ण श्री दिनेशरजनदास और गोकुल नाग द्वारा सम्पादित 'कल्लोल' है।

इस पत्रिका का जीवन-काल केवल सात वर्ष तक सीमित रहा, फिर भी इसको वंगला साहित्य में इस कारण महत्व प्राप्त हुआ कि रवीन्द्रोत्तर सारे वगला साहित्य का यह केन्द्र वन गया।

यद्यपि कवीन्द्र रवीन्द्र ने वगला साहित्य के भण्डार को दोनो हाथो से हीरों और मोतियो से भर दिया और उसके किसी भी अंग को खाली नही रक्खा, फिर भी रवीन्द्र-साहित्य को अगले युग का प्रतीक नही कहा जा सकता था। कम-से-कम कुछ शक्तिशाली और कर्मठ लोग ऐसा समझते थे। रवीन्द्रनाथ सारे वंगला साहित्य पर छा गये थे, इन लोगो के अनुसार वुरी तरह छा गये थे, इस कारण ये समझते थे कि इसे रवीन्द्र-प्रभाव से मुक्त कर आधुनिक जीवन के कलकलमय कल्लोल मे लाने की आवश्यकता है।

रवीन्द्रनाथ तक इनकी खवर पहुचती रहती थी और वह परेशान थे कि ये

नवीन लेखक अपने कर्तव्य को समझ भी रहे हैं या नही। मानों इसी घबरा-हट, चिता तथा एक प्रकार से पथ-प्रदर्शन के लिए रवीन्द्रनाथ ने इन्ही दिनों 'शेषर कविता' नामक उपन्यास लिख डाला। यह उपन्यास इन आधुनिक लेखको को मानो चुनौती देकर यह कह रहा था कि तुम्हे इस काम को इस ढंग से करना है तो यों करो। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि एक वार उल्टी गंगा वही और कल्लोल-गुट के लोगो का रवीन्द्रनाथ पर असर पडा। इस उपन्यास का कल्लोट-गुट के लोगों पर यह असर पडा कि वे अवाक् होकर कह उठे, "अरे, हम ऐसे ही तो लिखना चाहते थे।" इस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने फिर एक वार अपने इन विद्रोही शिष्यो को अपने जाल मे डालकर समेट लिया। तथ्य तो यह है कि केवल इसी मामले में नही, इसके वाद भी रवीन्द्रनाथ जवतक जीवित रहे, वे दूसरो के हर नये प्रयोग को अपनाकर इन प्रयोगो के प्रवर्त्तको के आगे रहने की चेष्टा करते रहे, और इसमे वह सफल भी रहे।

यहां कही कुछ गलतफहमी न हो जाय, इसलिए यह वता दिया जाय कि 'कल्लोल' से वहुत पहले ही शरत्चन्द्र का आविर्भाव हो चुका था। यद्यपि शरत्-वावू ने स्वय ऐसा कभी नही कहा, तथापि इस वात को वंगला साहित्य के वाहर भी लोग जानते है कि शरच्चन्द्र हर तरीके से रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रभावित होने पर भी उनका साहित्य रवीन्द्र-साहित्य के अन्तर्गत नही था, और यह कहा जा सकता है कि वंगला साहित्य को पहली वार कवीन्द्र रवीन्द्र से मुक्ति उन्हीके हाथो द्वारा हुई। फिर भी शरच्चन्द्र इस अर्थ में आधुनिक होते हुए भी और उनके साहित्य के आधुनिक जीवन की कुछ समस्याओ के समाधान की ओर साहस-पूर्वक हाथ वढ़ाने पर भी आधुनिक जीवन की कई ऐसी समस्याएं थी, जिनको वह वहुत कम छू पाये।

इन्ही वातों को लेकर 'कल्लोल' की स्थापना हुई। वंगला के अन्यतम शक्ति-शाली लेखक अचित्यकुमार सेनगुप्त, जो इस कल्लोल-परिवार के सदस्य है, इस संवध मे क्या लिखते है, यह सुनने लायक है। 'कल्लोल' के साथ-साथ 'सहति' नाम से उन्ही दिनों मजदूरो की एक पत्रिका भी निकली थी। यह वंगला सन् १३३० की वात है।

अचित्यकुमार लिखते है—"सोचने पर आश्चर्य होता है कि दोनों मासिक पत्र एक ही सन् में और एक ही महीने में पहले-पहल प्रकाशित हुए। १३३०

के वैशाख महीने मे ये पत्र निकले। 'कल्लोल' कोई सात वर्ष चला, पर 'संहति' पत्र दो साल चलने के पहले बन्द हो गया। 'कल्लोल' कहने पर ही समझ मे आता है कि वह क्या है। उद्धत यौवन की झाग देती हुई उद्दामता, समस्त बाधाओ और बंधनो के विरुद्ध मुक्त विद्रोह, स्थविर समाज को उखाड फेकने का आन्दोलन। पर 'सहति' क्या है? 'सहति' तो कठिनीकृत शक्ति है। संघ, समूह, गणशक्ति, यही 'संहति' है। जिस गुण के लिए समधर्मी परमाणु एक होते हैं, वही 'संहति' है। यह नाम आश्चर्यजनक था, और उसका तात्पर्य भी आश्चर्यजनक था। एक तरफ वेग बल था। एक तरफ तोड़ना था और दूसरी तरफ सगठन और एकीकरण था।

"आज बहुत-से लोग शायद नही जानते कि यही 'सहति' बंगाल में मजदूरों का पहला मुखपत्र और उनकी पहली मासिक पत्रिका थी। वह दुबली-पतली स्वल्पायु मासिक पत्रिका ही बंगाल मे गण-जययात्रा की पहली मशालची थी। इसके बाद तो कई पत्रिकाएं निकली, जैसे 'गणवाणी', 'गणशक्ति', 'लांगल' या 'हल'। 'सहति' ही अग्रणी थी।"

रवीन्द्र और शरत्चन्द्र के बाद बगाल के सभी ऊंचे दर्जे के साहित्यिक इसी 'कल्लोल' से किसी-न-किसी प्रकार सम्बद्ध थे। उनमे से कुछके नाम इस प्रकार हैं—ताराशकर, प्रबोध सान्याल, बुद्धदेव बसु, अन्नदाशंकर, नजरुल इस्लाम, जीवनानन्द दास, नृपेन्द्रकृष्ण चट्टोपाध्याय, पवित्र गंगोपाध्याय, जसीमुद्दीन, प्रेमेन्द्र मित्र, विश्वपति चौधरी, विष्णु दे, गोकुल नाग, माणिक बन्द्योपाध्याय, यतीन्द्रसेन गुप्त, शिवराम चक्रवर्ती, यतीन्द्र बागची, राधारानी देवी, शैलजानन्द, मुखोपाध्याय, सरोज राय चौधरी, मुनिर्मल बसु, सुधीर चौधरी, हुमायूं कबीर इत्यादि।

इस प्रकार बगला के सब आधुनिक लेखक 'कल्लोल' के इर्द-गिर्द एकत्र हुए। यहापर 'कल्लोल'-संबधित कुछ थोडे-से लेखको का ही परिचय दिया जायगा।

इनमें से करीब-करीब सभी लेखको के साथ हिन्दी-जगत् थोड़ा बहुत परिचित है। इलाहाबाद से प्रकाशित होनेवाली 'माया' और 'मनोहर कहानिया' नामक कहानी पत्रिकाओ की बदौलत इनमे से जो लोग कहानीकार हैं, उनकी कहानिया हिन्दी-जगत् के सम्मुख समय-समय पर आती रही है, पर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने पर इन लेखकों को कोई विशेष ख्याति प्राप्त नहीं

हुई। एक तो अक्सर अनुवाद बहुत बुरा हुआ, और दूसरे किसी कारण से ही, साहित्य के क्षेत्र मे मासिक पत्रो की रचनाओ को कोई विशेष मर्यादा प्राप्त नही होती। फिर भी यह मानना पडेगा कि हिन्दी पत्रो ने इस दिशा में बहुत अच्छी सेवा की है। अच्छा होता, यदि कहानियो को परोसने मे अनुवाद की उत्तमता की ओर भी ध्यान दिया जाता।

ताराशंकर के कई उपन्यास हिन्दी मे प्रकाशित हो चुके है, और जल्दी ही शायद उनके बाकी उपन्यास भी हिन्दी मे प्रकाशित हों। इस प्रकार ताराशंकर से तो हिन्दी-जगत् काफी अच्छी तरह परिचित है।

ताराशंकर हिन्दी मे जितनी अच्छी तरह जाने जाते है, उतना बंगला का कोई जीवित लेखक नही जाना जाता। हां, काज़ी नज़रुल इस्लाम भी बंगला के बाहर कुछ प्रख्यात हैं, पर उनकी सारी रचनाएं कविता मे होने के कारण उनकी कृतियों से हिन्दी-जगत् अधिक परिचित नही है। 'कल्लोल' के सम्पादक श्री गोकुल-चन्द्र नाग की असामयिक मृत्यु पर कवि नजरुल ने 'गोकुल नाग' नाम से जो कविता लिखी थी, उसकी कुछ पक्तियो का अर्थ नीचे दिया जाता है। इन पंक्तियो से यह भी ज्ञात हो जायगा कि कल्लोल-गुट के लेखक किन विचारो से परिचालित थे :

"सुन्दर की तपस्या मे ध्यान में विभोर दरिद्रता के दर्प और तेज को लेकर जो लोग आये, जो लोग चिर सर्वहारा हैं, जो लोग आत्मदान करके सृजन करते है, निर्माण नही करते, हे कवि, इस स्मृति-दिवस मे उन शारदापुत्रो के आडम्बर-हीन सहज जीवन को स्वीकार कर लेना, जैसा कि तुमने जीवन मे उन्हे ग्रहण किया था।"

इसी कविता में अन्यत्र वह लिखते हैं—"जो लोग ऊंची-ऊची अटारियां बन-वाते हैं, उन्हीकी इज्जत और सम्मान है, पर उनका यह निर्माण दो दिन का है, जल्दी ही टूटकर गिर पड़ता है, पर जो लोग विधाता की तरह कही चुपचाप सृजन करते रहते हैं, जाति को बनाते है, इन्सान को बनाते हैं, वे अपरिचित रह जाते हैं।"

हमने इन पक्तियो को नज़रुल की कवित्वशक्ति दिखाने के लिए नही, बल्कि किन विचारों को लेकर कल्लोल-गुट चला, उनके स्पष्टीकरण के लिए चुना। नज़रुल पर हम पहले ही विस्तार के साथ लिख चुके हैं। वह उस समय भी

ऊंचा स्थान प्राप्त कर चुके थे जब रवीन्द्रनाथ जीवित थे।

यहा हम श्री गोकुल नाग का परिचय थोड़े मे देगे। वह कल्लोल-गुट के मध्य-मणि थे। उनका उपन्यास 'पथिक' बहुत प्रसिद्ध हुआ और उनकी अकाल मृत्यु के बावजूद इसी एक उपन्यास के कारण उनकी ख्याति बगला साहित्य मे अमर है। इस उपन्यास को पढकर बंगला के प्राचीन-पथी विद्वान् और आलोचक डा० दिनेश सेन इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होने लिखा था—"इस प्रकार की कृतियो से प्राचीन समाज की नीव ढह जायगी, बल्कि बगाली दुनिया के पर्दे पर से मिट जाय, यह अच्छा है, पर वे संस्कारो की चक्की मे पिसकर निकम्मे होकर बने रहें, इसकी क्या जरूरत है? ऐसे जीने से मरना अच्छा है। जो वीर हमारे दरवाजे खोलकर घर मे ताजी हवा पहुचाने के लिए कमर कस चुके है, उनमे 'कल्लोल' के लेखक सबसे तरुण और शक्तिशाली है। प्राचीन पोगापथी समाज के साथ समझौता करके चलने की दीनता से ये मुक्त हो चुके हैं। ये लोग घिसे-पिटे रास्ते को रास्ता नही मानते। जो सुन्दर है, स्वाभाविक है, जो वास्तविक रूप से मनुष्यता है, आत्मा के उस स्वप्रकाशित सत्य को वे वेद और कुरान से बडा समझते है। इन बलदर्पित लेखको के पदचाप से प्राचीन जराजीर्ण समाज की हड्डी-पसली हिल उठी है। पर मै इनकी रचनाओ को पढकर बहुत खुश हुआ हूं। हमे ऐसा मालूम होता है कि नाली छोडकर हम जाह्नवी की पवित्र धारा मे आ गये, जैसे कागज के फूलो की दुनिया से नन्दन कानन मे आ गये।"

डा० दिनेश सेन के मुह से यह प्रशसा बहुत अधिक महत्व रखती थी।

श्री गोकुल नाग के अतिरिक्त जिन लेखको ने 'कल्लोल' को बनाया, उनमें प्रबोध सान्याल का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पहले ही साल उनकी रचना 'कल्लोल' मे प्रकाशित हुई। इस समय उनके बहुत-से उपन्यास है, जिनमें कई उच्चकोटि के है।

अचिंत्यकुमार कवि और उपन्यासकार है। 'कल्लोल' की प्रथम संख्या में ही इनकी एक कहानी 'मां' नाम से प्रकाशित हुई थी। इनके भी बहुत-से उपन्यास प्रकाशित हो चुके है।

श्री बुद्धदेव बसु बंगला के प्रमुख कथाकारों मे हैं। पहले 'प्रगति' नाम से वह एक हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे। जब श्री गोकुलचन्द्र नाग मरे, उस समय ढाका से इन्होने एक छोटी-सी कविता लिख भेजी थी, जिसमे इन्होंने श्री गोकुल-

चन्द्र नाग को 'यौवन-पथिक' सम्बोधित करते हुए लिखा था—"तुम नव वसत के सुरभित दक्षिण वायु हो। तुम क्षणभर के लिए वाणी के कानन को विकम्पित कर गये।" उन दिनो बुद्धदेव वसु को कोई नही जानता था। वाद को 'कल्लोल' के वह प्रमुख लेखको मे हो गये। उपन्यासों, कहानियो और कविताओ मे सर्वत्र वह चमके। उनकी रचनाओ की संख्या वहुत अधिक है। वे अंग्रेजी मे भी लिखते हैं। उनके उपन्यासो और कहानियो मे अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त वंगाली-समाज का चित्रण है।

अन्नदाशकर भी 'कल्लोल' के साथ सम्वद्ध थे। अचिंत्यकुमार के अनुसार वह ऐसे लेखको मे है, जिनमे मन, प्राण और आत्मा का महामिलन हुआ है। उनके अनुसार, "आत्मा के साथ जव आत्मा की वातचीत होती है, तभी महान् कला का जन्म होता है। अन्नदाशंकर उसी महान् कला के अन्वेषक हैं। उनके साहित्य का आदर्श इतना ऊचा है कि जो वात उनकी पहुंच के अन्दर आ जाती हे, जिस-पर वह दखल प्रास कर लेते हैं, उससे वह तृस नही होते। वह जीवन मे स्वस्थ और शान्त भले ही हों, पर सृजन मे वह अपरितृस है।" अन्नदाशंकर के वहुत-से उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जो उच्चकोटि के हैं।

वंगला के अन्यतम शक्तिशाली लेखक श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय भी 'कल्लोल' के लेखको मे थे। विभूतिवावू जव-तव लिखते थे, ऐसी वात नही, वह नियमित रूप से 'कल्लोल' मे लिखा करते थे। उनके भी वहुत-से उपन्यास हैं।

जसीमुद्दीन भी कल्लोल के लेखकों में थे। इन दिनो वह पूर्व पाकिस्तान मे करीव-करीव राजकवि है, पर उन दिनों उनकी कैसी हालत थी, यह अचिंत्यकुमार की जवानी सुनिये—"एकदम सीधे-सादे, भोले-भाले थे ये कवि जसमुद्दीन। कघी से वालो का कोई खास सम्बन्ध नही। शायद अभाव से कही वढकर उदासीनता थी। मानो उनके व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द सरल श्यामल गाव का वातावरण था। उनकी कविताओ मे भी गाव की ओर सकेत था। गांव के किसान, खेत और खलिहान, नदी-नालो की तरफ उनकी दृष्टि थी। उनका सुभाव उनकी असा-धारण साधारणता की ओर था। जो दु:ख सर्वहारा का होकर भी सर्वमय था, वही उनका उपजीव्य था। उनमें किसी तरह की शिल्पीसुलभ कृत्रिमता नही थी, कोई प्रसाधन का ढकोसला नही था। एकदम सीधे-साधे हृदय स्पर्श करने की व्याकुलता थी। उनकी वातें किसी वाद के साचे में ढली न होने के कारण

भले ही कुछ लोगो को नापसन्द रही हो, पर वे बहुत सुन्दर थी।"

जसीमुद्दीन को बंगाल के गावो का प्रतीक कवि कहा जा सकता है और इस दृष्टि से बगला साहित्य मे उनका स्थान अद्वितीय माना जा सकता है। यो तो रवीन्द्रनाथ से लेकर सभी बंगला कवियो ने बगाल के गांवो की प्रशस्ति गाई है, पर जिस चुभते हुए पैने ढग से जसीमुद्दीन ने कविताए लिखी है, वह बिल्कुल उन्ही तक सीमित रहा।

जीवनानन्द दास भी 'कल्लोल' के संस्पर्श मे आये। वह पहले बरीसाल मे थे, बाद में कलकत्ते मे आये। जीवनानन्द को 'कल्लोल' वालो ने खीचा, पर वह उसमे अधिक रम नही पाये। वह सिटी कालेज मे अध्यापक थे। अश्लीलता का दोष लगाकर उन्हे नौकरी से अलग कर दिया गया। अश्लीलता भी किस प्रकार की थी, यह भी देखने लायक है। उन्होने किसी कविता मे शायद ऐसा लिखा कि खड़ी फसल के अग्रभाग को देखकर उन्हे स्तन का श्याममुख स्मरण हो आता है। कहना न होगा कि इतनी छोटी-सी बात पर जब जीवनानन्द को निकाल दिया गया तो कालेज के अधिकारियो के हाथो मे शेक्सपियर और कालिदास की कैसी दशा होती ?

'कल्लोल'-गुट से अलग मनीन्द्रलाल बोस एक अजीब शैली का प्रवर्त्तन तथा प्रयोग करते रहे। उनकी रचना का सबसे महत्वपूर्ण अग उनकी अलसाई-सी, धीर-मंथर राजहस की चालवाली मसालेदार भाषा है। उन्होने दो ही तीन उपन्यास लिखे है। इनमे भाषा के अतिरिक्त शायद ही कुछ है, फिर भी इनके उपन्यास बहुत ही पठनीय है, और जो लोग 'कादम्बरी' की शैली की चीज को रस ले-लेकर पढने के आदी हैं, याने कुछ देर पढा और फिर आखे बन्द करके सोचते रहे, उन्हे बहुत पसन्द आयगे। स्वाभाविक रूप से मनीन्द्रलाल ने अपने उपन्यासो मे कथानक भी ऐसा रक्खा है, जिसमे दीर्घकाल तक सोचने और चिंतन करने की गुजाइश हो। इसीलिए उनके कथानको मे तपेदिक-ग्रस्त व्यक्तियो की भरमार है, जो पडे-पडे न मालूम किस-किस स्वप्न-जगत् मे चले जाते है।

यह पहले ही कहा जा चुका कि बंगला के उपन्यासकारों मे इस समय सबसे प्रमुख नाम श्री ताराशकर बंद्योपाध्याय का है। उन्होने बहुत अच्छा भी लिखा और बहुत अधिक भी लिखा। यह तो कहना कठिन है कि वह रवीन्द्रनाथ या शरच्चन्द्र की तुलना मे कैसे है, पर इतना कहा जा सकता है कि उनके

साहित्य में आधुनिक वगाल तथा एक हद तक भारत मूर्त्त हुआ है। उनका साहित्य केवल पारिवारिक जीवन को लेकर ही नही चलता, उसमे युगमन का प्रतिफलन सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। उनका प्रथम उपन्यास 'चेताली घूर्णि' १९३२ के अक्तूबर मे प्रकाशित हुआ। उनका 'गण देवता' तथा 'पंचग्राम' नामक उपन्यास शायद उनकी सबसे उत्कृष्ट रचनाएं हैं। पर इधर १९४७ की जुलाई मे उन्होंने 'हांसुली बांकेर उपकथा' नाम से एक उपन्यास लिखा है, जिसकी वहुत प्रशंसा हुई है। उनके अन्य उपन्यासों में 'धात्री देवता', 'कवि' और 'कालिन्दी' वहुत ही उच्चकोटि के उपन्यास है। 'धात्री देवता' १९३९ के अक्तूवर मे प्रकाशित हुआ। 'कालिन्दी', 'कवि', 'गण देवता', 'पंचग्राम', 'मन्वतर', क्रमशः अक्तूवर १९४०, मई १९४१, अक्तूवर १९४२, फरवरी १९४४ तथा १९४४ में प्रकाशित हुए। उनके उपन्यास 'मन्वंतर' का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है। यह एक आश्चर्य की वात है कि वर्तमान वंगाल के सवसे प्रसिद्ध लेखक ने मुख्यत. गांवो के सम्वन्ध में ही लिखा है। उनके उपन्यास 'आरोग्य निकेतन' को उनकी सर्वोत्तम कृति माना गया है।

दरभंगा-निवासी श्री विभूतिभूषण मुखोपाध्याय वंगला के वहुत प्रमुख उपन्यासकारों में है। उनका प्रथम कहानी-संकलन 'रानू का प्रथम भाग' मई १९३७ के करीव प्रकाशित हुआ। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी सभी कुछ लिखा है, और वड़ी योग्यता से लिखा है। उनका 'गरीयसी' नामक उपन्यास तीन भागों मे प्रकाशित हुआ और उसकी वड़ी प्रशंसा हुई। इनकी रचनाओं मे चित्रण की अद्‌भुत शक्ति है।

श्री वुद्धदेव वसु का नाम हम इससे पूर्व कई वार ले चुके हैं। उनका प्रथम उपन्यास 'साडा' पुस्तकाकार मे १९३० मे प्रकाशित हुआ। उनके उपन्यासो का विवरण इस प्रकार है—'साडा' १९३०, 'जेदिन फुटलोकमल' १९३३, 'धूसर गोधुली' १९३३, 'कालोहावा' १९४२, 'विशाखा' १९४६, 'तिथिडोर' १९४९। 'अन्यकोनखाने' नाम से उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। उनकी रचना मे शृंगार-रस की कही-कही अधिकता है और प्रगतिशील लोग उन्हे प्रतिक्रियावादी लेखक मानते हैं। उन्होंने अग्रेजी में वंगला के आधुनिक साहित्य के सम्वन्व मे भी एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'एन एकर आफ ग्रीन ग्रास'।

इस समय के प्रमुख वगला-उपन्यासकारों मे श्री अन्नदाशंकर राय का भी

नाम लिया जा सकता है। उनके जीवन का वहुत-सा भाग यूरोप मे वीता है, इस कारण वह अपने उपन्यासो मे यूरोपीय वातावरण वहुत ले आते है। उनकी पहली रचना रवीन्द्रनाथ की देख-रेख मे निकलनेवाली 'विचित्रा' नामक पत्रिका मे धारावाहिक रूप से १९२७ से १९३० तक प्रकाशित हुई। इसका नाम था 'पथेप्रवासे'। उनकी पुस्तकाकार मे प्रकाशित प्रथम रचना 'तारुराय' १९२८ में प्रकाशित हुई। 'पथेप्रवासे' भ्रमण की पुस्तक थी, पर वह इतने दिलचस्प रूप मे लिखी गई थी कि इसीसे वंगला-साहित्य मे उनकी ख्याति हो गई। इन्होने 'सत्यासत्य' नाम से ६ उपन्यासो की एक माला लिखी, जिसके भागो के नाम हिन्दी मे अनूदित होने पर यो हे—१. 'जार जेथा देश' या 'जिसका जहा देश', २. 'अज्ञातवास', ३. 'कलंकवती', ४. 'दु खमोचने', ५. 'मर्त्येर स्वर्ग' या 'मर्त्य का स्वर्ग', ६. 'अपसरण'। उनकी अन्य पुस्तको मे, 'मन पवन' भी वहुत प्रसिद्ध है। अन्नदावावू हमारे सामने एक नई ही दुनिया रख देते है। वह अंग्रेजी-साहित्य के वहुत वडे ज्ञाता होने के साथ ही भारतीय वैष्णव साहित्य तथा रवीन्द्रनाथ के समान रूप से ज्ञाता है। साथ ही वह कवि भी है। इस कारण उनके साहित्य मे ऐसे रस की उत्पत्ति हुई है, जो रवीन्द्र, शरत् आदि से सम्पूर्ण रूप से पृथक् जगत् की सृष्टि करता है।

श्री अचित्यकुमार सेनगुप्त वंगला के वहुत ही शक्तिशाली उपन्यासकारो में है। वह नार्वेजियन साहित्य से वहुत प्रभावित हुए और क्नुटहाससुन की एक पुस्तक के अनुवाद से उन्होंने साहित्य-जगत् मे प्रवेश किया। उनका पहला उपन्यास 'वेटे' या 'वहू' क्नुटहाससुन की शैली पर ही लिखा गया था। यह १९२७ में प्रकाशित हुआ। उनके उपन्यासो तथा कहानियों की संख्या वहुत अधिक है।

उन्होने अपने उपन्यासों मे कुछ नवीन प्रयोग किये, और ऐसा कहने मे कोई हिचकिचाहट नही है कि वह इन प्रयोगो मे वहुत-कुछ सफल हुए। वाद को चलकर हाल मे उन्होने 'जायजेदिजाक' याने 'जाये तो जाये' नाम से एक उपन्यास लिखा था, जिसके कारण उनकी ख्याति मे वहुत वृद्धि हुई थी। इस पुस्तक में वगाली मध्यवित्त परिवार पर युद्ध तथा दुर्भिक्ष का परिणाम दिखलाया गया है। इसमे सन्देह नही कि भारतीय साहित्य मे यह एक वहुत ही शक्तिशाली दान है।

भागलपुर-निवासी डाक्टर वलाईचाद मुखोपाध्याय या वनफूल ने वहुत-से

उपन्यास, कहानियां तथा एकांकी लिखे है। उनकी रचना की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह बहुत अच्छी कहानी गढ़ लेते हैं, और उनमे मौलिकता बहुत अधिक है। विशेष विचारधारा के वह कायल नही है, और इधर उनको प्रगतिशील लेखको ने कई एक रचनाओ के कारण प्रतिक्रियावादी बताया है। उनका प्रथम उपन्यास 'तृण-खंड' 'शनिवारेर चिठी' की तरफ से प्रकाशित हुआ था। उनके सभी उपन्यास और कहानी-संग्रह शीघ्र ही हिन्दी में प्रकाशित होने जा रहे हैं। 'कुछ क्षण' नाम से उनका एक छोटा-सा उपन्यास पहले हिन्दी मे प्रकाशित हो चुका था, पर अनुवाद अच्छा न था।

श्री विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय भी बंगला के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार है। उनके पाच उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनमे से उनका प्रथम उपन्यास 'पथेर पाचाली' तथा उनका द्वितीय भाग 'अपराजिता' सबसे प्रसिद्ध है। 'पथेर पाचाली' ससार की श्रेष्ठतम कृतियो मे से माना गया है। इसमें वह रवीन्द्र और शरत् से उच्चस्तर की कला का प्रदर्शन करते है। बंगला मे अबतक वह केवल प्रथम श्रेणी के माने जाते थे, पर अब लोग उनकी कद्र समझने लगे हैं। उन्होने भी ग्राम-जीवन को ही उपन्यास का केन्द्र बनाया है। उनके अन्य उपन्यासो के नाम इस प्रकार हैं—१. आरण्यक, २. दृष्टि-प्रदीप, ३. देवयान, ४. आदर्श हिन्दू होटल। इसके अतिरिक्त उनके कई कहानी-सकलन प्रकाशित हुए हैं। दो भ्रमण-सम्बन्धी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई है, जिनमे उपन्यास का मजा आ जाता है।

श्री प्रबोधकुमार सान्याल भी एक शक्तिशाली उपन्यासकार है। वह गद्य के इतने सुन्दर लेखक है कि उनको गद्य का कवि कहना अनुचित न होगा। उनके उपन्यास डिकेन्स की तरह बहुत संगठित नही है, पर वे इतनी नई चीजे पाठक के सामने ला देते है कि पाठक मुग्ध हो जाता है। उन्होने कई उपन्यास तथा कहानियों के कई संग्रह प्रकाशित किये हैं। वह भ्रमण की कहानिया लिखने में सिद्धहस्त हैं। 'देवात्मा हिमालय' नाम से एक पुस्तक निकली है, जिसकी भूमिका श्री नेहरू ने लिखी है।

श्री शैलजानन्द मुखोपाध्याय कई सुन्दर उपन्यास लिख चुके है और उन सबका केन्द्र कोयले की खानों का जीवन है। ऐसा मालूम होता है कि उन्होने कोयले की खानो का सुन्दर अध्ययन किया है। यह एक ऐसा विषय है, जिसे अन्य लेखको के द्वारा करीब-करीब अछूता होने के कारण, बंगला के उपन्यास-

साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। उनकी 'कयला कुटी' या 'कोयले की खान' की बंगला में बहुत प्रशसा हुई। उनकी 'अनाथ आश्रम' नामक पुस्तक और उनकी कुछ कहानियां भी हिन्दी मे अनूदित हो चुकी हैं। वह सर्वदा अपनी कहानियो तथा उपन्यासो में अस्वाभाविक और असाधारण को लेकर चलते हैं। श्री माणिक वन्द्योपाध्याय वगला-उपन्यास के क्षेत्र में कभी इतने चमके थे कि उनके सम्वन्घ मे समझा जाता था, वह ही शरत्वावू का रिक्त स्थान ले लेगे। उनका 'पद्मा नदी का मांझी' नामक उपन्यास पद्मा के किनारे के ग्राम-वासियो को लेकर लिखा गया है। यह एक वहुत ही शक्तिशाली कृति है, और सव तरह के समालोचको ने इसकी वडी प्रशसा की है। वहुत ही साधारण मल्लाह के जीवन को लेकर इतना वडा उपन्यास लिख देना यह उनकी शक्ति का परिचायक है। पर माणिकवावू को न मालूम क्या हो गया, वाद को वह कुछ अश्लीलता की तरफ वढे और मनोविश्लेपण के विपय ही उनकी कहानियो तथा उपन्यासो के उपजीव्य वन गये। अवश्य इससे यह न समझा जाय कि उनके लिखने की शक्ति में कोई फर्क आया, पर उसका सामाजिक मूल्य घट गया, इसमे सन्देह नही।

श्री परिमल गोस्वामी ने 'व्लैक मार्केट' नामक एक उच्चकोटि का गल्प-संकलन प्रकाशित किया है। उनमें व्यंग्य तथा विद्रूप की अपूर्व प्रतिभा है।

इघर के अत्यन्त शक्तिशाली लेखको मे श्री नारायण गागुली का नाम वहुत ही प्रमुख है। उनका 'उपनिवेश' नामक उपन्यास तथा इसके वाद भी उनकी जो कहानिया आदि प्रकाशित हुई हैं, वे महान् प्रतिभा की सूचक हैं। गोपाल हालदार ने वंगला-उपन्यास मे कम्युनिस्ट घारा का प्रतिपादन किया है और उनका उपन्यास 'एकदा' इलिया एहरनवुर्ग की शैली का वहुत शक्तिशाली उपन्यास है।

अन्त मे मैं कुछ अति-आधुनिक लेखको का उल्लेख करूगा, जिनसे वगला-उपन्यास-साहित्य को वडी आशाए है। उल्लिखित नारायण गंगोपाध्याय ने तो वगला-साहित्य में जोर-शोर से पदार्पण किया। उनके पास कथानको का जैसे एक ढेर-सा है। वहुत थोडे समय मे ही वह वगला-साहित्य मे छा गये। सृष्टि-शक्ति की विपुलता की दृष्टि से उनका नम्वर इस समय ताराशकर के वाद ही है। उनके प्रत्येक उपन्यास मे नवीनता के साथ एक दृढ़ विचारधारा का पुट है। 'उपनिवेश' के अलावा 'स्वर्णसीता' 'सूर्य सारथी' आदि कृतिया वहुत प्रसिद्ध हुई।

अन्य अति प्रतिभाशाली आधुनिक लेखको मे समरसेन और सुभाष मुखोपाध्याय शक्तिशाली ज्ञात होते हैं। सुवोध घोप ने भी असाधारण कथानकों को लेकर कई अच्छे उपन्यास लिखे है, उनके कथानकों की असाधारणता उनकी काल्पनिकता में नही, वल्कि अल्प परिचित या अपरिचित स्थानो के लोगो को पात्र वनाने मे है। इस समय की उपन्यास-लेखिकाओ में प्रतिभा वसु, आशापूर्णा देवी तथा वाणी राय को गिनाया जा सकता है। पर इनमे से कोई भी साहित्य को कोई नई दिशा देने जा रही हैं, ऐसा नही ज्ञात होता। इनके पहले के युग की लेखिकाएं-अनुरूपादेवी, स्वर्णकुमारी देवी तथा निरुपमादेवी आदि शायद उपन्यासकार की दृष्टि से अधिक सफल थी। पर इन सवसे तथा अन्य लेखिकाओ से यह आशा की जा सकती है कि आज के जीवन के थपेड़े उन्हें उन वातो को सिखा सकेंगे जो वे अन्यथा नही सीख पायेगी।

अव मैं केवल एक और उपन्यासकार नही, वल्कि उपन्यास का उल्लेख करूंगा। इस उपन्यास का नाम 'जागरी' है तथा इसके लेखक का नाम सतीनाथ भादूरी है। पता नही, यह लेखक कहां साधना कर रहा था, पर इन्होने जव 'जागरी' को लेकर एकाएक साहित्य में पदार्पण किया तो लोग आश्चर्यचकित रह गये। इस उपन्यास मे एक घटनापूर्ण रात्रि का वर्णन है। इस उपन्यास के मुख्य नायक वीलू को एक राजनैतिक मुकदमे में सजा की फांसी सुनाई जा चुकी है। वह जेल मे वन्द है और उसे अगले दिन सवेरे फांसी होनेवाली है। उसके मां और वाप को भी उसकी तरह क्रान्तिकारी मामले मे नही, वल्कि १९४२ के आन्दोलन मे कुछ सजा हुई है और वे भी उसी जेल मे वन्द हैं। वीलू का छोटा भाई नीलू जेल के फाटक पर है, और उसके सम्वन्ध मे विशेप वात यह है कि अपने राजनैतिक विचारो में पक्का होने के कारण उसने अपने वड़े भाई के विरुद्ध गवाही दी है। पर राजनैतिक कारण से गवाही देने का अर्थ यह नही है कि उसके मन मे वीलू के प्रति प्रेम नही है। सच तो यह है कि वहुत अधिक प्रेम है। अव ये चारो व्यक्ति अपनी-अपनी जगह पर सोच रहे हैं। यही उपन्यास का मुख्य उपजीव्य है। इसके साथ ही इस उपन्यास मे राजनैतिक लोगो की भलाई-वुराई इस खूवी से आती है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है। इसमे सन्देह नही कि 'जागरी' एक वहुत ही शक्तिशाली उपन्यास है।

वगला साहित्य मे 'जागरी' के लेखक की तरह एक वार और भी एकाएक

ख्याति-प्राप्ति हो चुकी थी, जब 'यायावर' ने दिल्ली के जीवन पर एक अमर-पुस्तक 'दृष्टिपात' लिखी थी।

इसी कोटि मे बाद के उपन्यासो मे विमल मित्र का 'साहब, बीबी, गुलाम' की बात कह दी जाय। इसमें बड़े सुन्दर रूप से बंगाल मे सामन्तवादी युग के अन्त के साथ-साथ पूजीवाद का प्रारम्भ दिखाया गया। यह उपन्यास अत्यन्त उच्चकोटि का है। युगचित्रण के अतिरिक्त एक-एक चरित्र सजीव है और स्मृति-पटल पर अमिट प्रभाव छोड़ जाता है। इसका हिन्दी अनुवाद हो चुका है।

बगला के अति-आधुनिक साहित्य मे जनवादी तरीके से चीजों को देखने की परिपाटी प्रबल हो रही है। अब शरत् की पारिवारिक तथा प्रेम-सम्बन्धी गुत्थियों मे वह उलझा हुआ नही रह सकता। अवश्य अब भी उपन्यासकारो का सबसे बडा उपजीव्य प्रेम ही है, पर इसके साथ-साथ जीवन के अन्य पहलू भी, विशेषकर आर्थिक पहलू, बहुत जोर पकड़ रहे है। यह द्रष्टव्य है कि आधुनिक बंगला-साहित्य मे ग्राम-जीवन को ही अधिक महत्व दिया गया है। इधर की अन्य उल्लेख-योग्य कृतियों मे दीपक चौधुरी का 'पाताले एक ऋतु' (पाताल मे एक ऋतु) और 'शख विष', रमापद चौधुरी का 'प्रथम पहर', वरेन वसु का 'रंगरूट'। कहानी-साहित्य मे विशेषकर नरेन्द्र मित्र, कामाक्षीप्रसाद चट्टोपाध्याय, स्वर्णकमल भट्टाचार्य, शिवराम चक्रवर्ती, सुशील जाना, ननी भौमिक उल्लेखयोग्य है।

: २५ :

अतिआधुनिक बंगला कविता

नजरुल पर हम कुछ कह चुके है, पर उन्हीसे यदि अतिआधुनिक कविता का आरंभ माना जाय तो असंगत न होगा। कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन-काल मे ही उनकी वाणी रवीन्द्र के मेघमन्द्रस्वर से पृथक् और स्पष्ट सुनाई पडती थी। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के बाद जब वह बगला साहित्य के क्षेत्र मे आये तो उनके हाथो मे उस युग की आधुनिकता की अग्निवीणा थी। वह साहित्य के गगन में एक धूमकेतु की तरह प्राचीन के विनाश की वाणी को लेकर उद्भूत हुए। जो नवीन आने-वाला था, उसकी रूप-रेखा उनके निकट अभी स्पष्ट नही थी। विद्रोह तो था,

पर विद्रोह के सफल होने के वाद के निर्माण का नक्शा स्पष्ट नही था। यह हालत केवल उनकी कविता की नहीं थी, राजनीति में भी स्वराज्य शब्द की अभी परिभापा नही हुई थी। उन्होंने उस युग में न केवल राजनैतिक विद्रोह का नारा दिया था, वल्कि भगवान् के विरुद्ध भी विद्रोह खडा किया था। उन्होंने अग्नि-वीणा में जिस रूप मे जो कुछ कहा था, वह एक ऐसी वाणी थी, और इस रूप मे कही गई थी, जो कवीन्द्र रवीन्द्र के लिए अस्वाभाविक होती। यद्यपि नजरुल ने साहित्य के क्षेत्र मे एक विद्रोही कवि के रूप मे प्रवेश किया फिर भी प्रेम, विरह आदि विषयों मे वहुत-से गीत लिखे, जो वंगला साहित्य की अमर संपदाए हैं। प्रेम-सवंधी उनकी कविताओ के अनुवाद मे वहुत-कुछ नाश हो जाता है, क्योकि इस विषय की उनकी कविताएं अत्यंत गीत-धर्मी है, और भापा में ही उनकी प्रधान खूवी है। अरवी, फारसी, उर्दू के साथ-साथ वंगला के वैष्णव कवियों से उन्होने वहुत-कुछ लिया, फिर भी नजरुल नजरुल ही है। यद्यपि उनकी प्रेम-कविताएं अनुवाद मे वहुत-कुछ खो देगी, फिर भी एक कविता यो —

प्रदीप निभाये दाओ उठियाछे चांद।
वाहुर डोर आछे, मालाय कि साध?
फुल आनिओ न भवने
केशेर सुवास तव घनाक मने
हृदयेर लागि मोर हृदय कांदे
चन्दन लागे विस्वाद।
खोलो गुण्ठन, फेले दाओ आभरण
हाते राखो हात, तोलो आनत नयन।
वाहिरे वोहुक वातास
वक्षे लागुक मोर तव घन श्वास,
चम्पार डाले वसे मोदेर देखे
कुहु आर पापियाय फोरुक विवाद।

—"वत्ती वुझा दो, क्योकि चांद निकल आया। माला की क्या जरूरत, जवकि वाहु का वधन है। कमरे मे फूल न लाओ, अपने केशो की गध को ही मन मे हिलोरें लेने दो। यहां तो हृदय हृदय के लिए रो रहा है, इसलिए चदन मे कोई रस नही मिलता। घूघट के पट खोल दो, गहने दूर फेको, हाथ पर हाथ रक्खो,

झुकी हुई आखो को ऊपर उठाओ। वाहर तो हवा चले, और मेरे सीने पर तुम्हारी जल्दी-जल्दी ली हुई सास आकर वार करे। चपा की डाल पर बैठकर हम लोगों को देखकर कोयल और पपीहा आपस मे झगडे।"

इसी प्रकार वह एक अन्य गीत मे इसके लिए अपनी प्रेमिका से माफी माग रहे हैं कि यदि गलती से प्रेम कर लिया तो उसके लिए माफी दी जाय। असहाय मन मे प्रेम करने की इच्छा भला क्यो जगी ? वह कहते हैं—

भूल कोरे यदि मालोवेसे फेलि
क्षमियो से अपराध
असहाय मने कैनो जेगेछिलो
मालो वासिवार साध।
कतोजन आसे तव फुलवन
मलय भ्रमर चादेर किरण
तेमति आमिओ आसि अकारण
अपरूप उन्माद।

अर्थात्—

तुम्हारे उद्यान में न मालूम कितने आते-जाते है,
मलयवायु, भौंरे, चांद की किरणें,
उसी प्रकार मै भी अकारण आया हूं
एक अद्भुत पागल
तुम्हारे हृदयरूपी महाशून्य में सैकड़ों रवि, शशि, तारे जल रहे हैं।
उन्हीके वीच मे एक धूमकेतु की तरह
भटक कर आया था।

इस समय भी वंगला के साहित्य-क्षेत्र में वहुत-से ऐसे कवि है, जो कवीन्द्र-रवीन्द्र के युग मे ही विख्यात हो चुके थे। ऐसे कवियो मे कालिदास राय, कुमुद मल्लिक, यतीन्द्र वागची आदि कई सुपरिचित कवि है। उनकी कविताएं वरावर प्रकाशित होती रही, पर वे कभी विशेप चमक नही पाये। यह फिर भी द्रष्टव्य है कि यद्यपि ये कवि वहुत-कुछ क्लासिक इस अर्थ मे हो गये थे कि ये उन्ही घिसे-पिटे हुए रास्तो पर चलते थे, फिर भी पिछले कुछ वर्षों मे इनपर

आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियो का इतना जबर्दस्त प्रभाव पड़ा कि वे नये युग के नये विषयों को अनभ्यस्त दृष्टिकोण से देखने पर मजबूर हुए। उदाहरणस्वरूप श्री कालिदास राय ने खंडित वंग पर कविता लिखते हुए अफसोस किया कि हे वंगमाता, अब तुम सुजला, सुफला, शस्यश्यामला नही रहीं, ऋषि वंकिमचन्द्र ने जिसे मातृभूमि करके अभिनन्दित किया था, अब तुम वह नही रहो। आगे चलकर कालिदास राय कहते हैं—"हाय, तुम्हारे भाग्य में यह भी लिखा था कि अब तुम सीताराम राय, प्रताप चाद की माता नही रही!

यहां यह वता दिया जाय कि वंगाल के वहुत-से वड़े-वड़े व्यक्ति पूर्व वंगाल मे पैदा हुए, उल्लिखित सीताराम राय आदि इसी प्रकार के व्यक्तित्वों में हैं। कालिदास राय इस कविता में इसपर भी अफसोस करते हैं कि जिस पद्मा के कारण कवीन्द्र रवीन्द्र कवि हुए, वह पद्मा नदी अब तुम्हारी नही रही। कालिदास राय इस प्रकार अपनी क्लासिक, वल्कि गतानुगतिक ऊचाई से उतर-कर जनता के विषय को अपनाने पर भी उसमें मंज नही पाये और उसकी ऊपरी सतह को छूकर रह जाते हैं।

यतीन्द्र वागची का उल्लेख रवीन्द्रनाथ की परम्परा के प्रमुख कवि के रूप में किया गया है। यहां यह वता दिया जाय कि कोई भी कारण हो, रवीन्द्रनाथ की विशुद्ध परम्परा में कोई कवि-विशेष सफल नही हुआ। वताया गया है कि इसका कारण यह था कि रवीन्द्रनाथ ने जिन विषयों को छुआ, उन्हें उन्होंने स्वयं इतना दुह लिया कि उनमें कोई गुंजाइश ही नहीं वची, और उनमें कुछ करना नहीं रह गया। फिर भी यतीन्द्र वागची ऐसे कुछ कवियों ने एक हद तक सफलता प्राप्त की, और उन्होने रवीन्द्र की तकनीक को इतनी अच्छी तरह अपनाया कि विशेषज्ञ के लिए भी उनकी रचनाओ को गुरु की रचनाओं से अलग करके पहचानना कठिन हो गया। यतीन्द्र वागची वरावर इसी ढर्रे पर चले, पर अब नये युग की पुकार पर सुभापवावू ऐसे विषयों पर कविता लिखने के लिए अनुप्रेरित हुए।

वह 'सुभाप उद्देशे' नामक कविता में उस समय की वात लिखते हैं, जिन दिनों यह विवाद शुरू हुआ था कि सुभाप जीवित हैं या नही। वह अपनी कविता मे कहते हैं कि कोई कहता है—वह अभी जीवित हैं और किसी समय प्रक होकर देश के सारे दु:खों को पलक मारते ही दूर कर देंगे। कोई कहता है कि

वह तो शहीद हो गये। आगे कवि कहते हैं—

यहीं हैं हम साढ़े सोलह आने, यही हमारा देश
वातों से ही जीते हैं वातों से ही मरते हैं
वातें ही वातें हैं सारी
देशप्रेम का यही है स्वरूप, यही है रूप,
सुनाप की व्यथा इससे अधिक नहीं
वातों तक ही सीमित हैं हमारी परेशानियां।

इस प्रकार पुराने ढर्रे के एक अन्य कवि श्री कुमुदरंजन मल्लिक हैं। मैं एक वात यहांपर साफ कर दूं कि कवीन्द्र के व्यक्तित्व के कारण उनके समसामयिक वहुत-से कवि अपनी प्राप्य मर्यादा या सम्मान प्राप्त न कर सके। यदि रवीन्द्रनाथ वंगला में पैदा न होते तो कुमुदरजन मल्लिक, कालिदास राय, यतीन्द्र वागची आदि ही कितने कवि वहुत अधिक सम्मानित होते और वंगाल के वाहर उनका नाम सुनाई पड़ता। पहले ही हम श्री द्विजेन्द्रलाल उर्फ डी० एल० राय का उल्लेख कर चुके है, जो वहुतो के अनुसार रवीन्द्रनाथ के अभाव मे वंगाल के सबसे वड़े कवि माने जाते। अपने नाटको के कारण वह हिन्दी-जगत् में सुपरिचित हैं। हम श्री सत्येन्द्र दत्त का भी उल्लेख कर चुके है, जो अरवी, फारसी, अंग्रेजी, चीनी, जापानी कविताओ के वगला कविता मे अनुवाद के क्षेत्र में इतना काम कर चुके हैं कि वह उसीके लिए अमर हो गये। इसके अतिरिक्त उनका मौलिक कार्य भी है। वंगला कविता का क्षेत्र यथेष्ट विशाल हो चुका है।

हां, तो कुमुदरजन मल्लिक अपने क्षेत्र के एक अच्छे कवि माने गये हैं। वह भी इस नये युग में कमर सीधी रखकर चलनेवाली ग्रामवधू की ओर से दृष्टि हटाकर दूसरी वातो पर लिखने लगे हैं, फिर भी उनका इस तरह मोड़ वदलना वहुत आंशिक है।

इसके वाद हम उन कवियो पर आते हैं, जो सचमुच ही नये हैं। ये नये कवि अपनेको रवीन्द्रनाथ के विद्रोही घोषित करके सामने आये हैं, पर प्रश्न तो यह है कि क्या वे सम्पूर्ण रूप से रवीन्द्र-प्रभाव से मुक्त हो सके हैं? इसका उत्तर हां और ना दोनों में देना पडेगा। ये कवि रवीन्द्रनाथ के दर्शन, जीवन के प्रति दृष्टि-कोण से अक्सर सम्पूर्ण रूप से मुक्त हो चुके है, इनका आवेदन वहुत-कुछ जन-वादी है, फिर भी वे रवीन्द्र की जादूभरी भाषा और शैली से सम्पूर्ण रूप से

मुक्त नही हो सके। इस भूमिका के वाद अतिआधुनिक कवियों के सम्वन्ध मे कुछ वताया जाता है। इस सक्षिप्त आलोचना मे वहुत-से महत्वपूर्ण कवि छूट जायंगे, पर जहांतक हो सकेगा, सव धाराओं के प्रति न्याय करने चेष्टा की जायगी।

रवीन्द्रोत्तर युग पर आते हुए स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या रवीन्द्रनाथ के जीवन-काल के अन्तिम दिनो के तथा रवीन्द्रोत्तर युग के कवि कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रभाव से मुक्त हो चुके है? इसका उत्तर एक वाक्य में देना सम्भव नही है। हमने पहले ही वताया कि जिस समय कवीन्द्र रवीन्द्र वंगला के साहित्याकाश मे पूरी प्रतिभा के साथ चमक रहे थे, और ऐसे वह अन्त तक चमके, उस समय भी अच्छे-अच्छे कवि अपने लिये स्वतन्त्र दिशाओं मे क्षेत्र का निर्माण कर रहे थे। ऐसा न समझा जाय कि इस प्रभाव-मुक्ति का आन्दोलन सम्पूर्ण रूप से सज्ञानकृत था, या उसमें और कोई प्रभाव काम कर रहा था। चाहे रवीन्द्रनाथ के जीवनकाल मे हो या उनकी मृत्यु के वाद हो, किसी भी वगला कवि के सम्वन्ध में यह कहना सम्भव नही है कि वह सम्पूर्ण रूप से रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त हो गया है, यहातक कि जिन लोगों ने इस वात को अच्छी तरह से समझ लिया कि किसी भी हालत मे कविता की नदी को उस जमीन पर वहाना नही है, जिसपर रवीन्द्रनाथ ने वहाया, वे भी उनके दर्शन से सम्पूर्ण रूप से मुक्त रहते हुए भी उनकी जादूभरी भाषा और शैली से पूर्ण मुक्ति नही प्राप्त कर सके। ऐसा कहना सही नही होगा कि कोई भी वंगला-लेखक या कवि सम्पूर्ण रूप से रवीन्द्र-प्रभाव से मुक्त हो गया।

फिर भी यह तथ्य भी उतनी ही दृढता के साथ मानना पड़ेगा कि वरावर उनसे मुक्ति का प्रयास हुआ और अतिआधुनिक कवियो के क्षेत्र मे यह मानना ही पडेगा कि वे केवल परोक्ष रूप से ही रवीन्द्र-प्रभाव से प्रभावित माने जा सकते है।

हम पहले ही वता चुके हैं कि अतिआधुनिक कवियों के सम्वन्ध मे कुछ व्यौरे-वार तरीके से कहना सम्भव नही है। जीवनानन्द दास को अतिआधुनिक कवि कहा जा सकता है। उनके सम्वन्ध मे यह कहा गया है कि उनकी कविता कुछ धुंधली होती है। क्या यह धुंधलापन आधुनिकता का कोई अनिवार्य गुण है? नही, ऐसा तो नहीं मालूम होता, क्योंकि कई अतिआधुनिक कवि ऐसे हैं, जिनकी

हुए कभी उधर बहते हुए, बंगाली मध्यवित्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। उन्होंने अक्सर प्रेम-सम्बन्धी कविताएं भी लिखी है। एक कविता का अंश यों है—

जनान्तिके
तोमा के देखार मत चोख नेइ—तवु
गभीर विस्मये आमि टेर पाइ—तुमि
आजो एइ पृथिवीते 'रये गेछ,
कोयाओ सान्त्वना नेइ पृथिवीते आज,
बहुदिन थेके शान्ति नेइ।
नीड़ नेइ
पाखिर मतन कोनो हृदयेर तरे।
पाखि नेइ।
मानुषेर हृदयके न जागाले ताके
भोर, पाखि, अथवा वसन्तकाल बोले
आज तार मानवके कि करे चेनाते पारे केउ।
चारिदिके अगणन मेशिन ओ मेशिनेर देवतार काछे
निजेके स्वाधीन बोले मने करे निते गिये तवु
मानुष एखनओ विश्रृंखल।
दिनेर आलोर दिके ताकालेइ देखा जाय लोक
केवलि आहत हये मृत हये स्तब्ध हय
ए छाड़ा निर्मल कोनो जननीति नेइ
ये मानुष—से जेइ देश टिके थाके सेइ
व्यथित हय—राज्य गढ़े-साम्राज्येर मत कोनो भूमा
चाय। व्यक्तिर दाविते ताइ साम्राज्य केवलि भेंगे गिये
तारइ पिपासाय
गड़े ओठे
ए छाड़ा अमल कोनो राजनीति पेते हले तवे
उज्ज्वल समय स्रोते चले जेते हय।
सेइ स्रोत आजो एइ शताब्दीर तरे नय।

सकलेर तरे नय।
पंगपालेर मत मानुषेरा चरे
झरे पड़े।

अर्थात्—

तुमको देखने योग्य आंख नहीं है, फिर भी
अत्यन्त गहरे विस्मय से मुझे ज्ञात होता है कि तुम
आज भी इस पृथ्वी पर रह गये हो।
आज पृथ्वी मे कहीं भी सान्त्वना नहीं है,
बहुत दिनों से शान्ति नहीं है
नीड़ नहीं है चिड़िया की तरह किसी हृदय के लिए,
चिड़िया नहीं है।
मनुष्य के हृदय को न जगाने पर उसे
सवेरा, चिड़िया या वसन्तकाल कहकर
आज उसके मानव को कैसे कौन परिचित करवा सकता है।
चारों ओर
अनगिनत मशीन और मशीनों के देवताओं के निकट
अपनेको स्वतन्त्र करके
समझने पर भी
मनुष्य है अब भी विशृंखल।
दिन की रोशनी की तरफ ताकने
पर ही देखा जाता है कि लोग
बराबर आहत होकर, मृत होकर, स्तब्ध हो जाते हैं,
इसके अलावा नहीं है निर्मल कोई जननीति।
जो मनुष्य और जो देश टिक जाते हैं,
वे ही क्रमशः व्यक्ति बनते है और राज्य बन जाते हैं,
साम्राज्य की तरह
किसी भूमा को
चाहते हैं।
इसीलिए व्यक्ति के दावे के कारण साम्राज्य टूटकर

फिर उसीकी पिपासा से
निर्मित हो जाते हैं।
इसके अतिरिक्त कोई निर्मल राजनीति पाना हो तो
उज्ज्वल समय स्रोत में चला जाना पड़ता है।
वह स्रोत आज भी इस शताब्दी के लिए नहीं है,
सबके लिये नहीं है।
टिड्डी दल की तरह मनुष्य चरते हैं,
फिर झर पड़ते हैं।

यह स्पष्ट है कि इस कविता मे, जैसा कि बताया जा चुका है, बड़ी-बड़ी भावनाएं झांकी-सी लेते रहने पर भी किसी स्थान पर सुगठित होकर स्पष्टता के साथ आगे नही आ पातीं। इसमे पहले वे चारो तरफ फैली हुई विश्रृंखलता का इंगित करते है, कुछ मशीन और मशीन के देवताओं के विषय में इस प्रकार की बात कहते हैं कि मनुष्य अपनेको स्वतन्त्र समझने पर भी अब भी विश्रृंखल है। फिर वह कहते हैं कि कोई निर्मल जननीति नही है। जो मनुष्य और जो देश टिक जाते है, वे ही क्रमशः व्यक्ति बनते है और राज्य बन जाते हैं। फिर कहते हैं कि व्यक्ति के दावे के कारण साम्राज्य टूटकर फिर उसीकी पिपासा से निर्मित हो जाते हैं। अब यह कहा जाय कि कुछ भी समझ में नहीं आता तो ऐसी बात नही, पर क्या समझ मे आता है, इसे कहना टेढ़ी खीर है।

जीवनानन्द प्रेम के भी कवि है। उनकी कविता 'वनलता सेन' पढ़े-लिखे लोगो मे उतनी ही प्रसिद्ध हो चुकी है, जितनी कि कोई कविता हो सकती है। हिन्दी में भी कई बार इनका अनुवाद आ चुका है। इस कारण मैं यहांपर 'आकाश लीना' नामक एक कविता प्रस्तुत करूंगा। उसके पहले यह बता दिया जाय कि जीवनानन्द दास उस धारा के प्रतीक हैं, जिसे हिन्दी में नई कविता कहते हैं और जिसके सम्बन्ध में हिन्दी मे अभी तक बहुत तर्क-वितर्क जारी है। बगला में यह कथित नई कविता इस प्रकार से रंगमंच पर आई कि किसीको अखरी नही। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने उसका आवाहान किया था। बंगला में नई कविता-वालों ने यह दावा भी नही किया कि वह पुरानी कविता को समाप्त करने के लिए उदित हुई है।

जो हो, 'आकाशलीना' इस प्रकार है—

सुरंजना, वहां पर तुम मत जाओ,
उस युवक के साथ बतकही न करो,
लौट जाओ हे सुरंजना,
नक्षत्र की रुपहली भरी रात में
लौट आओ इस मैदान में, तरंगो में,
लौट आओ मेरे हृदय में।
दूर से दूर—और दूर
युवक के साथ तुम और न जाओ।
उसके साथ कैसी बातें? उसके साथ?
आकाश की आड़ में, आकाश में,
मिट्टी की तरह हो तुम आज
उसका प्रेम घास होकर उगता है।
सुरंजना,
तुम्हारा हृदय आज घास है,
बतास के ऊपर बतास
औ' आकाश के उस पार आकाश है।

दूसरी कविता 'आरूढ़ भणिता' है, जिसमे कवि ने, मालूम होता है, अरसिक आलोचकों की खबर ली है। वह इस प्रकार है।

मैंने मलिन हँसी हँसकर कहा,
"तो बल्कि आप ही एक कविता क्यों न लिख डालें।"
पर छायापिंड ने कोई उत्तर नहीं दिया।
समझ गया कि वह कवि तो नहीं,
सिर पर चढ़ाई हुई बतकही मात्र है।
पांडुलिपि, भाष्य, टीका, स्याही और कलम पर
बैठा है वह सिंहासन में।
वह कवि नहीं, वह अजर अक्षर अध्यापक है,
उसके दांत नहीं हैं, उसकी आंखों में अक्षय कीचड़ है,
पगार हज़ार रुपये महीना है,

श्रौर डेढ़ एक हजार वह मरे हुए कवियों का
गोश्त श्रौर उसके कीड़ो को खोटकर बना लेता है।
यद्यपि उन सब कवियों की भख ने
प्रेम-अग्नि की सेंक चाही थी,
पर मुंह बाए घड़ियाल की तरंगों में
वे लोट-पोट हुए थे।

रात्रि को कवि जिस रूप मे देखते है, उसका कुछ वर्णन इस प्रकार है—

सार्वजनिक नलके को खोलकर
कोढी चाट लेता है पानी।
या वह नलका फंस गया था।
श्रब दोपहर सुप्त नगरी पर
गिरोह बांध कर छा जाता है।
एक मोटरकार भेड़ की तरह खांस गई
अस्थिर पेट्रोल झाड़ कर,
निरन्तर सतर्क रहने पर भी कोई शायद
भयानक रूप से पानी में गिर पड़ा है।
तीन रिक्शे दौड़कर मिल गए अन्तिम
गैस बत्ती में, मायावी की तरह जादू से।
मैं भी फियरलेन छोड़कर हठवश
मील पर मील चलकर, दीवार से सटकर
जा पहुंचा वेंटिक स्ट्रीट में, टेरिटी बाजार में
मूंगफली की तरह सूखी बतास में।
अलसाई हुई रोशनी की गर्मी कपोल को
चूमती है
चीड़ बक्स की लकड़ी, लाख, टाट, चमड़े की बू
डायनेमो की गूंज के साथ मिलकर
धनुष की डोरी को तान रखते है।

अपने सम्बन्ध मे कवि एक कविता मे कहते है—

हे नर, हे नारी !
मैंने तुम्हारी धरती को किसी दिन
पहचाना नहीं,
फिर भी मैं किसी दूसरे नक्षत्र का जीव नहीं हूं ।
जहां स्पन्दन, संघर्ष, गति, उद्यम, चिन्ता, कार्य,
वहीं सूर्य, धरती, बृहस्पति, कालपुरुष, अनन्त आकाश,
ग्रन्थियां,
सैकड़ों सुअरों का चीत्कार वहां है,
सैकड़ों सुअरियों की प्रसव-वेदना का आडम्बर है,
यह सब भयानक आरती है ।
गंभीर अन्धकार की नींद के जायके मे
मेरी आत्मा का लालन हुआ है,
मुझे भला जगाना क्यो चाहते हो ?
हे समय ग्रन्थि, हे सूर्य, हे माघनिशीथ की कोयल,
हे स्मृति, हे हिमवायु, मुझे भला क्यों जगाना चाहती हो ?

अन्त मे वह कहते है कि मैं किसी दिन नही जागूंगा । इस कविता से आधुनिक मध्यवित्त वर्ग के मन की कुछ थाह मिलती है या यह कहा जाय कि उसमे व्याप्त गड़बड़ियों और विभ्रमो का पता लगता है और थाह मिलने की रही-सही आशा दूर हो जाती है ?

जीवनानन्द दास इस युग मे फैली हुई उद्भ्रान्तता तथा गुमराही का अच्छा चित्रण करते हैं। यदि वह इसमे से कोई रोशनी की रेखा नही निकाल पाते तो उसके लिए उन्हें दोष देना व्यर्थ है । वह क्रान्ति के कवि नही हैं । उनकी कविता मे क्रान्ति का बिगुल नही सुनाई देता । फिर भी उसे महत्व प्राप्त है, क्योकि वह एक मुकुर है, जिसमे हम आधुनिक युग के भारतीय पढे-लिखे वर्ग के हृदय-स्पंदन को अच्छी तरह प्रतिफलित देखते है । यह हृदय क्लान्त है, इसे पथ का कोई पता नही है, पर सौन्दर्य के प्रति इसकी आखे खुली हुई हैं । उसे प्रकृति से प्यार है । यह इतना विदग्ध है कि जब किसी वस्तु को प्रत्यक्ष करता है तो वह उसके साथ-साथ बहुत-सी और वस्तुओ को भी देखता है । वह कभी किसी वस्तु को बिना कविता के नही देख पाता, फिर भी वह भ्रान्त और उद्भ्रान्त है ।

जीवनानन्द इसी उद्भ्रान्ति और सौन्दर्य-वोध के प्रतीक है।

अब हम इस युग के दूसरे कवि सुभाष मुखोपाध्याय को लेते है, जो खुलकर यह कहते है कि वह किसान और मजदूरों के कवि हैं। उनकी कविता की वक्तव्य-वस्तु जीवनानन्द दास की तरह अस्पष्ट नही है, पर इसीको बहुत-से लोगो ने दोष वताया है। सुप्रसिद्ध आलोचक श्री बुद्धदेव वसु का यह कहना है कि सुभाष तो कविताओ में व्याख्यान-से देते दृष्टिगोचर होते हैं, और वह कविता के क्षेत्र से उतरकर भर्त्सनाए देने, तरह-तरह के मुंह बनाने और सन्देश देने में पड़ गये हैं। उनकी एक छोटी-सी कविता इस प्रकार है—

केजाये ?
आमरा।
आमरा गांगेर,
आमरा शहरेर
हाड़काली मनुषा
चलेछि मिछिले।
हाते कि ?
निशान।
कोथाय जाओ ?
दमन राजार
दरबारे
थामो।
ना।
वाधा दिलेओ—
ना।
संगीन विंधलेओ
ना।
रास्ता दाओ।
आमादेर जेतेइ हबे
मिछिले।

अर्थात्—

कौन जा रहा है ?
हम ।
हम गांव के हैं,
हम शहर के हैं
काली हड्डी वाले मनुष्य ।
हम जलूस में चल रहे हैं ।
हाथ में क्या है ?
झण्डा ।
कहां जा रहे हो ?
दमन राजा के दरबार में।
रुको ।
नहीं ।
बाधा देने पर भी...।
नहीं ।
संगीन से छिदने पर भी...।
नहीं ।
रास्ता छोड़ दो
हम लोगों को जाना ही है
जलूस में ।

ऊपर जो कविता दी गई है, वह साम्यवादियो के बंगला दैनिक 'स्वाधीनता' में छपी थी, इसलिए स्वाभाविक रूप से उसमे प्रचार का अंश अधिक है। पर यह न समझा जाय कि सुभाष मुखोपाध्याय की सभी कविताएं ऐसी है । सुभाष अपने पूर्ववर्ती दशक के कवि प्रेमेन्द्र मित्र से बहुत-कुछ मिलते है, पर जैसा कि कहा गया है, प्रेमेन्द्र मित्र ने भी यद्यपि अपना जीवन यह कहकर शुरू किया कि वह कुलियों और दलितो के कवि है, फिर भी बाद को वह उससे हट गए, पर कम-से-कम वही उनका एकमात्र रूप नही रहा, पर सुभाप ने जो बाना पहन लिया, वह उसी को निभाते रहे ।

सुभाष मुखोपाध्याय न केवल अपनी धारा के एक विशिष्ट कवि हुए, बल्कि वह एक हद तक समरसेन के साथ इस धारा के अग्रणी माने गये । सुप्रसिद्ध

आलोचक अबूसईद अयूब ने अपनी आधुनिक बगला कविता-सम्वन्धी पुस्तक में यह कहा था कि समरसेन और सुभाष मुखोपाध्याय मे प्रचुर सम्भावनाएं है, पर वाद को दूसरे समालोचको ने उनमे उन सम्भावनाओ को फलते-फूलते नही देखा। यहांपर चलते हुए यह वता दिया जाय कि समरसेन उन कवियों मे से है, जिन्होने केवल गद्य-काव्य के ढंग की चीजे लिखी है। उनकी कविताएं गद्य-काव्य के रूप मे होने पर भी गीतधर्मी है, कम-से-कम यही आभास मिलता है। श्री वुद्धदेव वसु का यह विचार है कि उनकी कविताएं एक ऐसी वाला की तरह है, जो हिलने-डुलने मे वल खाती है, साथ ही वडी चुस्त है। पहले सुभाष राजनीति से सम्वद्ध नही थे, पर वाद को वह राजनैतिक कविताएं लिखने लगे।

सुभाष के सम्वन्ध मे वल्कि यह भी कहा गया कि जिन लोगो ने साम्यवादी ढंग की कविताएं लिखी, वे भी सुभाष मुखोपाध्याय द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर नहीं चले। जहां सुभाष मुखोपाध्याय मे प्रचलित समाज-व्यवस्था के सम्वन्ध में सन्देह और व्यंग का वातावरण है और जहां उनकी कविता मे केवल कोड़े लगाने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है, वहा इसी प्रकार के दूसरे कवियो मे वर्तमान को वदल डालने के लिए अधिक-से-अधिक आग्रह के साथ जीवन के प्रति गहरी श्रद्धा और मनुष्य के प्रति प्रेम की भावना अधिक है। यह कहा जा सकता है कि वंगला कविता ने निपट राजनैतिक मार्ग को छोड़कर जीवन की समस्याओं को, जिसमे राजनीति भी आ जाती है, एक ऊंची सतह पर अपनाकर अपने लिए अच्छा ही किया। श्री अबूसईद अयूव ने यह जो लिखा था कि आधुनिक वंगला कविता से रोमांन्टिक भावधारा लुप्त होती जा रही है, वह वात सत्य प्रमाणित नहीं हुई। सच्ची वात यह है कि रोमाटिकता ने एक क्रान्तिकारी दिशा अपनाई, या यों कह लीजिये कि क्रान्तिकारी भावनाओ ने रोमाटिकता का वाना पहन लिया, जिससे शायद दोनो को फायदा हुआ।

फिर भी, कही ऊपर सुभाप मुखोपाध्याय की जो कविता दी गई है, उससे यह भावना किसीके मन मे न वैठ जाय कि प्रगतिवादी कवियो ने केवल प्रचार-कार्य को ही अपनाया। यह सही है कि राजनीति प्रगतिशील कवियो की एक प्रधान उपजीव्य रही; यह तो स्वाभाविक था, क्योंकि आज सभी क्षेत्रो की अन्तिम लड़ाइया राजनीति में लड़ी जाती है, और उसमे जैसा निर्णय होता है, उसीके अनुसार कला, साहित्य, संगीत, सवका भाग्य-निर्णय एक वड़ी हद तक

होता है। विमलचन्द्र घोष ऐसे अन्यथा शक्तिशाली कवि की 'बाजपाखी' या बाज पक्षी नाम के कविता के कुछ अंश का अनुवाद प्रस्तुत करेंगे। इसमे प्रचार-कार्य है, अमरीका के विरुद्ध विद्वेष है, शायद इस कारण कुछ लोगो को यह पसन्द न आवे, पर साथ-ही-साथ यह मानना पडेगा कि इसमे कविता के उपादान भी है। मैं केवल थोड़े-से अंश का ही अनुवाद दूंगा।

अब्राहम लिंकन के हृदपिण्ड को चोंच में दबाकर
विश्व लोभी बाज उड़ता है।
वह धूसर पीला मृत्युदूत है,
उसके गिद्ध ऐसे टेढ़े नाखूनों में गणतन्त्र खून के आंसू रो रहा है।
मूर्त अमंगल कुटिल बर्बर पक्षी उड़ता है
निग्रोघाती दम्नासुर, सभ्यता का यम
शिशु रक्त से सिक्त ओठों को लेकर
यह बाज कोरिया में उड़ता है
मचूरिया, फारमोसा में—
पड़ती है उसकी अशुभ पीली छाया
वह घृणित बाज यह जानता है
कि पतन तो होकर रहेगा।

—इत्यादि।

इस प्रकार से यह कविता चलती जाती है। यह न समझा जाय कि इसके कवि श्री विमलचन्द्र घोष ने केवल इसी प्रकार की कविताए लिखी हैं। 'सावित्री' नाम से उनका एक काव्य प्रकाशित हुआ है, जिसमे वे 'तिलोत्तमा' नामक सर्ग में यों लिखते है—

सहस्र कर्मो के बीच में स्मृति के एकांत दर्पण में
बार-बार वह मुखड़ा लरजता रहता है
देव-दैत्य-विजयिनी उस तन्वी की ऋजुता,
दोनों आंखों में बिजली का उज्ज्वल भौरा,
उसकी कुन्तल-नागिनी याद पड़ती है।
वासना के दुखी लोक में यौवन पहरेदार हैं,
काव्य लोक मेघाच्छन्न है।

हे मेरी वन्दिनी नायिका, दुर्गम स्वप्न के दुर्ग में
ग्रतनु तुमको ग्राज भी वह परिक्रमा कर रहा है।
सारी रात स्मृति की शिखा से दीप जलाकर
विह्वल ग्रात्मा में
प्रेम की कविता लिखता हूं,
तिल-तिल करके शोणित के स्वाप्निक ग्रक्षरों में।
ग्रयि तिलोत्तमा,
ग्राज भी तुम हृदय के ग्रस्फुट भाषण में ग्रपलक हो।

श्री विमल घोष की दोनो कविताग्रों की विषय-वस्तु की तुलना करने पर यह ज्ञात होगा कि हमने यह क्यो कहा कि यद्यपि वाज पक्षीवाली कविता एक विशेष उद्देश्य को लेकर लिखी गई, फिर भी उसमें कविता की छाप निस्संदेह है।

ग्रव मैं एक ऐसे कवि सुकान्त भट्टाचार्य पर ग्राता हूं, जो वहुत थोड़े साल तक ही जीवित रहे, पर वंगला-साहित्य पर ग्रपनी छाप छोड गये। उनकी कवित्व-शक्ति उतनी ही नि सदिग्ध है, जितनी कि उनकी प्रगतिशीलता। वह किसी वात को लट्ठमार तरीके से कहने के ग्रादी नही, पर इसके कारण उनकी वक्तव्य-वस्तु न तो किसी दूसरे के मुकावले कम स्पष्ट है ग्रौर न उसमें कोई गोलमोल वाते ही है। वह ऊंची सतह से ग्रपने रावण या कंस पर हमला करते हैं, पर इसके लिए उनका ग्राक्रमण न तो व्यर्थ जाता है, ग्रौर न उसकी प्रखरता में ही कोई कमी ग्राती है। स्वय सुभाष मुखोपाध्याय ने सुकान्त भट्टाचार्य की कविताग्रों के प्रथम संग्रह की भूमिका लिखते हुए यह स्वीकार किया था, "सुकान्त नये युग के सार्थक कवि हैं। साधारण मनुष्य के साथ ऐसी एकात्मकता, सरल वात को सीधे-सीधे कह सकने की दु:साहसी सामर्थ्य सुकान्त के समसामयिक ग्रौर किसी कवि मे दृष्टिगोचर हुई या नही, इसमे सन्देह है। उम्र मे सवसे छोटे होने पर भी सुकान्त कवित्व-शक्ति मे ग्रग्रगण्यों मे से एक थे। स्कूल में छात्र रहते समय सारे देश मे इतनी विराट् ख्याति वंगला के किसी ग्रौर कवि को नसीव नही हुई। उसी उम्र मे सुकान्त की एक से ग्रधिक कविताग्रों का ग्रनुवाद विदेश में हुग्रा ग्रौर उसकी कविता पर ग्रालोचना भी हुई। जो लोग सुकान्त की कविता पढ़ेंगे, वे इस वात को स्वीकार करने के लिए मजवूर

होंगे कि सुकान्त की कविता न केवल विराट् सम्भावनाओं के इंगित स्वरूप है, बल्कि उसमे महान् परिणति की स्पष्ट ध्वनि है। इसीलिए उनकी 'छाड़पत्र' नामक कविता को बगला-साहित्य मे स्थायी आसन प्राप्त हो गया। कविता के विचित्र कला-कौशल मे, छन्द की आश्चर्य-दक्षता मे, शब्द-निर्वाचन की अशेष निपुणता मे इस किशोर कवि ने राजनैतिक विरोधियो को भी अभिभूत कर दिया, पर ऊपरी तामझाम के मोह मे सुकान्त कवि बंधे ही नही।"

छाड़पत्र

ये शिशु भूमिष्ठ होलो आज रात्रे
तार मुखे खबर पेलुम :
से पेयेछे छाड़पत्र एक,
नतुन विश्वेर द्वारे ताइ व्यक्त करे अधिकार
जन्ममात्र सुतीव्र चित्कारे।
खर्वदेह निःसहाय, तबु तार मुष्टिवद्ध हात
उत्तोलित, उद्भासित
की एक दुर्बोध्य प्रतिज्ञाय।
से भाषा बोझे ना केउ,
केउ हासे, केउ करे मृदु तिरस्कार।
आमि किन्तु मने मने बुझेछि से भाषा
पेयेछि नतुन चिठि आसन्न युगेर—
परिचय-पत्र पढि भूमिष्ठ शिशुर
अस्पष्ट कुयाशामरा चोखे।
एसेछे नतुन शिशु, ताके छेड़े दिते हवे स्थान :
जीर्ण पृथिवीते व्यर्थ, मृत आर ध्वंसस्तूप-पिठे
चले जेते हवे आमादेर।
चले यावो—तबु आज यतक्षण देहे आछे प्राण
प्राणपणे पृथिवीर सरावो जंजाल,
ए विश्वके ए शिशुर वासयोग्य करे यावो आमि—
नवजातकेर काछे ए आमार दृढ़ अंगीकार।

अवशेषे सब काज सेरे
आमार देहेर रक्ते नतुन शिशुके
करे यावो आशीर्वाद,
तारपर हवो इतिहास ।।

अर्थात्—
आज रात में जो बच्चा भूमिष्ठ हुआ,
उसके मुंह से यह खबर मिली कि
उसे एक पासपोर्ट मिला,
इस कारण नये विश्व के द्वार में वह सुतीव्र कोलाहल से
अपने अधिकार को जन्म पाते ही जताता है।
नन्हा-सा शरीर है, फिर भी मुट्ठी वंधी हुई है,
उत्तोलित और उद्भासित है
एक दुर्बोध्य प्रतिज्ञा में।
उस भाषा को कोई नही समझता,
कोई हंसता है, कोई मृदु तिरस्कार करता है।
पर मैंने मन-ही-मन उस भाषा को समझ लिया है,
मैंने आसन्न युग की नई चिट्ठी पा ली है।
मैंने भूमिष्ठ शिशु की अस्पष्ट कोहराभरी आंखों में
उसका परिचयपत्र पढ़ लिया है।
नया शिशु आया है, उसके लिए स्थान छोड़ देना पड़ेगा।
इस जीर्ण पृथ्वी पर से व्यर्थ, मृत और खंडहरों को पीठ पर
वांधकर
हमें चल देना पड़ेगा
तो चला जाऊंगा, पर जवतक देह में प्राण हैं,
भरसक पृथ्वी के कूड़े को दूर करूंगा,
इस नवजात शिशु के निकट यह है मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा कि
इस विश्व को हम इस शिशु के रहने लायक वना जायंगे।
अन्त में सव काम समाप्त कर
अपनी देह के रक्त से नये

शिशु को आशीर्वाद दे जाऊंगा,
इसके बाद इतिहास हो जाऊंगा।

आधुनिक कवियो मे विष्णु दे भी महत्वपूर्ण है। उनपर एज़रा पाउण्ड और टी० एस० इलियट का प्रभाव पडा है। विष्णु दे के सम्बन्ध मे श्रीअमलेन्दु दास गुप्त का यह कहना है कि उनके प्रयोग बहुत साहसपूर्ण हुए हैं, पर उनके प्रारम्भिक प्रयासो मे शायद गहरी अभिज्ञता की कमी थी और इसके फलस्वरूप शिल्पगत उच्चता के बावजूद उनमे हृदय को आन्दोलित करने की शक्ति अक्सर नही आती। यत्र-तत्र असंदिग्ध सौन्दर्य के टुकडे, सूक्ष्म शहरी व्यंग की पंक्तिया तथा अनिश्चित भावनात्मक शक्ति है, पर कुल मिलाकर इन कविताओ से यह छाप उत्पन्न नही होती कि उनके पीछे एक सगठित चेतना है, कई अवसर पर तो ऐसा मालूम होता है कि उनकी एकमात्र बड़ाई इस बात मे है कि शिल्प की दृष्टि से वह बहुत काफी आगे बढी हुई है। उनकी सफल कविताओं में भी सब ऐसा पाया जाता है, मानो उनकी विचार-प्रवृत्तियो मे जान-बूझकर कड़ियो को क्रम से नही रक्खा गया है। अवश्य ही दास गुप्त यह भी मानते है कि कवि ने जनता के सामाजिक तथा राजनैतिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है। विष्णु दे को कुल मिलाकर एक प्रगतिशील कवि माना जाता है।

एक अन्य कवि श्री अमिय चक्रवर्ती का सम्बन्ध श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर से बहुत अधिक था, फिर भी वे केवल अनुकरणकारी नही रहे है। अमिय चक्रवर्ती ने सारी दुनिया का बार-बार पर्यटन किया है। इस भ्रमण की छाप उनकी कविता पर पड़ी है। एक मज़े की बात यह है कि रवीन्द्रनाथ ने अपनी भ्रमण-कहानियों के अतिरिक्त अपने भ्रमण का जिक्र बहुत कम किया है, कविता मे तो वह कभी बंगाल के बाहर के वातावरण मे शायद ही जाते हो, पर श्री चक्रवर्ती की बात और है। उन्होने बराबर बाहर से अनुप्रेरणा ली है और उनकी कविताओ मे हमे अजीब देशो, चेहरों तथा भाषाओ से साबका पड़ता है। यदि अन्तर्गत वस्तु की दृष्टि से देखा जाय तो रवीन्द्रनाथ की कविता मे विश्ववासी के लिए सर्वत्र आवेदन होते हुए भी उनका पहिनावा भारतीय और बंगाली है, पर श्री चक्रवर्ती एक बंगाली मन रखते हुए भी उनके मन के लेन्स का मुंह बहुत अधिक बंगाल के बाहर के लोगो, दृश्यो आदि की ओर निबद्ध है। इस अर्थ मे वह रवीन्द्रनाथ

से अलग ढग का विश्व-आवेदन रखते है।

श्री सुधीन्द्रदत्त भी एक प्रमुख कवि माने जा सकते है। रवीन्द्रनाथ के जीवन-काल मे ही वह विख्यात हो चले थे और रवीन्द्रनाथ ने उनकी प्रशंसा मे कुछ लिखा भी था। सुधीन्द्र कवीन्द्र से बहुत-कुछ लेते है, फिर भी उनकी प्रकृति बिल्कुल उन्हींकी अपनी है। सुधीन्द्र ने बराबर यह माना कि वह रवीन्द्र-साहित्य के ऋणी है, और जैसा कि कवीन्द्र ने उनकी प्रशस्ति करते हुए कहा था, उनका यह साहस शक्ति से उत्पन्न है। जिसमे शक्ति होती है, वही बिना किसी प्रकार के लगाव-छिपाव के अपने ऋण को मान लेता है। सुधीन्द्र कुछ अधिक उम्र मे काव्य-क्षेत्र मे आये और यह कहा जा सकता है कि इससे उनको कोई हानि नही हुई क्योंकि यौवन के साथ जिस जोश का सम्बन्ध बताया जाता है, उनकी रचनाओ मे उस जोश की कोई कमी नही थी। फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि सुधीन्द्र की कविताएं गत दशक की उतनी नही है, जितनी कि पहले दशको से उनका सम्बन्ध है।

इधर कुछ और भी शक्तिशाली कवि हुए है, जिनकी कविताओ का एकाध नमूना ही देखकर हमे सन्तोष करना पडेगा। नये कवियो में पलायनवादी किस्म की कविताएं लिखने का भी रिवाज है, जैसे लीजिये अरुणकुमार सरकार की 'नीद' नामक कविता, जिसमे वह रूखे वर्तमान से अपनेको त्रस्त दिखलाते हुए ही उसे बदलने का कोई प्रयास न कर निद्रा की गोद में आश्रय लेने मे ही अपने पुरुषार्थ की इतिश्री समझते हैं। वह कहते है—

> सारा दिन अनात्मीय रूखे वातावरण में बीत गया,
> हे रात्रि, मेरी विनती सुनो, मित्र हो जाओ, आंखें लाल-पीली न करो।
> मुझे सिर्फ नींद दो, मुझे उस अज्ञात लोक मे ले जाओ,
> जहां स्मृति की लाश शुरू से आखिर तक अंधकार से घिरी हुई मोटी
> चादर में पड़ी है ढकी
> नहीं, नहीं है, कुछ नहीं है, नही यह देह मन कुछ नही है,
> रोजमर्रा की भौंहे चढ़ाना, निरानन्द कुत्ते की पुकार,
> और दूर आकांक्षा की टेढ़ी रेखा एक अप्रतिम नदी है,
> यदि मुझे ऐसी नींद मिले जिसमे मैं डूब जाऊं...
> हे रात्रि, मेरी विनती सुनो।

दया करो जो शरणागत हैं, सिर नवा रहा है उसकी देह को उठा
कर पकड़ो।

श्री अरुणकुमार एक अन्य कविता मे अपने जीवन-दर्शन को इस प्रकार व्यक्त करते है—

इस अगहन में नहीं कोई आनन्द है
कलकत्ते की सन्ध्या में धूएं से धूसर मन मे।
जो सान्त्वना है तो इतनी है कि तुम हो और मृत्यु है,
इसलिए रात्रि की अस्पष्ट गन्ध में रक्त उठता है नाच आशा से।

एक कवि मंगलाचरण चट्टोपाध्याय बगाल की किसी किशोरी का वर्णन यों करते हैं—

मै जानता था कि तुम घूंघटवाली रजनीगंधा हो,
लज्जा पाई हुई ललाई हुई संध्या हो,
बिल्कुल ही गांव की लड़की हो, धान मांड़ने वाली और पानी लाने-
वाली और सो भी अपने अनजान में रास्ते की तरफ ताककर।

जगन्नाथ चक्रवर्ती की यह कविता कितनी करुण है—

आज भी वही टूटा हुआ बाड़ा, खाली खेत, मिट्टी खिसका हुआ
छप्पर, और कितने दिन ?
हे ईश्वर, उस तरह बीन-बीनकर खाना, बोझ ढोना, दुःख सहना,
यह और कितने दिन ?
सूना घर हा-हा कर रहा है।
खेतो में फसल नहीं, बस्तियां निरानन्द, बन्दरगाह मसान बने हैं
ऐसा मालूम होता है जैसे इस संसार के सारे आंगन में एक निर्दय
कब्रिस्तान बिछा हुआ है।
वे कहते हैं कि मन्वन्तर समाप्त हो गया
अकाल समाप्त हो गया,
लड़ाई खत्म हो गई।
हा ईश्वर, ऐसा ही हो, ऐसा ही हो।
दोपहर के समय आंगन में बैठकर सूत कातता हूं,
मन थका हुआ है, सीना जैसे खाली है।

वार-वार वही नन्हे मुंह याद आ रहे है,
डोमों की वह इतनी-सी लड़की जो मोड़ मांग-मांगकर मर गई,
वंशी का जवान लड़का पत्नी को छोड़कर लड़ाई में गया
फिर लौटकर नही आया।
रतन सरदार को किसान आन्दोलन में जेल भेजा गया।
हा ईश्वर, तुम्हारी सरकार में यह दमन कवतक होता रहेगा ?
आकाश में रुई की तरह सफेद धूप है,
नीचे जहां गायें कभी रहती थी वहां सूना है,
खेत में धान नहीं है
पैवन्द लगे जीवन का छोर खो रहा है।
हाय !
हाय रे माया,
रोने का सौदा लेकर कवतक चलेगा ?
आज चैत्र के अन्त में एक और वैशाख लौटकर आ गया,
पर जुगाली से क्लान्त डरे मरे हुए जीवन का स्वाद कहां लौटा ?
पुरानी व्यथा की रात का पौ अभी नहीं फटा, घाव नहीं सूखा।
हाय !
हाय रे माया,
आज भी वही टूटा हुआ बाड़ा, सूना खेत और मिट्टी खिसका हुआ
छप्पर है, और कितने दिन ?

नरेश गुह एक कविता मे अपने हृदय के असन्तोष को यो व्यक्त करते है—

आज रात में वर्षा उतरी।
मैं अकेले विस्तरे पर
आंख में नींद नहीं है
लेटकर सुनता हूं कि हवा पुकार-पुकारकर चली जा रही है।
इस रात में यहां आने को
कितने दिनों से मेरे रक्त में किसीके आने का वादा था।
वह शायद मुझे अमर वनाने के मन्त्र को जानता था।
वह अपार्थिव और अनन्त।

वह मानो मेरे लक्ष्यहीन सब गानो का
तट रेखाहीन मुहाना था। क्या वही मेरे उदास प्राण की
चिरप्रतीक्षा थी ?
हाय दुरन्त ! उत्ताल श्रावण, तुम्हारी शिक्षा ने
यही तो किया।
तो क्या अबकी वार पानी ही मे नाम लिखकर
चल देना होगा ? तो फिर मैंने क्या पाया ? तो मैं क्या हुआ ?

एक कविता में वह आगामी युद्ध की आशका व्यक्त करते हैं। वह इस तथ्य से सहमे हुए है कि यो तो आकाश गहरा नील वना हुआ है, और दिन धान की तरह सुनहले हैं, आम के वौरो की गध से वायु व्याकुल है, इत्यादि, पर कवि को डर है कि न मालूम कव चैत्र के क्षितिज में हिंस्र हिंसा, उन्मत्त क्रोध फूट पड़े।

नये युग के प्रसिद्ध कवि अजीतदत्त एक अन्योक्ति के रूप मे छागल या वकरा नाम की कविता मे कहते है कि वकरा दाढी के कारण गम्भीर और प्राज्ञ ज्ञात होता है; उसके सीगो को देखकर शका होती है कि न मालूम कव टक्कर मारे। उसकी दृष्टि उदासीन है, पर घासो पर ध्यान रहता है। जो पाता है उसे विना विचार के लुकमे वनाता जाता है। इसके आगे कवि कहते है कि उसे रुचि से कोई सरोकार नही, वह संचय का मूल्य जानता है, उसे फल के रूप में चर्वित चर्वण मिलता है। इसके वाद कवि कहते है—

वह तत्ववेत्ता है, दार्शनिक भी है कि हरी घास में विश्वरूप निहारता है
उसका अस्थि-मांस-मेद-मज्जा, चाहे वोटी के रूप में हो या कि कीमे के
सव देश और सव कालों में प्रिय है, चाहे जिस रीति से पके,
धर्म-कर्म में, उसकी है स्वतःसिद्ध राष्ट्रीय महिमा।
अपने चमड़े सेव ने नगाड़े पर अपनी वलि कीर्ति घोषित करता है,
फिर भी वह कितना सहनशील है, दंडाहत सांवली सूरत।

अव वताइये कि यह वकरा कौन है ? कही तो मालूम होता है कि यह वकरा उर्दू कविता का नासेह है या 'वलाका' मे उल्लिखित कवीन्द्र रवीन्द्र वर्णित 'प्रवीण' है, पर आगे चलकर जव उसके मास के खाये जाने तथा पसन्द किये जाने की वात कही जाती है, तव मालूम होता है कि यह जनता है, जिसे तरह-तरह के पुरोहित वलि पर चढाते हैं। पर यह भी आधुनिक कविता की

एक धारा है, जिसके अंश अपने में बिल्कुल स्पष्ट हैं, पर उनमे कोई सूत्र नहीं निकलता।

कहना न होगा कि इस प्रकार से जनता के मन की सब तरह की प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति बराबर कविता मे होती रही है, फिर चाहे वह पलायनवादी हो चाहे अध्यात्मवादी हो, या महज शब्द-विलासी। सभी कवियो की कविताओ से यह ध्वनि किसी-न-किसी रूप मे निकल रही है कि यह जगत् जैसा कि वह है, उसमे सारी सम्भावनाएं होते हुए भी, इसमे कोई ऐसी बात है, जिसे दूर करना ज़रूरी है, नही तो इसमे वह आकर्षण नही मालूम देता, जो इसमे होना चाहिए। शायद इन कवियो की वाणी मे उस तरह की प्रतिभा की सुरभि प्राप्त नही है, जैसी कि कवीन्द्र रवीन्द्र मे थी। फिर भी कुल मिलाकर ये कविताए भारत के और बंगाल के नव-निर्माण मे सहायक होगी, ऐसी आशा की जा सकती है। साथ ही जैसा कि दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट हो गया होगा, इस समय कविता के कल्पना के स्वर्ग से वास्तविकता के मर्त्य में उतर आने पर भी उसमे कवित्व-शक्ति का या वास्तविक काव्य-धर्म का अभाव नहीं रहा है। प्रेम के लिए भी गुंजाइश है और सूक्ष्म कविता के लिए भी।